विषय सूची

ओ३म्

समर्पण

मैं इस ग्रन्थ को

श्रीमान् पूज्यपाद महाशय रामप्रसादजी आर्य

निवासी शिकारपुर खेड़ी जि० मुजफ्फरनगर

भूतपूर्व पटवारी नंगल आरयाँ, पत्रालय रतिया,

तहसील फतेहाबाद, जि० हिसार

की

सेवा में श्रद्धापूर्वक समर्पित करता हूँ,

जिनकी परम प्रेरणा से उत्साहित होकर ही मैंने देश, धर्म और जाति की सेवा का व्रत धारण किया, और इस व्रत की पूर्ति के लिए अत्यन्त परिश्रम के साथ परम पवित्र देववाणी संस्कृत का स्वाध्याय करके अपने जीवन को वैदिक धर्म के प्रचार में अर्पित किया तथा पञ्जाब के आर्यों की मुख्य सभा श्रीमती आर्यप्रतिनिधिसभा पञ्जाब के उपदेशक–पद को स्वीकार करके आज इस अनूठे ग्रन्थ के द्वारा जनता की सेवा के योग्य हो सका।

मैं आशा करता हूँ कि महाशयजी मेरी इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करेंगे।

वैदिक धर्म का सेवक

मनसाराम

उपदेशक आर्यप्रतिनिधिसभा, पञ्जाब

गुरुदत्तभवन, लाहौर

धन्यवाद

धन्यवाद पण्डित मनसारामजी नूँ, पुस्तक महनताँ नाल बनाया जिसने।
अक्षर-अक्षर बारूद दा कम्म देवे, गोला युक्ति-प्रमाण दा पाया जिसने॥
बत्ती कथा-पुराणाँ दी लाये ऐसी, बनके तोपची गोला दबाया जिसने।
पापी पोप दा क़िला पाखण्डरूपी, वैदिक तोप दे नाल उड़ाया जिसने॥

[पण्डित मनसारामजी को धन्यवाद कि जिसने मेहनत से यह पुस्तक बनाया, इसका अक्षर-अक्षर बारूद का काम देता है, जिसने युक्ति-प्रमाणों का गोला डाला है, पुराणों की कथाओं की ऐसी बत्ती (आग) लगाई, जिसने तोपजी बनके गोला दागा, पापी पोप के पाखण्ड-किले को, जिसने वैदिक तोप से उड़ाके रख दिया!]

यह बहुमूल्य ग्रन्थ जो पाठकों के हाथों में है, पं० मनसारामजी आर्योपदेशक ने 'सनातनधर्म-विजय' नामक ट्रैक्ट के उत्तर में प्रकाशित किया है, जिसे दर्जनों सनातनी पण्डितों ने मिलकर, बहुत ही परिश्रम करके 'शास्त्रार्थ जाखल' में हुई पराजय की लज्जा को दूर करने के लिए प्रकाशित किया था। पण्डितजी ने अत्यन्त परिश्रम और योग्यता से अपने विस्तृत स्वाध्याय के बल पर २५० पृष्ठ की पुस्तक का उत्तर उससे दुगुने आकार और पाँच गुणी मोटाई में थोड़े-से समय में लिख दिया। इसमें आर्यसमाज पर किये गये बहुत-से प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर अत्यन्त सुन्दरता से दिया गया है। यद्यपि पण्डितजी को प्रचारकार्य के कारण एक स्थान पर बैठने का अवसर नहीं मिला और वे सभा के पुरोगमानुसार दिन-रात भारतवर्ष में इधर-उधर घूमते रहे और पुस्तकों का मनों [साढ़े सेंतीस किलो] बोझ अपने साथ-साथ उठाये फिरते रहे। इसी अन्तराल में उनकी पत्नी धनलक्ष्मी देवी का देहान्त हो गया, जो अत्यन्त सुशील, लग्न और उत्साह से धार्मिक कामों में भाग लेती थीं। इन सब कठिनाइयों की ओर ध्यान न देते हुए पण्डितजी ने कुछ ही मास में पुस्तक को पूर्ण कर दिया।

यह पुस्तक पौराणिक गाथाओं की जानकारी प्राप्त कराने का सर्वश्रेष्ठ संग्रह है। आशा है कि यह आर्यसमाज के उर्दू साहित्य में [अब हिन्दी साहित्य में] एक बहुमूल्य वृद्धि समझी जाएगी। मैं पण्डितजी महाराज के परिश्रम की प्रशंसा करता हूँ और लाला देवपालजी गुप्त 'टोहानवी' को बधाई देता हूँ, जिन्होंने प्रचुर धन व्यय करके इस पुस्तक को प्रकाशित कराया। मैं आर्यजनता से प्रार्थना करता हूँ कि प्रत्येक आर्यसमाजी इस पुस्तक का स्वाध्याय करके अपनी योग्यता में वृद्धि करे।

निवेदक
गीताराम वीर
मन्त्री
अछूतोद्धार मण्डल, अमृतसर

दो शब्द

आर्यसमाज का प्रारम्भिक युग शास्त्रार्थों का युग था। महर्षि दयानन्द सरस्वती स्वयं बहुत बड़े तार्किक और शास्त्रार्थ-महारथः थे। उन्होंने अपने जीवन में सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और स्वामी विशुद्धानन्दजी, पं० बालशास्त्री और हलधर ओझा-जैसे कितने ही विद्वानों को चारों खाने चित्त गिराकर मिट्टी सुँघा दी।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के पश्चात् तो आर्यसमाज में शास्त्रार्थ-महारथियों की बाढ़-सी आ गयी। पं० लेखरामजी आर्यमुसाफिर, महात्मा मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी), स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती, पं० जे० पी० चौधरी, स्वामी विवेकानन्दजी, पं० मुरारीलालजी (सिकन्दराबाद), पं० तुलसीरामजी स्वामी, पं० छुट्टनलालजी स्वामी, पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० बुद्धदेवजी मीरपुरी, श्री अमर स्वामीजी (ठाकुर अमरसिंहजी), पं० लोकनाथजी तर्कवाचस्पति, पं० सुरेन्द्र शर्माजी 'गौर', पं० रामचन्द्रजी 'देहलवी', पं० शान्तिप्रकाशजी, पं० ओम्प्रकाशजी शास्त्री (खतौली), पं० बिहारीलालजी शास्त्री (बरेली), पं० मुरारीलालजी (हिसार), पं० रुद्रदत्तजी शास्त्री (देहरादून), पं० सत्यमित्रजी शास्त्री (बड़हलगंज, गोरखपुर), पं० रामदयालुजी शास्त्री (अलीगढ़), पं० धर्मभिक्षुजी (लखनऊ), पं० व्यासदेवजी शास्त्री (दिल्ली) और कितने ही शास्त्रार्थ-महारथः आर्यसमाज में में हुए। पं० मनसारामजी 'वैदिक तोप' भी अद्भुत तार्किक और शास्त्रार्थ-महारथः थे।

एक समय था जब आर्यसमाज के प्रत्येक उत्सव पर शास्त्रार्थ होता था। अब वह युग समाप्त हो गया। परिणामस्वरूप नये-नये मत और पन्थ पुनः पनपने लगे हैं। हमारी तो प्रबल इच्छा है कि शास्त्रार्थों का युग फिर आये, जिससे संसारवाले सत्य और असत्य को समझकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कर सकें।

पं० मनसारामजी ने जहाँ सहस्रों व्याख्यान दिये, सैकड़ों शास्त्रार्थ किये, वहाँ अनेक पुस्तकें भी लिखीं। आपके द्वारा लिखी छोटी और बड़ी सभी पुस्तकें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उन सबमें भी दो पुस्तकें विशेष हैं—'पौराणिक पोलप्रकाश' और 'पौराणिक पोप पर वैदिक तोप'। 'पौराणिक पोलप्रकाश' हमने सन् १९८७ में पुनः प्रकाशित कर दिया था जो शीघ्र ही बिक गया।

'पौराणिक पोप पर वैदिक तोप' उर्दू में था। यह ग्रन्थ सन् १९३३ में छपा था। हमने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक इसका अनुवाद किया है। सभी प्रमाणों को मूल ग्रन्थों से मिलाया है। जहाँ पते ग़लत थे, उन्हें शुद्ध कर दिया है। मूल उद्धरणों में जो मुद्रण की अशुद्धियाँ थीं, उन्हें भी शोध दिया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ को उपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। स्थान-स्थान पर अन्यून सौ टिप्पणियाँ देकर इसकी गरिमा को और बढ़ाया है। इसमें एक-दो टिप्पणियों को छोड़कर सभी टिप्पणियाँ हमारे द्वारा दी गयी हैं।

'भगवती प्रकाशन' का उद्देश्य वैदिक साहित्य का प्रचार है। जहाँ अन्य प्रकाशक डिमाई-साइज (छोटे आकार) में दो-सौ पृष्ठ के ग्रन्थ मूल्य २५०-३०० रुपये रख देते हैं, वहाँ हमने इतने बड़े ग्रन्थ का मूल्य केवल १५०.०० रक्खा है [पहले संस्करण का मूल्य]। हमने इसके अनुवाद, ईक्ष्य-वाचन , और प्रेस के चक्कर लगाने में जो श्रम, समय, शक्ति और व्यय किया है, उसका लेशमात्र भी पुस्तक के मूल्य में नहीं जोड़ा है।

मैं पं० राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु' का हार्दिक आभारी हूँ, जिन्होंने पं० मनसारामजी का जीवन-परिचय लिखने की कृपा की है। श्री सुनीलजी शर्मा को ईक्ष्यवाचन [प्रूफ रीडिंग] और यत्र-तत्र उपयोगी सुझाव देने के लिए हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। दुर्गा मुद्रणालय के सञ्चालक पं० रामसेवक जी मिश्र और उनके कर्मचारियों को शुद्ध और सुन्दर मुद्रण के लिए साधुवाद देता हूँ।

पाठकगण इस पुस्तक को पढ़ें, इसपर मनन और चिन्तन करें। यह ग्रन्थ पाठकों के मन और मस्तिष्क को ज्ञान-ज्योति से आपूर कर [भर] देगा। इसके अध्ययन से उन्हें वैदिक सिद्धान्तों की महत्ता और सार्वभौमिकता का ज्ञान होगा, एवं पुराणों की अश्लीलता, खोखलेपन और अनर्गलता का भान होगा। यह पुस्तक पाठकों के हृदय और मस्तिष्क को उद्वेलित कर उन्हें वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट करेगी, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

पं० मनसारामजी के दो ग्रन्थरत्नों को प्रकाशित करके हमने पण्डितजी का सच्चा श्राद्ध किया है और उन्हें सच्ची श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

वेद सदन
एच १/२ माडल टाउन,
दिल्ली-११०००९

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द सरस्वती

तृतीय संस्करण

यह ग्रन्थरत्न हाथों हाथ बिक गया। ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यजगत् में खण्डनात्मक साहित्य पढ़ने की बहुत भूख है। पुस्तक की निरन्तर माँग बनी हुई थी, अतः इसे पुनः प्रकाशित कराया जा रहा है। मैंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सारा अधिकार श्री विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६ को दे दिया है। इस बार यह ग्रन्थ कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज़ होकर नये सजधज के साथ आ रहा है।

इस संस्करण में यत्र-तत्र परिशोधन करके इसे अधिक उपयोगी एवं पूर्ण बनाया गया है। पहले संस्करण में जो छोटी-मोटी अशुद्धियाँ रह गई थीं, उन्हें सुधार दिया है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पाठक इसे पहले से भी अधिक अपनाएँगे।

वेद-मन्दिर
इब्राहीमपुर, दिल्ली-११००३६
दूरभाष-७२०२२४९

विदुषामनुचरः
जगदीश्वरानन्द सरस्वती

एक मार्मिक प्रशस्ति

पाठक महाशय! यह बात किसी भी सत्यनिष्ठ से छुपी नहीं है कि ऋषि दयानन्द के प्रचारकाल से पूर्व सारा संसार मत-मतान्तरों के काले और घनघोर बादलों से आच्छादित था। संसार का गुरु, ज्ञान का अगाध भण्डार भारत भी अज्ञान-अन्धकार और स्वार्थ का अड्डा बना हुआ था। प्राचीन आर्यजाति दिन-प्रतिदिन अपने पवित्र वैदिक धर्म से घृणा करके ईसाइयों और मुसलमानों के समुदाय में सम्मिलित होकर अपने पवित्र वैदिक धर्म को तिलाञ्जली दे रही थी। ऐसे संकट के समय में ऋषि दयानन्दजी महाराज के प्रादुर्भाव ने वेदविरुद्ध मतों पर बम्ब के गोले का काम किया, और उनके रचित, सुप्रसिद्ध, अमरग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने मत-मतान्तरों के दुर्गों की नींवों को हिला दिया। तब समस्त मत-मतान्तरों ने अपनी रेतीली आधार-शिलाओं को स्थिर रखने के लिए सत्यार्थप्रकाश के उत्तर में कई ग्रन्थ प्रकाशित किये, जिनका आर्यसमाज ने मुँहतोड़ उत्तर दिया। इनमें से एक पुस्तक का नाम 'भास्कर-प्रकाश' है, जिसे पं० तुलसीरामजी स्वामी, मेरठे-निवासी ने पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र द्वारा लिखित 'दयानन्द तिमिरभास्कर' के उत्तर में लिखा है।

जब झूठे मत-मतान्तर अपनी बोदी दलीलों के द्वारा सत्यार्थप्रकाश के तीव्र प्रकाश को आच्छादित न कर सके तो उन्होंने कमीनी चालें चलनी आरम्भ कीं। सरकार को भी सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध भड़काकर उसे प्रतिबन्धित (ज़ब्त) कराने का दूषित प्रयत्न किया, परन्तु इसमें भी मुँह की खानी पड़ी।

जब विरोधी इस प्रकार के दूषित सङ्कल्पों में सफल न हो सके तो उन्होंने अपने बचाव का एक और उपाय निकाला। वह यह कि शास्त्रार्थों में किसी निश्चित विषय पर शास्त्रार्थ न करते हुए 'स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं'—इस बात को शास्त्रार्थ की नींव रखकर भोली-भाली जनता में भ्रम फैलाने और धोखा देने का मार्ग ढूँढा। शास्त्रार्थ के लिए प्रत्येक स्थान पर पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० लोकनाथजी न्यायवाचस्पति, पं० मनसारामजी पुराणाचार्य आदि का जाना कठिन था। इसलिए आवश्यकता थी कि विरोधियों की इन बेढंगी चालों की पोल पुस्तक के रूप में खोली जाकर जनता को इस धोखे से सावधान किया जाए। फलस्वरूप इस कार्य को पूर्ण करने के लिए पं० मनसारामजी शास्त्रार्थ-महारथी ने लेखनी उठाई और 'शास्त्रार्थ जाखल' के नाम से उर्दूभाषा में एक अनूठा ग्रन्थ प्रकाशित कराया जिसमें विरोधियों की बेहूदा चालाकियों का भाँडा सरे-बाज़ार फोड़ा गया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही पौराणिक क्षेत्रों में खलबली मच गयी और उन्होंने इस पुस्तक का उत्तर लिखने में ही अपना कल्याण समझा। परिणामस्वरूप सनातनधर्म के समस्त पण्डितों ने पं० कुञ्जलाल को आगे रखकर एक पुस्तक 'सनातनधर्म विजय' नाम से प्रकाशित कराई। पुस्तक क्या है, गालियों का पुलिन्दा है। लेखक ने सचाई को बोदे तर्कों और मिथ्या भाषणों से छुपाने का प्रयत्न किया है। इस विचार से कि जनता में भ्रम न फैले, पं० श्री मनसारामजी आर्योपदेशक ने इस पुस्तक के उत्तर में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक जिसका नाम **'सनातनधर्म की मौत'** है, अत्यन्त परिश्रम से युक्ति और प्रमाणपूर्वक लिखी है।

मैं बिना किसी प्रतिवाद के भय के कह सकता हूँ कि यह पुस्तक पाण्डित्यपूर्ण, युक्ति और प्रमाण-पुरःसर शैली में लिखी गयी है। प्रत्येक बात को सिद्ध करने के लिए वेद, स्मृति

और शास्त्रों के उद्धरण दिये गये हैं।

'सनातनधर्म विजय' नामक पुस्तक के उत्तर में लेखक महोदय ने धैर्य, शान्ति और सभ्यता से काम लिया है। इस बात को कहने में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि आर्यसाहित्य में 'भास्कर प्रकाश' के पश्चात् यह एक अद्वितीय पुस्तक सिद्ध होगी, और आर्यजनता की एक बहुत बड़ी माँग की पूर्ति करेगी। मैं आशा करता हूँ कि प्रत्येक आर्यभाई इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक पढ़कर लाभ उठाएगा, जिससे जनता में फैली हुई भ्रान्ति दूर हो सके।

अन्त में, इस ग्रन्थ की तैयारी के लिए मैं पं० श्री मनसारामजी आर्योपदेशक का धन्यवाद करता हूँ, जिन्होंने ऐसी पाण्डित्य और युक्तिपूर्ण पुस्तक तैयार करके आर्यजनता की बहुत बड़ी सेवा की है।

ओं शम्

वैदिक धर्म का तुच्छ सेवक
कुन्दनलाल गुप्त
मन्त्री
आर्यसमाज, बुढलाडा मण्डी
जि० हिसार

श्री मनसारामजी वैदिक तोप
एक आग्नेय पुरुष

—प्रा० पं० श्री राजेन्द्रजी 'जिज्ञासु'

पं० श्री मनसारामजी 'वैदिक तोप' एक आग्नेय पुरुष थे। देश, धर्म व जाति की सेवा में उन्होंने सर्वस्व होम दिया। जान जोखिम में डालकर देश के लिए ऐसे-ऐसे कार्य किये, जिनकी कल्पना करना भी उस युग के देशभक्तों के लिए अति कठिन था। आर्यसमाज के नाम व काम के लिए वे सदैव शीश तली पर धरकर आग में भी कूदने के लिए तत्पर रहते थे। यदि मैं आर्यकवि प्राध्यापक 'शरर' जी की एक पंक्ति का प्रयोग करूँ तो यह कहूँगा कि—

'प्राणों में अंगार धधकते वे लाये थे'

एक आर्य के लिए जो-जो कुछ भी करणीय कर्म हैं, वे उन्हें करने का प्रयत्न करते रहे। उनमें तीन गुण विशेषरूप से पाये जाते थे। उनमें मौलिक सूझ तो थी ही—यह सूझ थी भी अद्भुत। वे बड़े साहसी थे। लोभ किञ्चिन्मात्र भी न था, दानी व उदार थे।

घोर पौराणिक कुल में—आपका जन्म सन् १८९० ई० में हुआ। इसी वर्ष मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी के निधन से आर्यसमाज की अपार क्षति हुई। वीरभूमि हरियाणा के हिसार ज़िले के ग्राम हड्डाँवाला नंगल के एक वैश्य लाला शंकरदास के घर आपने जन्म लिया। लाला शंकरदास एक सुखी, सम्पन्न गृहस्थी थे। अग्रवाल-परिवारों में पौराणिकता का घटाटोप अँधेरा होता ही है। लाला श्री शंकरदासजी इसका अपवाद न थे। लालाजी ने अपने घरपर ही एक 'देवी रानी' मन्दिर बना रक्खा था। वे प्रतिदिन इस 'देवी रानी' की पूजा किया करते थे। दो पैसे नित्यप्रति देवीजी को भेंट चढ़ाते थे। लालाजी ने 'देवी रानी' का कोष बना रखा था। बालक मनसाराम कुछ बड़ा हुआ तो अपने पिताजी की अनुपस्थिति में देवी की जोत (ज्योति) जगाने व टका चढ़ाने (दो पैसे) का कर्त्तव्य अपने पिता की भाँति पूर्ण अन्धभक्ति से निभाया करता था।

मुसलमान मुंशी की अन्धभक्ति से सेवा—ग्राम बामनवाला में आपकी प्राथमिक शिक्षा पूरी हुई। यहाँ मुंशी शम्सुद्दीन के प्रभाव में आये। मुंशीजी का टोहाना में स्थानान्तरण हो गया। मनसाराम भी प्राइमरी परीक्षा उत्तीर्ण करके टोहाना के मिडल स्कूल में प्रविष्ट हो गये। मुंशीजी अपने इस मेधावी शिष्य को मुसलमान बनाना चाहते थे। मनसाराम यदा-कदा मुंशीजी की रोटियाँ भी बना दिया करते थे। मुंशीजी कभी-कभी मनसाराम पर कुल्लियाँ भी मार दिया करते थे। अग्रवाल उस युग में अन्धश्रद्धा में और भी दृढ़ थे, इस कारण मनसाराम गुरुभक्ति से यह सब-कुछ सहन कर लेता था, परन्तु अन्य हिन्दू छात्रों, विशेषरूप से जाखलमण्डी के मोहनलाल को मुंशीजी का यह कुकृत्य बड़ा बुरा लगता था।

मोहनलाल ने कई बार मनसाराम को समझाया कि तुम मुसलमान से भले ही मेल-मिलाप रखो, परन्तु ऐसे सम्बन्ध न रखो कि धर्मभ्रष्ट हो जाओ। मनसाराम पर सहपाठी की सीख का तनिक भी प्रभाव न हुआ। सभी सहपाठी भाँप गये थे कि मुंशीजी मनसाराम को मुसलमान बनाकर ही दम लेंगे, परन्तु इसे बचाया कैसे जाए, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। आर्यसमाज का तब तक इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रचार न था। अन्य हिन्दू जानते

ही न थे कि धर्म-रक्षा कैसे की जाए।

मुसलमान बनने से कैसे बचे ?—इन्हीं दिनों मनसाराम के जीवन में दो विशेष घटनाएँ घटीं। १९०७ ई० में जब वे आठवीं में पढ़ते थे तो उनके पिताजी का देहान्त हो गया। ला० शंकरदास के घरपर एक पटवारी रामप्रसाद रहा करते थे। वह दृढ़ आर्यसमाजी, सदाचारी व बड़ा परोपकारी मनुष्य था। पटवारीजी में वैदिक धर्म-प्रचार की बड़ी लग्न थी। ला० शंकरदासजी उस पटवारी के सत्संग से वेद की सचाइयों को मानकर भी पौराणिक अन्धकूप से न निकल सके। अब मनसाराम घरपर रहकर मिडल परीक्षा की प्राइवेट तैयारी करने लगा।

पटवारीजी इनसे बड़ा स्नेह करते थे। सब प्रकार का सहयोग भी देते। नित्यप्रति महाशय रामप्रसाद बालक मनसाराम को वैदिक मन्तव्य समझाते। मनसाराम में आरम्भ से ही यह विशेष गुण था कि यदि युक्ति से उन्हें कोई बात समझाई जाए तो वह झट से उसे स्वीकार कर लेते। कुछ जाँच-पड़ताल करनी होती तो वह भी करते। शीघ्र ही मनसाराम पर पटवारीजी की संगत की रंगत दिखाई देने लगी। जीवन-भर पं० मनसाराम बड़ी कृतज्ञता से महाशय रामप्रसाद के इस उपकार को स्मरण करते रहे। मनसाराम के मनोभाव वही थे जो भक्तराज अमींचन्दजी ने ऋषि के प्रति व्यक्त किये हैं—

तुम्हारी कृपा से अजी मेरे भगवन्, मेरी ज़िन्दगी ने अजब पलटा खाया॥

टोहाना का शास्त्रार्थ—टोहाना अब आर्यसमाज का एक गढ़ बनता जा रहा था। १९०४ में ला० देवीदयालजी के एक ताऊ कालूरामजी आर्यसमाज के प्रथम प्रधान चुने गये। १९०८ ई० में टोहाना में आर्यों का पौराणिकों से एक अविस्मरणीय शास्त्रार्थ हुआ। मोहनलाल व मनसाराम दोनों ने यह शास्त्रार्थ सुना। आर्यसमाज के प्रतिनिधि पं० राजाराम ने पौराणिक पं० लक्ष्मीनारायणजी से पूछा, ''शास्त्रार्थ किस विषय पर होगा?'' उसने उत्तर दिया, ''आर्यसमाज के नियमों पर।''

प्राध्यापक राजाराम ने कहा कि आर्यसमाज के नियम तो आप भी मानते हैं। शास्त्रार्थ तो ऐसे विषय पर हो सकता है जिसमें आपका हमसे मतभेद है। ऐसे चार विषय हैं—मूर्त्तिपूजा, मृतकश्राद्ध, वर्ण-व्यवस्था व विधवा-विवाह। पौराणिक पं० लक्ष्मीनारायण बड़े जोश से बोले, ''हम आपका एक भी नियम नहीं मानते।'' इसपर पं० राजाराम ने पौराणिक प्रधान श्री उदमीरामजी से पूछा, ''क्योंजी, आप हमारा कोई नियम नहीं मानते?'' पटवारी उदमीराम ने भी अपने पण्डित की बात उसी शैली में दोहराई।

पं० राजाराम ने कहा, ''लिखकर दो।'' पटवारीजी ने अविलम्ब लिख दिया। पौराणिक प्रधान पटवारी उदमीरामजी का लिखा कागज़ राजारामजी ने भरी सभा में पढ़कर सुनाया, ''हम आर्यसमाज का एक भी नियम नहीं मानते।''

अब राजारामजी ने श्रोताओं से कहा, ''आर्यसमाज का नियम है—वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है। पौराणिक मत यह हुआ कि न वेद पढ़ना, न पढ़ाना, न सुनना और न सुनाना। आर्यसमाज का नियम है—सत्य के ग्रहण करने व असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। पौराणिक सिद्धान्त यह बना कि असत्य को स्वीकार करने व सत्य के परित्याग करने में सर्वदा तत्पर रहना चाहिए।''

आर्यसमाज के पण्डित की युक्ति ने श्रोताओं के मन व मस्तिष्क को जीत लिया। पटवारी उदमीराम प्रधान वैदिक धर्म में दीक्षित हो गये। मनसाराम आर्यसमाज का दीवाना बन गया। मिडल परीक्षा देकर मनसाराम घर पहुँचे। वैदिक धर्म के प्रचार के लिए ट्रैक्ट

लिखने लग गये। पहले दो ट्रैक्ट कविता में लिखे, तीसरा 'गुमराही के समुद्र में रास्ती की किश्ती' (असत्यसिन्धु में सत्य-नौका)। यह गद्य में है। एक दुर्लभ प्रति हमारे पास है। देवीरानी के कोष से यह सारा प्रकाशन-कार्य हुआ।

प्रेमिल सङ्गम का वह स्वर्गीय दृश्य—आर्यसमाज टोहाना का वार्षिकोत्सव आया। मोहनलाल अपने भाई रामशरण व मित्र-मण्डली को लेकर टोहाना का उत्सव देखने गया। मनसाराम भी अपने मित्रों का दल लेकर टोहाना पहुँच गया। मुंशी शम्सुद्दीन की 'कुल्लियों' के कारण मोहनलाल के मनसाराम से सम्बन्ध टूट चुके थे। बोलचाल भी बन्द थी। अब मनसाराम ने मोहनलाल को एक चिट भेज दी कि आर्यसमाज का एक नियम है कि 'सबके साथ प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए। आप तो मुझसे भी पहले आर्य बने, अत: आपको मुझसे रुष्ट नहीं रहना चाहिए। आपका कर्त्तव्य बनता है कि मुझे गले लगाओ।'

चिट पढ़कर मोहनलाल गद्‌गद हो गया और मनसाराम से कहा कि शम्सुद्दीन के कारण तुम्हारा आर्यसमाजी बनना तो दूर रहा, तुम्हारा हिन्दू रहना भी असम्भव था। दोनों सहपाठी घनिष्ठ मित्र बन गये। जब तक पं० मनसाराम जीवित रहे, मोहनलालजी व उनके दोनों भाइयों— रामशरणजी व हँसराजजी ने वैदिक धर्म के प्रचार-कार्य में उनको तन, मन व धन से भरपूर सहयोग दिया।

देववाणी संस्कृत के पठन-पाठन की धुन—अब मनसाराम के मन में आया कि बुद्धि तो आर्यसमाज के सिद्धान्तों को स्वीकार करती है, परन्तु जब भी वेदशास्त्र का कोई प्रमाण दिया जाता है तो पौराणिक पण्डित झट से कह देते हैं कि ऋषि दयानन्दजी द्वारा किये अर्थ ठीक नहीं है। पौराणिकों को मुँह तोड़ उत्तर देने के लिए संस्कृत-अध्ययन का स्वप्न मन में सँजोकर वह हिसार में सनातनियों की संस्कृत पाठशाला में प्रविष्ट हो गये। यहाँ श्री बनवारीलाल आज़ाद उनके सहपाठी थे। ये एक अच्छे आर्यकवि थे। तीन-चार वर्ष तक भागीरथी पाठशाला कनखल में संस्कृत का अध्ययन चलता रहा। देववाणी के पठन-पाठन के लिए गुरुकुल कांगड़ी में चपरासी की नौकरी भी करते रहे, फिर वाराणसी चले गये।

सूखे बेर खाकर—वाराणसी में दानियों ने संस्कृत के छात्रों के लिए कई क्षेत्र (भण्डारे) चला रखे थे, परन्तु मनसाराम को यहाँ भोजन नहीं मिलता था। कारण यह था कि वे ब्राह्मणकुल में नहीं जन्मे थे। सूखे बेर चुन-चुनकर रख देते। भूख लगती तो भिगोकर खा लेते। एक वैश्य ने एक बार बेर चुनने का कारण पूछा तो बताया कि मैं अग्रवाल-कुल में जन्मा हूँ, इस कारण मुझे भण्डारे में भोजन नहीं मिलता। उस सेठ का भी भण्डारा चलता था। उसने इनके भोजन की व्यवस्था कर दी। इस प्रकार मनसारामजी ने न जाने कितने महीनों तक देववाणी के अध्ययन के लिए सूखे बेर भिगो-भिगोकर खाये और कितनी बार भूख सहनी पड़ी होगी। सब दु:ख-कष्ट सहकर भी उनके मन में किसी के लिए कोई दुर्भावना या प्रतिक्रिया न जागी।

अब पं० मनसाराम वैदिक तोप बन गये—देव-वाणी का अध्ययन करके आप कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। सुलतानपुर लोधी पंजाब व सिरसा की समाजों में पुरोहित के पद को सुशोभित करते हुए आपने अपनी लग्न व विद्वत्ता की धाक जमा दी। स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज सिरसा पधारे। आपने पं० मनसाराम की प्रतिभा को पहचाना और उन्हें आर्यप्रतिनिधि सभा में ले-गये। अब पण्डितजी ने सारे हरियाणा, पंजाब, हिमाचल, सीमाप्रान्त, देहली आदि के नगरों व ग्रामों में घूम-घूमकर अपने व्याख्यानों व शास्त्रार्थों द्वारा वैदिक धर्म की धूम

मचा दी, लेखनी व वाणी से विरोधियों के छक्के छुड़ा दिये। शास्त्रार्थ व प्रचार करते हुए आपपर प्रहार हुए। कई बार जीवन सङ्कट में पड़ गया। पूज्यपाद स्वामी सर्वानन्दजी महाराज व पं० श्री शान्तिप्रकाशजी आपके उन दिनों के सहयोगी व मित्र थे। 'पौराणिक पोप पर वैदिक तोप' ग्रन्थरत्न के प्रकाश से 'वैदिक तोप' नाम से विख्यात हुए। 'वैदिक तोप' आपके नाम का अभिन्न अङ्ग बन गया। विरोधी आपका नाम सुनकर ही काँपते-हाँपते थे।

स्वतन्त्रता-आन्दोलन में—आप देश के स्वाधीनता-आन्दोलन में कई बार जेल गये। कब-कब जेल गये, यह ठीक पता नहीं चल सका। मृत्यु से पूर्व भी पुनः व्यक्ति सत्याग्रह में भाग लेने की तैयारी में थे। हैदराबाद-सत्याग्रह में भी अपनी बारी की बाट जोहते रह गये। आप हिसार व अम्बाला आदि जेलों में बन्दी रहे। गाँधीजी के प्रथम सत्याग्रह में भाग लेकर आपने जेल के भीतर बन्द न्यायालय में डिप्टी कमिश्नर व ज़िला न्यायाधीश मिस्टर ख्वाजा के सामने पेश होते हुए अपने मुख पर तौलिया डाल लिया व बैठ गये। उसने मुख ढाँपने का कारण पूछा तो कहा कि मैं चाँदी के चन्द टुकड़ों के लिए देश-धर्म को बेचनेवाले का मुँह देखना नहीं चाहता।

यह न्यायालय का अपमान (Contempt of Court) था। न्यायालय का अपमान करनेवाले वे प्रथम सत्याग्रही थे। इस अपराध में उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। वे फिर भी न घबराए, न पछताए और न डगमगाए।

यशस्वी लेखक, कवि व गवेषक—पं० श्री मनसारामजी एक परिश्रमी, बेजोड़ गवेषक व लेखक थे। शास्त्रार्थ जाखल, शास्त्रार्थ संगरूर, रावण जोगी के भेस में, चेतावनीप्रकाश, मेरे पच्चीस मिनट, पौराणिक पोलप्रकाश व पौराणिक पोप पर वैदिक तोप आदि ग्रन्थरत्नों का सृजन कर आपने नाम कमाया। कविता का कोई संग्रह अब उपलब्ध नहीं, तथापि वैदिक तोप आदि में कहीं-कहीं उनके स्वरचित पद्य मिलते हैं। उर्दू-हिन्दी के सशक्त लेखक थे। उनकी भाषा में प्रवाह, रोचकता व ओज है। आपने जैनियों से भी कई शास्त्रार्थ किये।

सच्चे आस्तिक—वे बड़े पक्के आस्तिक थे। भले ही देर हो जाए, परन्तु वे सन्ध्या नियमपूर्वक किया करते थे। स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग करते थे। घी-दूध के प्रेमी थे। दक्षिणा का सारा पैसा श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी को वेद-प्रचार के लिए भेंट कर दिया करते थे। निर्वाह के लिए सभा द्वारा दी गयी मासिक दक्षिणा को ही पर्याप्त मानते थे। आपने अन्तिम दिनों में बुडलाढा में अपना घर बनाया। सन् १९४१ में उन्हें कारबंकल फोड़ा निकल आया। इसी से २५-१०-१९४१ में उनका निधन हो गया। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी सरीखे वीतराग संन्यासी और सर्वमान्य नेता भी उनका पता करने बुडलाढा गये। पं० मनसारामजी ने लगभग तीस वर्ष तक आर्यसमाज की सक्रिय सेवा की। अपने कालजयी साहित्य, देशसेवा व जातिसेवा के कारण वे चिरस्मरणीय रहेंगे। यह याद रहे कि अपने आरम्भिक दिनों की एक पुस्तिका में पण्डितजी ने अपने नाम के साथ जन्म की जाति-पाँति का प्रयोग किया है, फिर कभी उन्होंने जाति-पाँति की पूँछ नाम के साथ नहीं लगाई। वे एक आदर्श सुधारक थे। उनका जीवन इस दृष्टि से अनुकरणीय था।

मनसारामजी बेजोड़

लौह लेखनी चलाई। धूम धर्म की मचाई॥
ज्योति वेद की जगाई। सत्य कीर्ति कमाई॥

तेरे सामने जो आये। मतवादी घबराये॥
कीनी पोप से लड़ाई। ध्वजा वेद की झुलाई॥
वैदिक तोप नाम पाया। दुर्ग ढोंग का गिराया॥
तान वेद की सुनाई। विजय दुन्दुभि बजाई॥
रूढ़ीवाद को लताड़ा। मिथ्या मतों को पछाड़ा॥
काँपे अष्टादश पुराण। पोल खोलकर दिखाई॥
लेखराम के समान। ज्ञानी गुणी मतिमान॥
जान जोखिम में डाल। धर्म भावना जगाई॥
जिसकी वाणी में विराजे। युक्ति तर्क व प्रमाण॥
धाक ऋषि की जमाई। फैली वेद की सचाई॥
मनसारामजी बेजोड़। कष्ट सहे कई कठोर॥
धुन देश की समाई। लड़ी गोरे से लड़ाई॥
बड़ा साहसी सुधीर। मनसाराम प्राणवीर॥
सफल हुआ जन्म जीवन। तार गई तरुणाई॥
धर्म धौंकिनी चलाई। राख तम की हटाई॥
जीवन समिधा बनाके। ज्ञान-अग्नि जलाई॥

—रचयिता : **राजेन्द्र 'जिज्ञासु'**
वेद सदन, अबोहर - १५२११६

सत्य का प्रकाश

प्रिय पाठकगण! आर्यसमाज जाखलमण्डी जनपद हिसार का तीसवाँ वार्षिकोत्सव १, २, ३ मई, १९३१ को होना निश्चित हुआ था, जिसपर सनातनधर्म सभा जाखल के विशेष आग्रह पर धर्मचर्चा के रूप में शास्त्रार्थ भी हुआ था, जिसका विषय था कि "स्वामी दयानन्द-कृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण"। इस प्रकार के शास्त्रार्थ आर्यसमाज के उत्सवों पर प्रायः होते ही रहते हैं। दोनों ओर से जो प्रश्नोत्तर हुए, उन्हें जनता सुनती रही। उत्सव के पश्चात् निश्चय हुआ कि उन प्रश्नोत्तरों को केवल इस उद्देश्य से कि जो लोग उत्सव में सम्मिलित होकर उन विचारों से लाभान्वित नहीं हो सके उनकी जानकारी के लिए, इस शास्त्रार्थ की सम्पूर्ण कार्रवाई को ट्रैक्ट के रूप में छपवा दिया जाए। परिणामस्वरूप उन सारी घटनाओं (पत्र-व्यवहार आदि) और प्रश्नोत्तरों को एकत्र करके मात्र चलती लेखनी और साधारण भाषा में '**शास्त्रार्थ आर्यसमाज जाखल**' के नाम से प्रकाशित करा दिया गया।

ट्रैक्ट लिखते समय यह बात कल्पना में भी न थी कि यह साधारण-सा ट्रैक्ट सनातनधर्म की बोदी दीवारों पर एक बम्ब के गोले का काम करेगा और सनातनधर्म के शिविर में इतनी खलबली मच जाएगी कि वे अपनी धोतियों और पोथियों को फटकारते हुए और अपनी बूथियों (मुँह-माथे) को खुजाते हुए इधर-उधर भागते फिरेंगे और 'लुट गये, मर गये, विनष्ट हो गये', का शोर मचाते हुए शरण का स्थान ढूँढते फिरेंगे। कभी समाचारपत्र 'आनन्द' (लाहौर) के द्वारा अपील की गयी, और कभी 'सनातनधर्म प्रचारक' (अमृतसर) के कॉलमों में चिल्ल-पौं की रट लगाई कि लोगो! दौड़ियो, भागियो, आइयो, हम मर गये, सनातनधर्म के किले पर गोलाबारी आरम्भ हो गयी। पता नहीं और क्या-क्या कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया और एक साधारण-से ट्रैक्ट को लेकर जो इनके विचार के अनुसार इनकी मृत्यु का आदेश-पत्र था न जाने कहाँ-कहाँ भागे फिरे और किस-किस के आगे अपना माथा फोड़ा। अन्त में 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुन्बा जोड़ा' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए किसी से दस, किसी से पाँच, और किसी से बीस पृष्ठ लिखवाकर एक पोथा रचा जिसका नाम सत्य के सर्वथा विरुद्ध 'सनातनधर्म विजय' रक्खा गया। इस 'विजय' से सनातनधर्म की विजय हुई या पराजय, दूरदृष्टिवालों ने तो एक ही दृष्टि में भाँप लिया होगा। बहुत-से आर्यसमाजी नेताओं ने तो इसे कोई महत्त्व ही नहीं दिया और पाँव की ठोकर से परे फेंक दिया, परन्तु इस अनर्गल-प्रलाप के पुलिंदे में व्यर्थ की बकवास करते हुए आर्यसमाज को इसका उत्तर देने के लिए चैलैञ्ज दिया गया था।

'सनातनधर्म विजय' में आर्यसमाज पर दोषारोपण किये गये हैं। पं० मनसारामजी शास्त्री ने उनका उत्तर भली-भाँति दे दिया है और पौराणिक मत की नङ्गी तस्वीर भी जनता के समक्ष प्रस्तुत कर दी है। जहाँ तक पण्डितजी की योग्यता का प्रश्न है, वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हैं, वाराणसी व पञ्जाब विश्वविद्यालयों की उच्च डिगरियाँ प्राप्त करके वाराणसी के पण्डितों से

'पण्डित' पदवी प्राप्त की है। दर्जनों पुस्तकों के लेखक हैं। इनकी लिखी हुई पुराणों की आलचनाओं पर आज तक भी किसी पौराणिक पण्डित का लेखनी उठाने का साहस नहीं हुआ। आर्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब का प्रमुख उपदेशक होना ही इस बात का प्रमाण है कि आप उच्चकोटि के विद्वान् और शास्त्रार्थों के महारथी हैं। सनातनधर्म के लगभग सभी पण्डित शास्त्रार्थों में आपसे मुँह की खा चुके हैं, अतः पण्डितजी का नाम सनातनधर्म के लिए हरिसिंह नलवा से कम नहीं है।[१]

मोहनलाल गुप्त
मन्त्री आर्यसमाज
जाखलमण्डी, जि० हिसार

१. यह लेख बहुत लम्बा था। हमने अनुवाद करते हुए सामयिक बातों को छोड़ दिया है।

पौराणिक पोप पर वैदिक तोप
अर्थात्
सनातनधर्म की मौत

ईश्वर-प्रार्थना

ओ३म्। विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रन्तन्न आ सुव॥

—यजु:० ३०।३

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए। जो कल्याणकारक गुण-कर्म-स्वभाव और पदार्थ है, वह सब हमें प्राप्त कराइए।

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

—यजु:० ३६।३

अर्थ—हम लोग उस प्राणों से प्यारे, दुःखों से छुड़ानेवाले, सुखों को देनेवाले, सारे संसार को उत्पन्न करनेवाले, प्रशंसा के योग्य परमात्मा के उस ग्रहण करने योग्य तेज:स्वरूप का ध्यान करें कि जो परमात्मा हमारी बुद्धियों का नेतृत्व करे, अर्थात् हमें उलटे मार्ग से हटाकर सीधे मार्ग पर लगा दे।

लालाजी और पोपजी

जैसे को वैसा मिले मिलकर करे न कोप।
पण्डित को लाला कहे तभी कहावे पोप॥

हमारे सनातनधर्मी भाइयों ने अपनी पुस्तक में हमें 'लाला' शब्द से सम्बोधित किया है। हम 'लाला' शब्द का आदर करते हैं। आजकल यदि देखा जाए तो देश, धर्म और जाति के सुधार का सब काम लाला लोगों के ही हाथ में है। सच पूछो तो ये लाला लोग ही ब्राह्मण और पण्डित लोगों के अन्नदाता हैं, क्योंकि वे सनातनधर्म के ब्राह्मण और पण्डित लोग ही हैं जो लाला लोगों के घरों में पानी भरने, रोटी पकाने, धोती धोने, बर्तन माँजने, बोझा ढोने, बच्चों को कन्धे पर उठाने, उनके पेशाब से स्नान करने, उनकी टट्टी उठाने, चिलम भरने और मुट्ठी-चापी (पाँव दबाने) आदि सेवाकार्य करके अपना पेट पाल रहे हैं। ऐसी स्थिति में हमारे भाइयों ने हमें उपर्युक्त ब्राह्मणों और पण्डितों की मण्डली में सम्मिलित न करके हमारी मानवृद्ध्यर्थ हमारे लिए 'लाला' शब्द का प्रयोग ही उचित समझा है।

परन्तु हमारे भाइयों को ज्ञात होना चाहिए कि हम वैदिक धर्म के अनुयायी हैं और

गुण-कर्म-स्वभाव से वर्णव्यवस्था मानते हैं। हमारी दृष्टि में ब्राह्मण और पण्डित शब्द का बड़ा भारी आदर है। इसलिए हम लोगों ने 'ब्राह्मण' और पण्डित शब्द का आदर कराने का ठेका ले-रक्खा है। इसी धुन में हमने अत्यन्त परिश्रम से संस्कृत का स्वाध्याय करके बनारस और पञ्जाब विश्वविद्यालय की तीन परीक्षाएँ देकर, काशी के विद्वानों से 'पण्डित' पदवी प्राप्त करके आर्यसमाज में गुण-कर्म-स्वभावानुसार आर्यप्रतिनिधि सभा के अधीन उपदेशक का काम करते हुए 'ब्राह्मण' पद को प्राप्त किया है।

अब हम इस बात को सहन नहीं कर सकते कि इस प्रकाश के युग में भी हमारे सनातनधर्मी भाई उपर्युक्त कार्यों को करनेवाले मनुष्यों के नाम के साथ केवल इस कारण से कि वे ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण और पण्डित-जैसे सम्मानास्पद शब्दों का प्रयोग करके उनकी मिट्टी-पलीद [दुर्दशा] करते रहें। अपितु हम यह चाहते हैं कि वैदिक धर्म के दृष्टिकोण से गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण और पण्डित शब्दों का संस्कृत के योग्य विद्वानों के नाम के साथ प्रयोग करके उन शब्दों का गौरव बढ़ाया जाए।

जो लोग अब भी ब्राह्मण और पण्डित शब्द का अपमान करने पर तुले रहते हैं, हम उन्हें देश, जाति और धर्म का घातक समझते हैं, क्योंकि सनातन-धर्म के ठेकेदारों ने अपने दृष्टिकोण को समक्ष रखते हुए हमें पण्डित के स्थान पर लाला शब्द से सम्बोधित करके ब्राह्मण और पण्डित शब्द का अत्यधिक अपमान किया है, अतः हम इस प्रकार के मूर्ख, दुराग्रही (हठी) और स्वार्थी लोगों को, अपने दृष्टिकोण से गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण और पण्डित शब्द का अधिकारी न समझकर, अपनी पुस्तक में 'पोप' शब्द से सम्बोधित करेंगे।

पण्डित का लक्षण

पण्डित सो जो मन प्रबोधे। राम नाम आतम में शोधे ॥
छहों वर्णों को दे उपदेश। नानक उस पण्डित को सदा आदेश ॥

तदस्य सञ्जातं तारिकादिभ्य इतच्। —अष्टा० ५।२।३६

पण्डा सदसद्विवेकिनी बुद्धिः। सा जाताऽस्येति पण्डितः, इतच् प्रत्ययः ॥

अर्थ—सत्य और असत्य का निर्णय करनेवाली बुद्धि का जो स्वामी हो, उसका नाम पण्डित है।

विद्वान् विपश्चिद् दोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः।
धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान्पण्डितः कविः ॥

—अमरकोशः २।७।५

अर्थ—विद्वान्, विपश्चित्, दोषज्ञः (दोषो को जाननेवाला), सन् (साधु), सुधी, कोविद (वेदों को जाननेवाला), बुध, धीर, मनीषी, ज्ञः, प्राज्ञ, संख्यावान् (विचारशील) और कवि पण्डित कहलाता है।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥

अर्थ—जो पर-स्त्री को माता के समान, पर-धन को मिट्टी के ढेले के समान और सब प्राणियों की आत्मा को अपनी आत्मा के समान देखता है, वह पण्डित है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

—गीता ५।१८

अर्थ—जो लोग विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गौ और हाथी में, कुत्ते और चाण्डाल में समान दृष्टि रखते हैं, वे ही पण्डित हैं।

हनुमान् के लिए पण्डित शब्द—

देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित। —वा०रा०किष्कि० ४४।७

अर्थ—हे न्याय के पण्डित! आप न्याय और देशकाल की नीति को जाननेवाले हैं।

श्रीराम के लिए पण्डित शब्द—

मतिमान् शास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव। —वा०रा०युद्ध० २।४

अर्थ—हे राम! आप बुद्धिमान्, शास्त्रों के जाननेवाले और पण्डित हैं।

सुग्रीव के लिए पण्डित शब्द—

सुग्रीवः पण्डितो नित्यं भवान्मन्त्रविचक्षणः। —वा०रा०युद्ध० १९।३६

अर्थ—सुग्रीव पण्डित है और तुम (लक्ष्मण) परामर्श देने में कुशल हो।

सहदेव के लिए पण्डित शब्द—

अयं धर्मान् सहदेवोऽनुशास्ति लोके ह्यस्मिन् पण्डिताख्यां गतश्च॥

—महा० सभा० ६५।१५

अर्थ—यह सहदेव धर्मों का उपदेश करते हैं और संसार में पण्डित के रूप में इनकी ख्याति है।

द्रौपदी के लिए पण्डिता शब्द—

प्रिया च दर्शनीया च पण्डिता च पतिव्रता। अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनमब्रवीत्॥

—महा० वन० २७।२

अर्थ—प्रिया, दर्शनीया, पण्डिता और पतिव्रता द्रौपदी ने धर्मराज से ये वचन कहे।

परिणाम—इन प्रमाणों से सिद्ध है कि पण्डित नाम केवल जन्म के ब्राह्मणों का ही नहीं है, अपितु प्रत्येक मनुष्य को पण्डित कहा जा सकता है, जो पण्डितों के लक्षणों से युक्त हो।

पोप का लक्षण

परहित से मतलब नहीं पोप इसी का नाम।
ठग्गी-छल और कपट से साधे अपना काम॥

छल-कपट से दूसरे को ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवाले को पोप कहते हैं........ राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरुषों का संग न होने देना, रात-दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना, परन्तु यह बात ध्यान में रखना कि जो-जो छल-कपटादि कुत्सित व्यवहार करते हैं, वे ही पोप कहाते हैं। जो कोई उनमें भी धार्मिक, विद्वान् और परोपकारी हैं वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं। अब इन्हीं छली-कपटी, स्वार्थी लोगों का ही ग्रहण पोप शब्द से करना। —सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

वैदिकधर्म का लक्षण

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति। देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥

—अथर्व० १०।८।३२

अर्थ—मनुष्य अपने समीप रहनेवाले परमात्मा को नहीं देखता और उस अत्यन्त निकट रहनेवाले को छोड़ भी नहीं सकता। हे मनुष्य! ईश्वर के काव्य वेद को देख, वह न पुराना होता है और न मरता है।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

—मनु० २।१२

अर्थ—वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा की अनुकूलता—ये चार प्रकार के धर्म के साक्षात् लक्षण कहे जाते हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

—मनु० ६।९२

अर्थ—धैर्य, क्षमा, मन को वश में करना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि को बढ़ाना, विद्या पढ़ना, सत्य बोलना और क्रोध न करना—ये दस धर्म के लक्षण हैं।

सनातनधर्म का लक्षण

श्वेतकेतोः किल पुरा समक्षं मातरं पितुः। जग्राह ब्राह्मणः पाणौ गच्छाव इति चाब्रवीत्॥१२॥
ऋषिपुत्रस्ततः कोपं चकारामर्षचोदितः। मातरं तां तथा दृष्ट्वा नीयमानां बलादिव॥१३॥
क्रुद्धं तं तु पिता दृष्ट्वा श्वेतकेतुमवाच ह। मा तात कोपं कार्षीस्त्वमेष धर्मः सनातनः॥१४॥[1]

—महा० आदि० १२२।१२-१४

अर्थ—एक समय श्वेतकेतु बैठा था। उसने देखा कि उसके पिता के सामने ही किसी ब्राह्मण ने उसकी माता का हाथ पकड़कर अपने साथ चलने को कहा। ब्राह्मण के द्वारा माता को इस प्रकार बलपूर्वक ले-जाते हुए देखकर ऋषिपुत्र श्वेतकेतु अमर्ष में भरकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। तब अपने पुत्र को कुपित देखकर उसका पिता उद्दालक उससे बोला—हे पुत्र! क्रोध मत कर, यह तो सनातनधर्म है।

तस्य भावं समालोक्य त्रयो देवाः सनातनाः। अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽब्रुवन्॥७०॥
लिंगहस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्धनः।
ब्रह्मा कामब्रह्मलोपः स्थितस्तस्या वशं गतः। रतिं देहि मदाघूर्णे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम्॥७१॥

—भविष्य० प्रतिसर्गपर्व, खण्ड ४, अ० १७।७०-७१

उस अत्रिमुनि के भाव को देखकर सनातनधर्म के तीनों देवता उसकी स्त्री अनसूया के पास आकर कहने लगे। लिंग को हाथ में लेकर महादेवजी, उसके रस को बढ़ाते हुए विष्णु और कामवश होकर वेद का लोप किये हुए ब्रह्माजी—तीनों उसके वश में होकर बैठे और बोले—हे काम से मस्त आँखोंवाली! यौवन का दान दे, नहीं तो हम तीनों यहीं प्राण त्याग देंगे।

श्रीकृष्ण और आर्यसमाज

देखो! श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण-कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत बनानेवाले ने अनुचित, मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, पर-स्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लगाये हैं।

इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुनाके अन्य मत वाले, श्रीकृष्णजी की बहुत-सी निन्दा करते

१. गीता प्रेस से प्रकाशित महाभारत से इन श्लोकों को निकाल दिया गया है, परन्तु 'महाभारत प्रकाशक मण्डल' चाँदनी चौक, दिल्ली संस्करण में ये श्लोक हैं। पूना-संस्करण में ये श्लोक परिशिष्ट में उपलब्ध हैं। **—सम्पादक**

हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती?

—सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

—गीता० १८।७८

अर्थ—जहाँ योगिराज श्रीकृष्णजी हों और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हो वहाँ पर ही श्री, विजय, कल्याण, ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति और स्थिर राजनीति होगी, यह मेरी [सञ्जय की] निश्चित धारणा है।

सनातनधर्म और कृष्णजी

श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम प्रद्युम्न था और प्रद्युम्न के पुत्र का नाम अनिरुद्ध था। कृष्ण का पोता अनिरुद्ध जब एक बार युद्ध में बाण के सामने आया तो बाण ने इस प्रकार वार्त्तालाप आरम्भ किया—

हे वीर! हे महादुष्ट! हे राजनीति से शून्य! हे चन्द्रवंश के कलंक! हे धर्म से हीन!॥५८॥ तेरे पिता ने शम्बर को मारकर उसकी स्त्री को छीन लिया। उससे आप अपने कुल को नष्ट करनेवाले उत्पन्न हुए॥५९॥ तेरा दादा कृष्ण मथुरा में क्षत्रिय कहाता है और गोकुल में वैश्य का पुत्र नन्दनन्दन नाम से प्रसिद्ध है॥६०॥ वृन्दावन में वह नन्दगोप के पशुओं का रक्षक, गोपियों का साक्षात् यार, दुष्ट और लम्पट था॥६२॥ स्त्री का घात करनेवाले पापी कृष्ण ने पूतना को शीघ्र मार दिया और मथुरा में आकर कुब्जा को मैथुन से मार डाला॥६२॥ दुर्बल नरक को मारकर उसकी सुन्दर स्त्रियों और अपने कामी पुत्र को दुष्ट कृष्ण ने ग्रहण कर लिया॥६९॥ भीष्मक और उसके पुत्र को जीतकर देवताओं के ग्रहण करने योग्य उसकी पुत्री रुक्मिणी को ग्रहण कर लिया॥६४॥ उपायपूर्वक सत्राजित को मारकर उसकी मणि-कन्या को ग्रहण कर लिया॥६५॥ कौरव और पाण्डवों का भयंकर युद्ध कराके युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल को मार डाला॥६६॥ क्रूर कृष्ण ने दन्तवक्र, शाल्व और जरासन्ध आदि राजाओं को पृथिवी पर दे मारा॥६७॥ उपायपूर्वक नरक को मारकर उसका सब-कुछ छीन लिया, फिर राजाओं से भयभीत, दुर्बल कृष्ण समुद्र की शरण में गया॥६८॥ अपनी पत्नी के कहने से भाई इन्द्र को जीतकर स्वर्ग में भी दुर्लभ पुष्पक विमान और पारिजात वृक्ष छीन लिया॥६९॥ अपनी माता के भाई कंस को मारकर पापी कृष्ण ने उसका सब-कुछ छीन लिया, इससे अधिक तुम्हें क्या बताऊँ॥७०॥ भल्लुक को युद्ध में मारकर उसकी कन्या को ग्रहण कर लिया। कृष्ण के पिता की बहिन कुन्ती संसार में चार की स्त्री थी॥७१॥ और उसके भाई की स्त्री द्रौपदी पाँच की स्त्री थी। कृष्ण शराबी, दुराचारी और अत्यन्त लम्पट है॥७२॥ उसका बड़ा भाई बलदेव मद्यपान करता है और अपने भाई की पत्नी यमुना को प्रेम से बुलाता है॥७३॥ कृष्ण की बहिन और मामा की पुत्री सुभद्रा को इन्द्र का पुत्र और कुन्ती का जाया अर्जुन भगाकर ले गया—यह तुम्हारे कुल का क्रम है॥७४॥ —ब्रह्मवै०, खण्ड ४, अध्याय ११५

राधिकोवाच

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे। कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट॥५९॥
हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि। निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम्॥६३॥

—ब्रह्मवै० खण्ड ४, अ० ३।५९, ६३

अर्थ—राधा ने कहा—हे कृष्ण! हे विरजा के प्यारे! मेरे सामने से चला जा। हे चञ्चल, कामी और लम्पट! मुझे क्यों दुःख दे रहा है? हे सुशीला, हे शशिकला, हे पद्मावती, हे माधवी! इस धूर्त को बाहर निकालो। इसका यहाँ क्या काम है?

आर्यसमाज और व्यासजी

जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते, क्योंकि शारीरकसूत्र, योगशास्त्र के भाष्यादि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी, परस्पर-विरोधी लोगों ने भागवत आदि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं है, और वेदशास्त्रविरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यासजी-सदृश विद्वानों का काम नहीं, किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् लोगों का है। —सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लासः

व्यासजी और सनातनधर्म

पौराणिकानां व्यभिचारदोषो न शंकनीयः कृतिभिः कदाचित्।
पुराणकर्त्ता व्यभिचारजातस्तस्यापि पुत्रो व्यभिचारजातः ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागारम्

अर्थ—पौराणिकों के सम्बन्ध में बुद्धिमानों को व्यभिचार की शंका कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पुराणों के कर्त्ता व्यासजी व्यभिचार से उत्पन्न हुए थे और उनके पुत्र शुकदेव का जन्म भी व्यभिचार से हुआ था।

वैदिक धर्म की जय

प्रिय पाठक महाशय! यह बात आर्यसमाज और सनातनधर्म की साझी है कि वेद ईश्वर का ज्ञान हैं, जिन्हें परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को धर्म और अधर्म की व्यवस्था देने के लिए प्रकाशित किया, अतः वेदों में जिस काम को करने की आज्ञा है, वही धर्म है और जिस काम को करने का वेदों में निषेध है, वही अधर्म है। इसमें सन्देह नहीं कि धर्म-अधर्म को जानने के लिए स्मृति, इतिहास और अपनी आत्मा अर्थात् तर्क से भी सहायता मिलती है, परन्तु वे वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक वे वेदों के अनुकूल हों, किन्तु जहाँ पर वे वेदों से विरुद्ध हों, वहाँ वे प्रमाण के योग्य नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए स्मृति, इतिहास और आत्म-प्रियता अन्तिम कसौटी नहीं हैं, अपितु धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए अन्तिम कसौटी वेद है। इसलिए धर्म का यही लक्षण ठीक है कि जिसका वेद ने प्रतिपादन किया हो, वह धर्म है। इसी का नाम वैदिक धर्म है। वही सत्य है और वही ईश्वरीय धर्म है और वही तीनों कालों में मानने योग्य है।

महाभारतकाल तक लोग वेद को ही धर्म और अधर्म के निर्णय की अन्तिम कसौटी मानते रहे। इसलिए सारे संसार में बिना किसी मतभेद के वैदिक धर्म ही विद्यमान रहा, परन्तु महाभारत के पश्चात् एक ऐसा युग आया जब वेद के विद्वानों की कमी के कारण यह कसौटी लोगों के हाथ से जाती रही और अविद्या-अन्धकार के कारण स्वार्थी, दुष्ट, शराबी, दुराचारी, मांसभक्षी, जुआरी और व्यसनी लोगों की बन आयी। उन्होंने लोगों में यह

बात प्रसिद्ध की कि जो बात संस्कृत [देववाणी] में लिखी हो और जो वचन ब्राह्मणों के मुख से निकले, धर्म और अधर्म का निर्णय करने में वही अन्तिम कसौटी है। अविद्या-अन्धकार के कारण जब लोगों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया तो इन स्वार्थी और दुराचारी लोगों ने ऋषियों और मुनियों के नाम से ग्रन्थ बनाने आरम्भ किये, जिनमें अपने दुराचारों को धर्म सिद्ध करने के लिए यज्ञों और मृतकश्राद्धों के बहाने से मांसभक्षण और मद्यपान की शिक्षा लिखी गयी और मांसभक्षण को इस सीमा तक उचित सिद्ध किया गया कि गोमेध के बहाने से गोमांस तक खाने की आज्ञा दे दी गयी और दुराचार की शिक्षा देने में वह योग्यता प्रकट की कि कोई ऋषि, कोई मुनि, कोई देवता ऐसा नहीं छोड़ा जिसपर दुराचार का आरोप न लगाया गया हो। यहाँ तक कि माँ, बहिन और बेटी से सम्भोग को भी उचित ठहरा दिया।

झूठ, चोरी, जुआ, छल, कपट आदि को धर्म सिद्ध करने के लिए ऋषियों और महात्माओं के नाम से अनेक कहानियाँ घड़ डालीं। स्त्री और शूद्रों से विद्याध्ययन का अधिकार छीन लिया। छोटी अवस्था के, बुढ़ापे के और अनमेल विवाहों को धर्म के नाम से प्रचलित कर दिया। परमात्मा की पूजा के स्थान में मूर्त्तिपूजा आरम्भ की और तीर्थ, व्रत तथा तिलक आदि से मुक्ति बताकर लोगों को खूब उल्लू बनाया। मृतक पितरों के नाम से खीर-पूरी खाकर अपने पेट को लैटरबक्स बनाया। समुद्रयात्रा को पाप बताकर व्यापार को चौपट किया और विदेशियों के लिए धर्म का दरवाज़ा बन्द करके वैदिक धर्म को सीमित कर दिया। आपस में छूआछूत और घृणा फैलाकर देश और जाति के विनाश के सामान एकत्र कर दिये। वर्णों को जन्म से मानकर उन्नति के द्वारों को बन्द करके, जन्म से ही लोगों के गुरु बनकर विद्याध्ययन की इच्छा को समाप्त कर दिया। विधवाओं के विवाह का निषेध करके उन्हें अपनी सेवा से ही मुक्ति का मार्ग बताया। अपनी बनाई कपोलकल्पित पुस्तकों का नाम पुराण और अपने नये कपोलकल्पित धर्म का नाम सनातनधर्म रखकर धर्म के ठेकेदार बन बैठे।

जब तक किसी अन्य मत का भारतवर्ष में प्रवेश नहीं हुआ तब तक इन लोगों ने राजा और प्रजा को बन्दर की भाँति मनमाना नाच नचाया, परन्तु जब विदेशी लोग अर्थात् मुसलमान और ईसाइयों ने भारत में आकर पुराणों का अध्ययन कर इनके विरुद्ध प्रचार किया तो इससे प्रभावित होकर सैकड़ों और सहस्रों ही नहीं अपितु लाखों-करोड़ों मनुष्य अपने धर्म को छोड़कर मुसलमान और ईसाई बन गये, परन्तु ये लोग—**'कोई मरे कोई जीवे, सुथरा घोल बताशे पीवे'**—इस कहावत के अनुसार अपने स्वार्थों तथा व्यसनों में मस्त रहे और टस-से-मस न हुए।

ऐसी स्थिति होनेवाली थी कि सम्पूर्ण भारत मुसलमान और ईसाई होकर अपने पुराने धर्म को तिलाञ्जलि दे देता कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने स्वामी विरजानन्दजी से वेदों की शिक्षा ग्रहण कर अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार भारतवर्ष से मत-मतान्तरों के अन्धकार को मिटाकर वैदिक धर्म-प्रचार करने के दृढ़ व्रत को धारण किया और अपने सारे जीवन को इसी काम में लगा दिया तथा डंके की चोट इस बात की घोषणा की कि 'पुराण हमारे धर्मग्रन्थ नहीं हैं अपितु ये स्वार्थी लोगों ने अपने दुराचार को धर्म सिद्ध करने के लिए ऋषि-मुनियों के नाम से बनाये हैं, जिनमें वैदिक धर्म और ऋषि-मुनियों की निन्दा है। हमारे धर्मग्रन्थ चार वेद हैं और वेद ही धर्म और अधर्म का निर्णय करने में

अन्तिम कसौटी हैं।'

उन्होंने मुसलमान, ईसाई तथा पौराणिकों को ललकारा और कहा कि मैदान में आकर शास्त्रार्थ करो और अपने सिद्धान्तों को वेद के मुक़ाबले में सत्य सिद्ध करो। ऋषि दयानन्द के घोषणा करते ही सब स्वार्थी और धूर्त लोगों में हलचल मच गयी। ऋषि ने नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में घूम-घूमकर वैदिक धर्म का प्रचार और असत्य मतों का खण्डन किया। जो लोग हिन्दुओं को हड़पने के लिए सरपट दौड़ लगा रहे थे, वे शास्त्रार्थों में सिर पर पाँव रखकर भागे और उनके लिए अपना मुँह छिपाना कठिन हो गया। ऋषि दयानन्द ने पौराणिक सिद्धान्तों का खण्डन करके वैदिक धर्म का प्रचार किया। परिणाम यह निकला कि पौराणिकों ने पैंतरे बदलने आरम्भ किये और क्रियात्मक रूप से पौराणिक सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर वैदिक धर्म की शरण में आ गये। आज वह कौन-सा सिद्धान्त है जिसे स्वीकार करके पौराणिकों ने सनातनधर्म की पराजय और वैदिक धर्म की वास्तविक विजय का प्रमाण न दिया हो। जो सनातनधर्म आज से कुछ समय पूर्व स्त्री और शूद्रों की शिक्षा का घोर विराधी था और इस विषय पर आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ किया करता था, उसी सनातनधर्म के अधीन आज पञ्जाब में सैकड़ों कन्या पाठशालाएँ चल रही हैं, जिनमें चारों वर्णों की लड़कियाँ शिक्षा पा रही हैं, जिन पाठशालाओं में लड़कियों को सनातनधर्म के अनुसार वेदमन्त्रों से सन्ध्या करना सिखाया जाता है और जिनके दरवाजों पर ये बोर्ड लिखे हुए दिखाई देते हैं—'सनातनधर्म पुत्री पाठशाला'। बताइए, यह वैदिक धर्म की विजय है या नहीं? जो सनातनधर्म साधारण जनसमाज में वेदमन्त्रों को पढ़ना इसलिए पाप समझता था कि किसी शूद्र के कान में वेदमन्त्र न पड़ जाएँ, इसी सनातनधर्म के हाईस्कूलों में चारों वर्णों के विद्यार्थियों को सनातनधर्म की विधि के अनुसार वेदमन्त्रों के साथ सन्ध्या सिखाई जाती है और सनातनधर्म के पण्डित शास्त्रार्थों में जनसमूह के समक्ष प्रमाणों में वेदमन्त्रों का पाठ करते हैं। बताओ, यह वैदिक धर्म की विजय है या नहीं?

जो सनातनधर्म समुद्र-यात्रा को पाप समझता था और जिसने बनारस में एक सेठ को समुद्रयात्रा के कारण जाति-च्युत कर दिया था, आज वही सनातनधर्म प्रतिवर्ष अपने उपदेशकों को समुद्र-पार अफ्रीका में स्वयं प्रचार के लिए भेजता है और इसके बड़े-बड़े नेता राजनैतिक कार्यों के लिए लन्दन की गलियों में होटलों की सजावट बने हुए दृष्टिगोचर होते हैं, क्या वह वैदिक धर्म की विजय नहीं?

जो सनातनधर्म अछूतोद्धार से कोसों दूर भागता था और किसी अछूत के साथ छू जाने से सनातनधर्म की लुटिया डूब जाती थी; आज उसी सनातनधर्म ने अछूतोद्धार का विभाग खोला हुआ है और उसी सनातनधर्म के पण्डितों ने अछूतों को कुओं से पानी भरने, स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने, दरियों पर बैठकर कथा सुनने और मन्दिरों में जनसाधारण के साथ पूजा करने की व्यवस्था देकर वैदिक धर्म की विजय को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया और सनातनधर्म के संरक्षक मुख्य नेता ने प्रयाग और वाराणसी में महतरों को एक ही दरी पर बैठाकर मन्त्रपूर्वक दीक्षा दी, क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं?

जिस सनातनधर्म की नौका ईसाई और मुसलमानों की शुद्धि का नाम लेते ही समुद्र की तह में डूब जाती थी, उसी सनातनधर्म के धार्मिक नेता स्वामी शंकराचार्यजी ने जन्म की ईसाई अमेरिकन लेडी मिस मुलर को शुद्ध करके उसका विवाह सनातनधर्म के अन्नदाता महाराजा इन्दौर के साथ पूर्ण सनातनधर्म की विधि के अनुसार किया। इसी सनातनधर्म ने मथुरा और आगरा के क्षेत्र में 'पुनः संस्कार-समिति' बनाकर जन्म-जन्मान्तरों

के मुसलमान मलकानों को सनातनधर्म में मिलाकर उनका राजपूतों के साथ रोटी और बेटी का सम्बन्ध स्थापित करा दिया। इसी सनातनधर्म के मोक्ष के ठेकेदार और हरद्वार के पण्डों ने जन्म के मुसलमान मुम्बई के सेठ को सनातनधर्म में सम्मिलित करके उसके हाथ से खीर और हलवा उड़ाया। इसी सनातनधर्म की प्रतिनिधि सभा ने कश्मीर के मुसलमान हुए-हुए हिन्दुओं की शुद्धि के लिए कुछ समय पूर्व ही लाहौर में व्यवस्था देकर उन सबको शुद्ध करके सनातनधर्म में सम्मिलित किया। अब कहिए, यह वैदिक धर्म की विजय है या सनातनधर्म की?

विधवाविवाह का नाम लेते ही जिस सनातनधर्म के तन-बदन में आग लग जाती थी, उसी सनातनधर्म के पण्डित अब स्थान-स्थान पर सनातनधर्म की विधि के अनुसार विधवाओं का विवाह कराके डबल दक्षिणा उड़ा रहे है, और जन्म की मुसलमान विधवाओं को शुद्ध करवाकर उनके साथ विवाह करनेवाले पण्डित को धर्मप्रचार के मञ्च पर गुरु का स्थान देकर उसे गुरु-पत्नी का पद दे रहे हैं, क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं है?

जो सनातनधर्म जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था को परमधर्म मानता था, उसने एक जन्म से कायस्थ संस्कृत के विद्वान् रघबर दयाल शास्त्री एम०ए० को पण्डित की उपाधि प्रदान कर सनातनधर्म कॉलेज लाहौर का प्रिंसिपल बनाकर कर्मों से वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त के सामने सिर झुका दिया, क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं?

जो सनातनधर्म बालविवाह को अपने धर्म की नींव मानता था, उसने आज युवा-अवस्था के विवाह को स्वीकार कर लिया है और सनातनधर्म के नेताओं ने असेम्बली में बहुमत से 'शारदा एक्ट' को पास करके सनातनधर्म के **'अष्टवर्षा भवेद् गौरी'** वाले सिद्धान्त को बूट की ठोकर से ठुकरा दिया, क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं है?

जो सनातनधर्म पुराणों को सच्चा इतिहास मानकर उनकी कथाओं को सरल और रोचक बताया करता था, आज वह वैदिक धर्म की गोलाबारी से तंग आकर अलङ्कारों की खाइयों में अपनी जान बचाता फिरता है, क्या यह वैदिक धर्म की विजय नहीं है?

सनातनधर्म पहले यह मानता था कि मूर्त्ति परमेश्वर है, फिर उसने पैंतरा बदला कि मूर्त्ति में परमेश्वर की पूजा करते हैं, अब कहता है कि मूर्त्ति के द्वारा परमेश्वर की पूजा की जाती है, और मूर्त्तिपूजा मूर्खों के लिए है, ज्ञानियों के लिए नहीं। सनातनधर्म पहले कहता था कि पितरों के नाम से खिलाया हुआ भोजन पितरों को उनकी योनि के अनुसार भोजन बनकर वहीं पहुँचता है, फिर कहने लगा कि पितर स्वयं भोजन करने के लिए आते हैं। अब यह कहा जा रहा है कि मृतक पितरों की स्मृति है। सनातनधर्म पहले निराहार व्रतों को मुक्ति का साधन मानता था, अब कहता है कि इससे शरीर का स्वास्थ्य प्राप्त होता है। सनातनधर्म पहले तीर्थों को मुक्ति का मुख्य साधन मानता था, परन्तु अब ध्वनि आ रही है कि भ्रमण से जलवायु का परिवर्तन होकर स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। तात्पर्य यह कि सनातनधर्म का एक भी सिद्धान्त ऐसा नहीं दिखता जिसे उसने बदलकर वैदिक धर्म के अनुरूप बनाने का प्रयत्न न किया हो। यह वैदिक धर्म की विजय की मुँह बोलती तस्वीर है। जब मैं इस परिवर्तन को देखता हूँ तो भविष्य में पौराणिक धर्म के मटियामेट होकर वैदिक धर्म में परिवर्तित हो जाने का चित्र मेरी आँखों के सामने घूमता हुआ दिखाई देता है। इस दृश्य को देखकर मेरे मुँह से सहसा निकल जाता है—

जो बोले सो अभय—वैदिक धर्म की जय!

सनातनधर्म के फूल

गर सुगन्धित पुष्प हों तब तो हमें मक़बूल[१] हैं।
वरना गंगा में बहाओ सनातनधर्म के ये फूल हैं।।

आदरणीय पाठकगण! मैं बहुत दिनों से यह चर्चा सुन रहा था कि मेरी पुस्तक 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण' का उत्तर सनातनधर्म की ओर से तैयार कराया जा रहा है और शीघ्र ही प्रकाशित हो जाएगा। इसी प्रतीक्षा में मेरे मित्र महाशय मोहनलालजी आर्य ने एक ट्रैक्ट का मुखपृष्ठ मेरे पास भेजा, जिसके दूसरी ओर प्रकाशित होनेवाली पुस्तक का विज्ञापन था, जिसमें मुझे दर्जनों गालियाँ दी गयी थीं। इन गालियों को पढ़कर मुझे दु:ख नहीं हुआ, क्योंकि मुझे प्राय: सनातनधर्म का अतिथि बनने का अवसर मिलता रहता है और ये गालियाँ आतिथ्य के रूप में सनातनी मित्रों की ओर से मुझे भेंटस्वरूप मिलती रहती हैं। मुझे कोई आश्चर्य भी नहीं हुआ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे सनातनी भाइयों के पास सिवाय, झूठ, मिथ्याभाषण, धोखा देना, दुराग्रह, दोषारोपण, अविद्या, स्वार्थ और गालियों के और कुछ है ही नहीं। मुझे आश्चर्य तो तब होता, यदि वे गालियाँ न निकालते, अस्तु।

विज्ञापन-पत्र को देखकर मेरे मन में मेरी पुस्तक के उत्तर में लिखी गयी पुस्तक को देखने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई, क्योंकि मैं सत्य-अन्वेषी होने के कारण सत्य के स्रोत पर पहुँचकर अपनी धार्मिक प्यास को बुझाना चाहता था। पर्याप्त प्रतीक्षा के पश्चात् मेरे मित्र ने वह पुस्तक मेरे पास भेजी। मैंने उत्सुकता के साथ पुस्तक के पन्ने पलटने आरम्भ किये। पुस्तक का नाम 'सनातनधर्म विजय' पढ़ा तो मन बहुत प्रसन्न हुआ, क्योंकि सनातनधर्म नाम प्राचीन वैदिक धर्म का है। इसकी विजय से बढ़कर प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती है! पुस्तक के नाम के नीचे योगिराज श्रीकृष्णजी का चित्र देखकर भारत की प्राचीन सभ्यता आँखों के सामने चमचमाने लगी। श्रीकृष्णजी के सदाचार, राजनीति और पीड़ितों की वकालत को स्मरण करके मन गद्‌गद हो गया और परमात्मा से प्रार्थना की कि—'परमात्मन्! भारतवर्ष के उद्धार के लिए श्रीकृष्ण के सदृश शूरवीर हमारे देश में उत्पन्न हों।'

पृष्ठ उलटते ही दूसरे पृष्ठ के ऊपर 'ओम्' नाम को देखते ही सहसा मुँह से निकल गया—'सत्य सनातन वैदिक धर्म की विजय', बोलो—ऋषि दयानन्द की जय! जो सनातनधर्मी पुस्तकों के आरम्भ में 'ओम्' नाम लिखने पर टीका-टिप्पणी किया करते थे और **'श्रीगणेशाय नम:'** के बिना दम नहीं लिया करते थे, उनसे पुस्तकों के आरम्भ में 'ओम्' लिखवाने का गौरव वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्दजी को ही प्राप्त है और यही वैदिक धर्म की आज्ञा है। इससे आगे पोप-अवतार कुञ्जलालजी का चित्र देखकर मेरा माथा ठनका, क्योंकि मैं पोपजी को अच्छी प्रकार से जानता हूँ। ये वही पोपजी हैं, जिन्होंने डेरागाजीखाँ में सनातनधर्म के मञ्च से पं० श्री लोकनाथजी की शान में अशिष्ट बकवास की और पण्डित लोकनाथजी के मानहानि का दावा करने पर पोपजी को लिखित क्षमा माँगकर अपनी अशिष्ट बकवास के लिए खेद प्रकट करना पड़ा। इस चित्र को देखकर चाहता था कि मैं इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी धारणा को बदल लूँ कि पृष्ठ के

१. स्वीकार।

उलटने पर पुस्तक के ऊपर एक शैर दृष्टिगोचर हुआ, जो इस प्रकार है—

लाख बरसाते हो पत्थर हमें मक़बूल हैं। यह सनातनधर्म है जिसकी तरफ़ से फूल हैं॥

इस शैर को पढ़कर सबसे पहले तो मैंने इस बात पर विचार किया कि क्या मैंने अपनी पुस्तक में सनातनधर्म पर पत्थर बरसाये हैं? आत्मा ने उत्तर दिया कि बिल्कुल असत्य, अनर्गल बकवास है। मैंने व्यक्तिगतरूप से किसी भी सनातनधर्मी की शान में सभ्यता से गिरे हुए शब्दों का प्रयोग नहीं किया। रहा पुराणों की गन्दी, मिथ्या, अश्लील व असम्भव कहानियों का शब्दशः लिखना और पौराणिक धर्म का सही चित्र खेंचना—वह इसलिए पत्थर बरसाना नहीं कहा जा सकता कि इसी पुस्तक के पृष्ठ १४ पंक्ति पाँच से ११ तक एक सिद्धान्त निश्चित किया गया है कि—'जो कुछ किसी धर्म के सम्बन्ध में इस धर्म की पुस्तकों में लिखा हुआ हो उसका वर्णन करना भावनाओं का भड़काना नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उसका उत्तरदायित्व वर्णन करनेवाले पर नहीं होता, अपितु उसका उत्तरदायित्व पुस्तक लिखनेवाले पर होता है। उस धर्म को माननेवालों का यह कर्त्तव्य है कि वे सचाई के सुनने और ग्रहण करने से घबराएँ नहीं।"

इस सिद्धान्त के अनुसार पत्थर बरसाने के अपराध से तो हम बिल्कुल मुक्त हैं। अब रहा सनातनधर्म की ओर से हमपर फूलों की वर्षा का वर्णन। इसे पढ़कर हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रही। हृदय ने प्रश्न किया कि क्या सनातनधर्म की ओर से यह आशा की जा सकती है कि वे सभ्यता और अमृतरूप प्रेमभरी वाणी से फूल बरसाएँ? उत्तर मिला—प्रथम तो पौराणिक सनातनधर्म से यह आशा ही व्यर्थ है, क्योंकि जिन लोगों ने अपने ऋषि-मुनि, देवता और अवतारों को बदनाम करने में कोई कसर उठा न रक्खी हो, उनसे हम उत्तम व्यवहार की आशा कैसे कर सकते हैं? फिर जिस पुस्तक की तैयारी में पोपावतार कुञ्जलाजी और बाबू काशीराम प्रधान सनातनधर्म सभा जाखल मण्डी, जिला हिसार जैसे मुँहफट, बकवासी, डबल पोपों का हाथ हो उस पुस्तक में सभ्यता और प्रेम के फूलों की आशा करना बालू रेत में से तेल प्राप्त करने की आशा के समान है, परन्तु फिर विचार आया कि परिवर्तन का युग है, सम्भव है सनातनधर्म ने भी अपनी पुरानी शैली को बदल लिया हो। यदि इस बात पर भी विश्वास न हो तो तीन सज्जन मुकुन्दराज अराधे, लालचन्द धुन्ना और जगन्नाथ हाँडाजी श्रीकृष्ण को प्रत्येक स्थान पर व्यापक समझकर गवाही दे रहे हैं कि इस पुस्तक में हमारी पुस्तक का उत्तर "अत्यन्त सभ्यता एवं शिष्टतापूर्ण तथा शान्ति और प्रेमभरे शब्दों में देकर सभ्य संसार में प्यारे सनातनधर्म की शानदार विजय दिखलाई है।" इनकी सज्जनतापूर्ण गवाही पर विश्वास करना चाहिए। इस विचार ने हृदय पर प्रभाव डाला और मैंने सारी पुस्तक का अध्ययन कर डाला, परन्तु पुस्तक समाप्त करते ही सहसा यह शैर मुँह से निकल पड़ा—

बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का। जो चीरा तो इक क़तरये-खूँ न निकला॥

सन्देह दूर हो गया और सनातनधर्म की नंगी तस्वीर आँखों के समक्ष आ गयी। आत्मा ने आवाज़ दी कि तुम धोखे में थे। यह सत्यसनातन वैदिक धर्म की विजय नहीं। यह तो जोगी का वेश धारण करके रावण संसार को धोखा दे रहा है। श्रीकृष्णजी का चित्र और मङ्गलाचरण में 'ओम्' नाम केवल लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए डाल दिये गये हैं। पौराणिक सनातनधर्म की लेखन-शैली में कोई परिवर्तन नहीं आया और तुमने जो तीन सज्जनों के कहने पर विश्वास कर लिया वह धोखा खाया। सच समझो लङ्का में सभी

बावन गज के होते हैं। मैंने आत्मा की आवाज़ सुनकर अपने धोखा खाने पर खेद प्रकट किया और इस विचार से कि मेरी भाँति दूसरे लोगों को भी कहीं इसका जोगी-वेश देखकर धोखा न लग जाए, रावण को वास्तविक रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्णय कर लिया और सनातनधर्म के फूलों को चुनकर एक थैली में इकट्ठा करना अपना कर्त्तव्य समझा। अब यह सनातनधर्म के फूलों की थैली पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। तनिक पक्षपात की पट्टी आँखों से हटाकर इसके दर्शन करें—

पुष्प संख्या	पृष्ठ	पंक्ति	फूल के दर्शन
१.	२	३	आर्यसमाजियों के **सरासर झूठे, भड़कानेवाले** और **असभ्य आचरण** के उत्तर में।
२.	६	१०	यह **गन्दा चिथड़ा** किसी तनिक-सी भी मानवता रखनेवाले मनुष्य के मस्तिष्क का परिणाम नहीं हो सकता।
३.	६	१३	बनावटी **बकवास** से पूजनीय हिन्दू महापुरुषों को अपमानित किया गया है।
४.	६	१८	इसकी लेखन-शैली पर **लानत** भेजे बिना नहीं रह सकता।
५.	७	१	पता नहीं आप सनातनधर्म के कई जन्मों के शिशुपाल थे।
६.	७	१३	इस बेहूदा पुस्तक को पाँव तले **रौंदकर बूट की ठोकर से गन्दी नाली में** फेंक देते।
७.	११	१४	जिनका अस्तित्व धार्मिक संसार में अब **नाममात्र रह गया है।**
८.	१४	१५	और **दयानन्दी महाशय** ने जो कहा वह क्यों ठीक है?
९.	१५	२०	जिनके लिए **गुमनामी के कोने** से निकलने का इसके सिवा कोई अवसर नहीं था।
१०.	१६	२	क्या आपके **अन्तःकपट को** प्रदर्शित नहीं करता।
११.	२१	१०	तो आर्य विधवा-आश्रमों में विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार क्यों किया जाता है, क्यों **उनके गर्भ गिराये जाते हैं।**
१२.	२४	१	बाबू सन्तरामजी रिलीविंग स्टेशन मास्टर को जो **शास्त्र के ज्ञान से बिल्कुल शून्य हैं।**
१३.	२४	२२	पण्डित लोकनाथजी को बड़ी दूर से एक **विशेष शुल्क देकर** तार द्वारा बुलवाया।
१४.	३०	१	जबकि स्वामीजी ने झूठे प्रमाण देकर जनता को धोखा देने का ठेका ले-रक्खा है तो चेले कम क्यों? कहावत है—**'गुरु जिन्हाँ दे टप्पणे, चेले जान शड़प्प।**
१५.	३२	१	तो इन्हें नूतन मानना **नास्तिकता** है।
१६.	३५	१	आजकल के **अश्रद्धालु, विषयी** लोग कैसे समझ सकते हैं।
१७.	३५	४	**अधर्मी और ईर्ष्या** से मदमस्त लोगों को क्या ज्ञान हो सकता है?
१८.	३६	११	**अज्ञानी महाशय** इसे गप्प कहेंगे।

१९.	३९	२०	ऐसी उत्तम कथा को गप्प कहना कितनी **मूर्खता** है।
२०.	४३	७	आर्यसमाजी जीवित पति की विद्यमानता में स्त्री को दूसरे पति के पास जाकर सन्तान उत्पन्न कराना वैध मानते हैं।
२१.	४६	६	**लाला मनसारामजी** ने कई **बेहूदा आक्षेप** कर डाले।
२२.	६१	१	महाशयजी चारदीवारी के अन्दर ही धुरन्धर विद्वान् हैं, बाहर तो **खाली विद्वान्** भी सिद्ध नहीं हुए।
२३.	६१	२३	आर्यसमाजी पण्डित लोकनाथ साहब तो हर स्थान से ही सनातनधर्मी विद्वानों से **हार खाकर भी** सिर आगे ही रखने के अभ्यस्त हैं।
२४.	६६	२३	स्वामी दयानन्दजी बिना योग के ही जो कुछ मनघड़न्त ही लिख दें वह वेदानुकूल क्यों न हो, **कलियुग के ऋषि जो हुए।**
२५.	८९	२०	ऋषियों के पवित्र जीवन पर मज़ाक उड़ाना **पशुता है।**
२६.	९८	२०	जिसका उत्तर आर्यसमाज के उपदेशक तो क्या यदि **इनके गुरु स्वामी दयानन्द भी जन्म लेकर आएँ तो** नहीं दे सकते।
२७.	१००	२२	धोखा देना सनातनधर्म का कर्त्तव्य नहीं, यह काम आर्यसमाज का ही रजिस्टर्ड है।
२८.	१०२	४	यह सनातनधर्मियों की बेहूदगी नहीं, अपितु वैदिक धर्म की डींग मारनेवालों की **बेहूदगी** है जो जनता को वेदों के नाम पर **झूठे मन्त्र** लिखकर **मार्ग-भ्रष्ट** करने का **बेहूदा** प्रयत्न कर रहे हैं। लालाजी! सनातनधर्मी आर्यसमाजियों की भाँति **बेहूदा** आलोचना करना नहीं जानते। यह आदत (स्वभाव) भी आपको ही शोभा देती है, जिन्होंने प्रसंग को छोड़कर पुराणों की कई कथाएँ अधूरी ही प्रस्तुत करके **जनता को धोखा दिया है।**
२९.	१०३	१८	और केवल शास्त्रार्थ में **धोखा देकर** सत्यार्थप्रकाश के सफ़ेद काग़ज़ पर स्याह (काला) लिखे हुए मत के **विरुद्ध** लालाजी जानवरों को अन्न देना इन मन्त्रों का आधारभूत सिद्धान्त बता रहे हैं।
३०.	१०४	५	वेद ही की आज्ञाओं का **ढोंग रचनेवाले स्वामी दयानन्दजी** का कोई अधिकार नहीं।
३१.	११०	१५	उधर विधवाओं के गर्भधारण करने की चिन्ता में आप वेदों के विरुद्ध दुराचार करने के लिए सभी आर्यसमाजियों को शिक्षा देते हैं, परन्तु **कन्या महाविद्यालयों और पाठशालाओं** की जवान-जवान **लड़कियों की ऐसी चेष्टाओं** का लाला साहब ने क्या प्रबन्ध किया है? आये दिन हमें ऐसे

			उदाहरण सुनने से दु:ख होता है, परन्तु इसका कोई **प्रबन्ध** नहीं किया गया। आजकल की सभ्यता ने घर-घर **व्यभिचार को प्रधानता** दे रक्खी है, इसका क्या प्रबन्ध करोगे?
३२.	११३	५	स्वामीजी ने इन दुराचारी लोगों के लिए बड़ा उपकार **किया** है कि **पतिव्रतधर्म का नाश करके** समस्त स्त्रियों को **व्यभिचार करने** के लिए उद्यत किया है।
३३.	११३	२०	यदि कोई **मूर्ख मनुष्य** केवल प्रश्न को लेकर अपने स्वार्थ से अपने प्रयोजन ही को सिद्ध कर ले।
३४.	११४	१८	**जंगली मनुष्य** की समझ में यदि बेतार से तार भेजने का सिद्धान्त समझ में न आये।
३५.	११४	२०	डॉक्टर साहब की जर्राही किसी **मूर्ख की** समझ में न आये।
३६.	११६	१०	प्रत्येक जाति के मनुष्य के लिए ही नियोग की आज्ञा मनु भगवान् ने दी है, यह **मूर्खता** है।
३७.	११६	१८	नियोग भी विवाह की भाँति प्रसिद्धि से किया जाए। प्रसिद्धि करने के लिए **विज्ञापन-पत्र लगाये जाएँ, मुनादी की जाए अथवा मिठाई बाँटी जाए** कि अब मुझसे नहीं रहा जाता, अत: नियोग करूँगा और स्त्री से भी न रहा जाने पर उसी प्रकार प्रसिद्धि करे।
३८.	११८	४	फिर बलात् ही नियोग मान लेना आर्यसमाजियों की **चालबाज़ी** नहीं तो और क्या है?
३९.	११९	२	ऐसी अवस्था में तो बाबू लोगों का दिवाला निकल जाएगा। यदि कोई महाशय विद्या के लिए विलायत चला जाए और छह वर्ष न आये तो **स्त्री से छुट्टी**। यदि किसी अन्य स्थान में नौकर हो जाए तो घर की **स्त्री से हाथ धो बैठे।**
४०.	१२०	३	नियोग स्पष्ट व्यभिचार की शिक्षा है।
४१.	१२१	१०	क्या कोई अपनी स्त्री को किसी दूसरे **पुरुष की शय्या पर सोने** की आज्ञा दे सकता है?
४२.	१२६	१	आप लोगों ने **झूठ लिखना और बोलना** समाज की उन्नति का कारण समझ रक्खा है, कितनी **धोखेबाजी** है।
४३.	१२८	६	किसी आप-जैसे **उलटी समझवाले** के लिए ही नियोग की रीति सिद्ध करनी होगी।
४४.	१२८	९	आपने तो मिस मेयो को भी मात कर दिया! क्यों न हो, **एक गन्दगी के कीड़े को सिवाय दुर्गन्ध ग्रहण करने** के और क्या आ सकता है?
४५.	१२८	१७	आपकी जिह्वा क्यों न कट गई।
४६.	१२८	२०	विधवा-विवाह सिद्ध करना **मूर्खता** है।

४७.	१२९	१६	**अधसीखी डायन** अपने घरवालों को ही खाती है।
४८.	१३०	४	प्रथम श्रेणी की **अदूरदर्शिता** है।
४९.	१३१	३	आर्यसमाज में नियोग से आज तक कितने बच्चे पैदा हुए?
५०.	१३१	८	दस बच्चे पैदा करने के लिए लगभग बीस वर्ष **आपकी नियोगी स्त्रियों को दूसरे भोगी पुरुषों से सम्भोग करना पड़ेगा।**
५१.	१३१	१३	आर्यसमाज ऐसे कुछ युवकों को नियुक्त कर रक्खे जिनके भोजन का उत्तम प्रबन्ध आर्यसमाज की ओर से किया जाया करे **ताकि वे सरलता से बच्चा पैदा करने में लाभदायक सिद्ध हों और वे इच्छुक सामाजिक स्त्रियों की इच्छा को समय-समय पर पूरा कर सकें।**
५२.	१३७	१६	मुर्दा घोड़े के साथ मैथुन का विचार करना **वेदों के विरोधी नियोगी और कामी पुरुषों का ही काम** हो सकता है।
५३.	१४४	५	ओह! अब खूब समझे। दयानन्दियों के जवान-जवान स्त्री और पुरुषों के जोड़े सर्गारम्भ के समय जो तिब्बत, हिमालय पर गिरे होंगे तभी से **हिमालय सबसे ऊँचा हो गया होगा।** आश्चर्य है कि आकाश से जोड़े गिरे और उनकी हड्डियाँ चूर-चूर नहीं हुई। क्यों उस समय हिमालय पर्वत **रबड़ का बना हुआ था** अथवा उसमें स्प्रिंग लगे हुए थे अथवा उन जोड़ों के शरीर लोहे के थे जो इतनी दूर से गिरे और न टूटे?
५४.	१४५	१९	लाला साहब को **नटोंवाली मर्ज** है कि जैसे वे कहा करते हैं-'मैं न मानूँ, मैं न मानूँ।'
५५.	१५१	१२	जिन मुसलमानों को आपने शुद्ध करके चोटियाँ रखवाकर आर्यसमाजी बनाया था, वे सारे-के-सारे आर्यसमाज में विवाह करके **भोगविलास भोगकर** फिर मुसलमान बन गये। जब आपने इन्हें हिन्दू बनाकर **पूरा लाभ उठा** लिया है, तो अब इन्हें हिन्दू बनाने की कौन-सी आवश्यकता शेष रही है।
५६.	१५७	४	क्या आर्यसमाज ने कोई ऐसी **दुराचारिणी स्त्रियाँ नौकर रक्खी हुई हैं,** जिन्होंने हर नवीन विवाहिता स्त्री के पास जाकर, अपना अपमान करवाकर वापस आने का प्रतिज्ञा-पत्र लिख दिया हो?
५७.	१५७	१२	इन्हें जहाँ शिश्न या लिंग आदि शब्द दृष्टिगोचर होते हैं, वहाँ ये अपने स्वभाव के अनुसार मूत्रेन्द्रिय का ही ग्रहण कर लेने में बड़े चतुर हैं।
५८.	१५८	२	तो क्या आपके निराकार ईश्वर ने **आपके लिए वीर्य का हौज (कुण्ड) बना रक्खा है?**

५९.	१५८	९	**यह पुस्तक अश्लील है और इसमें दुराचार फैलानेवाली शिक्षा दी हुई है, जिसकी चर्चा नियोग प्रकरण में की जा चुकी है। जब तक संसार में सत्यार्थप्रकाश है और गुदा-इन्द्रिय से साँप पकड़नेवाला स्वामीजी का भाष्य विद्यमान है, तब तक आर्यसमाज अपना सिर ऊँचा नहीं कर सकता।**
६०.	१६१	७	**आपने लज्जा छोड़कर, झूठे प्रमाण देकर धोखा देने का** ठेका ले-रक्खा है?
६१.	१६१	१०	**क्या सभी स्वामी दयानन्दजी की भाँति आचरण करनेवाले हैं?** पुराण आपके झूठा बदनाम करने से **सत्यार्थप्रकाश की भाँति** अश्लील ग्रन्थ नहीं माने जा सकते।
६२.	१६४	२१	वे समाजी लेखक नहीं थे कि **स्वामी दयानन्दजी एक रण्डी के विष देने से मर जाएँ**, परन्तु इस सचाई पर पर्दा डाला जाए या 'दयानन्द छल-कपट दर्पण' के अनुसार स्वामी दयानन्दजी बाल-अवस्था में एक जाट के लड़के के साथ घर से निकल जाएँ और समाजी लेखक इस सचाई को छुपाने का प्रयत्न करें।
६३.	१६५	७	यह आर्यसमाज के ही धर्मशास्त्र को शोभा देता है कि वह गर्भवती को खुले शब्दों में आज्ञा दे चुका है कि **हे गर्भवती, यदि तुमसे न रहा जाता हो तो जाओ, किसी अन्य पुरुष से आनन्द लूटो।**
६४.	१६६	६	**ब्रह्मा कोई आर्यसमाजी नहीं था जिसकी स्त्री को देखते ही ऐसी अवस्था हो जाती।**
६५.	१६७	२	अब तो आर्यसमाजियों के निराकार ईश्वर का भी वीर्य पारा बहने लगा।
६६.	१६९	११	**अपितु बकरी की योनि में और बैल की गुदा में ही लिंग डालने की स्वामीजी की आज्ञा से स्पष्ट** ज्ञात होता है कि आर्यसमाज में इस मन्त्र के अनुसार नर और मादा दोनों के साथ भोग करने का वैदिक विधान है।
६७.	१६९	१७	ऐसे उपदेश स्वामीजी के वेदभाष्य में ही पर्याप्त हैं। वहाँ ही देखकर आचरण करने का प्रयत्न करें तभी वैदिक धर्मी कहला सकोगे, परन्तु **कहीं गुदा से साँप पकड़ने का प्रयत्न न कर बैठना।**
६८.	१७०	१६	स्वामीजी का यह लेख **हूबहू ईसाइयों के धर्म के** अनुसार है।
६९.	१७२	१८	**कौन मूर्ख मनुष्य** माँ का बन्द करके दाई का दूध पिलाना उचित समझ सकता है?
७०.	१७५	१७	स्वामी दयानन्दजी रमाबाई पर मस्त होकर उसे अपने व्यय

			से कलकत्ता से बुलाएँ और अपने पास रक्खें, अपितु उसके **धर्म को बलात् भ्रष्ट करें।**
७१.	१७६	१	**किसी ऋषि ने भी आपके स्वामी की भाँति किसी विधवा का धर्म भ्रष्ट नहीं किया था।**
७२.	१७६	८	क्या आक्षेप करनेवाले साहब ने काम से मस्त हुए बिना अपना विवाह किया था?
७३.	१७८	४	व्यर्थ आलोचना करना **सरासर अविद्या और स्वार्थपन है।**
७४.	१७९	२१	विवाह करने की **हुज्जत (तर्क) करना सरासर मूर्खता ही नहीं अपितु अयोग्यता, मूर्खता और अविद्या है।**
७५.	१९५	२	आर्यसमाज मन्दिरों में **रण्डियों का नाच, शराब व गोमांस**–भक्षण तथा स्वामी दयानन्दजी के **मांस खाने की** आज्ञा देने पर आप उसे छुपाने के लिए जब तक दूसरों को कलंक न लगाएँ **तो समाजियों की काली करतूतें कैसे छिपें?**
७६.	१९६	१८	व्यभिचार की खुली छुट्टी आर्यसमाज में ही पायी जाती है।
७७.	१९९	३	यदि आप गन्दी और व्यभिचार की शिक्षा देखना चाहते हैं तो कृपा करके स्वामीजी का वेदभाष्य देखिए।
७८.	१९९	६	सत्यार्थप्रकाश तो निरा व्यभिचार की शिक्षा देनेवाला सिद्ध हो चुका है।
७९.	१९९	१२	**सत्यार्थप्रकाश सम्भोग की शिक्षा देने और दुराचार सिखाने में पूरा कोकशास्त्र है।**
८०.	२०१	४	आपके जवान–जवान जोड़ों ने भी सर्ग–आरम्भ में अपनी बहिन आदि से विवाह करके सन्तान पैदा की थी।
८१.	२०१	२०	स्वामीजी ने **लड़कियों को अपने वालिदैन (माता–पिता) से गर्भाधान कराने की** प्रार्थना करने की आज्ञा बतलाई है। **पिता का अपनी पुत्री में गर्भधारण करना आर्यसमाज में वैध है।**
८२.	२०३	६	चार पाये बर ओ किताबे चन्द न मुहकिक शुद न दानिशमन्द[१]।
८३.	२०८	१३	क्या आर्यसमाजियों के पितर भूमि में धँसे रहते हैं?
८४.	२११	१	किसी प्रकार आर्यसमाज की डफ़ली भी बजानी ही पड़ती है, अन्यथा **पेट–पूजा का साधन** ही बन्द हो जाने का डर होता है। वे तो केवल संसार में हुल्लड़ मचाने के लिए पैदा हुए हैं।

१. कुछ पुस्तकें पढ़कर चौपाये ही रहे, न तो दार्शनिक ही बने और न बुद्धिमान्। —सम्पादक

८५.	२१३	६	ये लोग अपने इस जाल को फैलाकर **अपना उल्लू सीधा करते हैं।**
८६.	२१३	१३	क्योंकि इनके गुरु बाबा भी इस शिवलिंग से ही **डरकर अपने पैतृक धर्म से चौपट हुए थे।**

पाठकवृन्द! ये हैं वे फूल जो सनातनधर्म की ओर से आर्यसमाज को प्रस्तुत किये गये हैं और जिनके आधार पर सभ्यता की डींग मारी जा रही है। मैं मुकुन्दराज अराधे, लालचन्द धुन्ना और जगन्नाथ हाँडा से पूछना चाहता हूँ कि आप लोगों ने पुस्तक को पढ़कर अपनी सम्मति दी थी अथवा वैसे ही अपनी मोहर लगा दी थी? यदि पढ़कर सम्मति दी थी तो क्या यही सनातनधर्मियों की सभ्यता और अमृतरूपी प्रेमभरी वाणी से फूल बरसाना है? यदि इसी का नाम फूल बरसाना है तो गाली-प्रदान, अश्लील लेखन, कुभाषण, फक्कड़बाजी और गुण्डापन किस जानवर का नाम है? यदि मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि सनातनधर्म के फ़ूलों (Fools) ने इकट्ठे होकर आर्यसमाज के वैदिक सिद्धान्तों के मुक़ाबले में अपने गाली-गलौच से सनातनधर्म का दाह-संस्कार कर दिया है और ये मुर्दा सनातनधर्म के फूल हैं। मैं अराधेजी, धुन्नाजी और हाँडाजी को मैत्रीपूर्ण सम्मति देता हूँ कि वे इस मृतक सनातनधर्म के फूलों को थैलियों में बन्द करके सनातनधर्म के फ़ूलों (Fools) के गले में लटका दें, जिससे वे अपने सिद्धान्तों के अनुसार इनको गङ्गा में बहाकर सनातनधर्म का क्रियाकर्म कर सकें—

इन सनातनधर्म के फूलों को चुन लो जंग[1] में।
निज उसूलों[2] के मुताबिक जा बहाओ गंग में।।
और सनातनधर्म मुर्दा को बहा दो संग में।
मर चुका वैदिक उसूलों के मुताबिक़ जंग में।।
गर सुगन्धित पुष्प हों तब तो हमें मक़बूल[3] हैं।
वरना गंगा में बहाओ सनातनधर्म के ये फूल हैं।।

शास्त्रार्थ

सत्य के प्रेमी प्रिय भाइयो! यह बात जनता को भली-भाँति ज्ञात थी कि शास्त्रार्थ का विषय यह निश्चय हुआ है कि 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध है या अष्टादश पुराण'। यद्यपि सनातनधर्मियों ने पत्र-व्यवहार में इस विषय से दूर भागने का पूर्ण प्रयत्न किया और कहा कि शास्त्रार्थ केवल इसी विषय पर होना चाहिए कि 'स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं', परन्तु आर्यसमाज ने कहा कि एकपक्षीय विषय पर शास्त्रार्थ करना न्याय-विरुद्ध और वितण्डावाद है, क्योंकि चारों वेदों को तो आर्यसमाज और सनातनधर्म समानरूप से धर्मपुस्तक स्वीकार करता है, यदि मतभेद है तो इस बात पर है कि आर्यसमाज तो मानता है कि स्वामी दयानन्दकृत सत्यार्थप्रकाश आदि की शिक्षा वेदों के अनुसार है और सनातनधर्म कहता है कि अष्टादश पुराणों की शिक्षा वेदानुकूल है। अब चूँकि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों की और अष्टादश पुराणों की शिक्षा में बड़ा भारी विरोध और भिन्नता है तथा सचाई के अन्वेषक आर्यसमाजी और सनातनधर्मी लोग धर्म का निर्णय चाहते हैं। यह निर्णय तभी हो सकता है जब दोनों पक्षों की पुस्तकों की वेदों की शिक्षा

१. युद्ध। २. सिद्धान्तों। ३. स्वीकार।

के साथ तुलना की जाए। इसलिए विषय यही उचित और न्यायशास्त्र के अनुकूल है कि 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण'। विषय दोनों पक्षों की सम्मति से निश्चित हो चुका था, परन्तु सनातनधर्म के पण्डित पुराणों के बारे में अपनी दुर्बलता को अनुभव करते थे, अतः वे पुराणों पर शास्त्रार्थ करने से कतराते थे। इसलिए जब पण्डित लोकनाथजी ने पुराणों पर बोलना आरम्भ किया तो सनातनधर्म के पण्डितों ने शोर मचाकर पुराणों के शास्त्रार्थ से भागना चाहा, परन्तु अध्यक्ष महोदय पूज्यपाद स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज ने ठीक शास्त्रार्थ के मध्य में दोनों पक्षों का पत्र-व्यवहार सुनाकर निर्णय दिया कि विषय यही स्वीकृत हुआ है कि 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण'। जिसपर पत्र-व्यवहार के अनुसार सनातनधर्मियों को यह निर्णय स्वीकार करना पड़ा और शास्त्रार्थ पुनः आरम्भ होकर समाप्त हुआ।

यदि पत्र-व्यवहार में विषय निर्धारित न हुआ होता तो सनातनधर्मी किसी अवस्था में भी इस विषय को स्वीकार करने के लिए तैयार न होते। मैं इस शास्त्रार्थ में स्वयं उपस्थित था और मैंने शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों के प्रत्येक शब्द को अपनी लेखनी से अङ्कित किया और हूबहू, बिना किसी घटा-बढ़ी के और बिना किसी टीका-टिप्पणी के पुस्तक में लिख दिया। पोपजी कहते हैं कि मैंने पं० श्रीकृष्ण शास्त्री के प्रश्नों को संक्षिप्त करके लिखा है और पं० लोकनाथजी के उत्तरों में अत्युक्ति से काम लिया है, परन्तु पोपजी ने अपने लेख में यह सिद्ध नहीं किया कि मैंने पं० लोकनाथजी के उत्तरों में कौन-सा अतिरञ्जन किया है—किस बात को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। भला! बताएँ भी क्या जब कोई अतिरञ्जन हुआ ही नहीं! परन्तु मैं सिद्ध करूँगा कि पोपजी ने शास्त्रार्थ में अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए पर्याप्त काट-छाँट की है और कई-एक ऐसी प्रसिद्ध घटनाओं को पोपजी ने पचा लिया है जो जनता को अबतक स्मरण होंगी। मैं पोपजी की मिथ्या बातों को यहाँ विस्तार से लिखता हूँ जिससे पाठकों को पोपजी की काट-छाँट का ज्ञान हो जाए।

१. पण्डित श्रीकृष्णजी ने शास्त्रार्थ के आरम्भ में ही यह कहा था कि मेरे आर्यसमाज पर नौ प्रश्न हैं, सात तो सत्यार्थप्रकाश पर और दो संस्कारविधि पर। सारांश यह कि पण्डितजी ने आरम्भ में नौ ही प्रश्न किये थे। दसवाँ प्रश्न यह था कि 'बच्चे को छह दिन माता दूध पिलाए, इसके पश्चात् धायी पिलाए—यह किस वेद के अनुसार है?' यह शास्त्रार्थ में बहुत देर पश्चात् किया गया था। **इस प्रश्न को दूसरे नम्बर पर देना पोपजी का प्रथम झूठ है।**

२. पं० श्रीकृष्णजी ने अपने सम्पूर्ण प्रश्नों में से किसी प्रश्न में भी वेद का मन्त्र देकर उसके साथ स्वामीजी के ग्रन्थों का विरोध नहीं दिखलाया था। यदि श्रीकृष्णजी वेदमन्त्र देकर उनके साथ स्वामीजी के ग्रन्थों का विरोध दिखलाते तो पं० लोकनाथजी को यह कहने की आवश्यकता ही न पड़ती कि वेदमन्त्र देकर विरोध सिद्ध करो। जब तुम्हारा दावा है कि स्वामीजीकृत ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं तो दावे का सिद्ध करना मुद्दई (वादी) का कर्त्तव्य है। चूँकि यह तर्क यथार्थ था और पोपजी को भी पं० श्रीकृष्णजी के प्रश्नों में यह कमी प्रतीत हुई, इसलिए पोपजी ने पहले चार प्रश्नों के साथ वेद के मन्त्र देकर अपने ज्ञान में स्वामीजी के ग्रन्थों का वेद से विरोध दिखलाया, परन्तु पिछले छह प्रश्नों का फिर भी वेद से विरोध दिखलाने में सफल नहीं हुए। श्रीकृष्ण शास्त्री के चार प्रश्नों के साथ **अपनी ओर से वेदमन्त्र लगाना पोपजी का दूसरा झूठ है।**

३. प्रश्न संख्या ८ में जिसको पोपजी ने ९ पर दिया है, श्रीकृष्णजी ने केवल इतना पूछा था कि जातकर्म-संस्कार में स्वामीजी ने बालक को शहद और घी बराबर मिलाकर चटाना लिखा है; चूँकि शहद और घी बराबर मिलाने से विष बन जाता है, इससे बच्चे मर जाएँगे और जिह्वा पर 'ओम्' लिखना भी वेद के विरुद्ध है, परन्तु पोपजी ने इसमें यह वृद्धि कर दी कि मनु आदि तमाम शास्त्र कहते हैं कि नाल काटने से पहले जातकर्म-संस्कार करना चाहिए, स्वामीजी ने नाल काटने के पश्चात् जातकर्म-संस्कार क्यों लिखा? इस प्रश्न में इतनी **वृद्धि करना पोपजी का तीसरा झूठ है।**

४. पं० लोकनाथजी ने प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा था कि "पण्डितजी का पक्ष यह था कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं, परन्तु वेद का एक मन्त्र भी प्रस्तुत नहीं किया कि कौन-से वेदमन्त्र से कौन-सी बात विरुद्ध है।" भाषण के इन वाक्यों से चूँकि स्पष्ट पता लगता था कि पं० श्रीकृष्णजी ने कोई वेदमन्त्र प्रस्तुत नहीं किया और पोपजी ने चूँकि वेदमन्त्रों की वृद्धि कर दी है, इसलिए पोपजी ने पं० लोकनाथजी के भाषण में यह परिवर्तन कर दिया कि "पण्डितजी का पक्ष यह था कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं, वेद का एक मन्त्र भी पूरा प्रस्तुत नहीं किया।" पोपजी ने इस वाक्य में 'पूरा' शब्द बढ़ाकर पं० लोकनाथजी के भाषण से जनता को यह धोखा देना चाहा कि चूँकि पं० लोकनाथजी कहते हैं कि एक मन्त्र भी पूरा प्रस्तुत नहीं किया, इसलिए श्रीकृष्ण ने मन्त्र तो अवश्य प्रस्तुत किये थे, परन्तु पं० लोकनाथजी के दृष्टिकोण से वे पूरे नहीं थे। यह सब-कुछ झूठ और धोखा देना है। इसलिए पोपजी का **पं० लोकनाथजी के भाषण को अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए परिवर्तित करना पोपजी का चौथा झूठ है।**

५. चूँकि पं० श्रीकृष्णजी ने आरम्भ में नौ ही प्रश्न किये थे, अतः पं० लोकनाथजी ने उत्तर देते हुए अपने प्रथम भाषण में कहा था—"पण्डितजी ने लगातार नौ प्रश्न तो कर दिये", परन्तु क्योंकि पोपजी ने आरम्भ के प्रश्नों में एक बढ़ाकर प्रश्न दस बना दिये हैं, अतः पोपजी ने यहाँ भी पं० लोकनाथजी के प्रवचन में परिवर्तन कर दिया और लिख दिया कि पण्डित श्रीकृष्णजी ने आरम्भ में दस ही प्रश्न किये थे जो बिल्कुल ग़लत है। **पोपजी का इसमें यह परिवर्तन करना पाँचवाँ झूठ है।**

६. यह बात सर्वसाधारण को स्मरण है कि जब पं० लोकनाथजी ने बार-बार ललकारा कि वेदमन्त्र प्रस्तुत करके स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों को वेदविरुद्ध सिद्ध करो तो अन्ततः श्रीकृष्णजी ने तंग आकर चोटी कटाने को वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिए—

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव। —यजुः० अ० १७, मं० ४८

इस मन्त्र को चोटी रखने के लिए प्रमाणरूप में अपनी तीसरी वक्तृता में प्रस्तुत किया। इसके उत्तर में पं० लोकनाथजी ने अपने तीसरे भाषण में यही सिद्ध किया कि "यह मन्त्र तो चोटी कटाने को सिद्ध करता है और आपने अब तक एक ही मन्त्र प्रस्तुत किया और वह भी तड़ाक से आपके सिर पर पड़ा।"

पोपजी की चालाकी देखिए कि पोपजी ने यह मन्त्र न तो पं० श्रीकृष्णजी की तीसरी वक्तृता में उनकी ओर से प्रस्तुत करना लिखा और न ही पं० लोकनाथजी के उत्तर में उपर्युक्त शब्दों को लिखा, अपितु इस मन्त्र को पं० लोकनाथजी की ओर से प्रस्तुत करना लिख दिया। इस प्रकार **सारे ही प्रश्न और उपर्युक्त उत्तर को हड़प कर जाना पोपजी का छठा झूठ है।**

७. सारी जनता को पता है कि पं० श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपनी तीसरी वक्तृता में यह कहा कि–"देखो, सरदार दिलीपसिंह हाईकोर्ट के जज हैं, वे बालों को रखने के कारण कितने बुद्धिमान् हैं!" उनका तात्पर्य स्वामीजी के उस लेख की ओर संकेत करना था जहाँ स्वामीजी ने लिखा है कि "बालों के रखने से बुद्धि भी मारी जाती है।" इसके उत्तर में पं० लोकनाथजी ने तीसरे भाषण में कहा कि "सरदार दिलीपसिंहजी की भी एक ही कही! अजी वे सिख नहीं हैं। वे तो ईसाई हैं और उनके सिर पर केश भी नहीं हैं। आपने यह बात सिखों को भड़काने के लिए कही, परन्तु सफल सिद्ध न हुई।" परन्तु पोपजी ने इस प्रश्न और उत्तर को श्राद्ध के लड्डू की भाँति हड़प करके डकार भी नहीं ली। **इस प्रश्न और उत्तर को न लिखना पोपजी का सातवाँ झूठ है।**

८. जब पं० लोकनाथजी ने पुराणों पर प्रश्न करने आरम्भ किये तो सनातनधर्मवालों ने शोर मचाया कि पुराणों पर प्रश्न करने का पण्डितजी को कोई अधिकार नहीं है। इसपर प्रधानजी ने दोनों ओर के पत्र-व्यवहार को सुनकर निर्णय दिया कि पत्र-व्यवहार से सिद्ध है कि पण्डितजी पुराणों पर प्रश्न कर सकते है। इसपर पौराणिक निरुत्तर हो गये और पण्डितजी ने पुराणों पर प्रश्न करने आरम्भ किये। इस निर्णय में पत्र-व्यवहार को सुनते हुए लगभग आधा घण्टा लग गया। इसीलिए दोनों पक्षों की पाँच-पाँच वक्तृताएँ ही हो सकीं, परन्तु पोपजी ने प्रधानजी पर दोष लगाया है कि उन्होंने सनातनधर्मियों के आग्रह करने पर भी पुराणों पर आलोचना करने की आज्ञा दे दी। **यह पोपजी का आठवाँ झूठ है।**

९. पं० लोकनाथजी के तीसरे जवाबी भाषण में जो भविष्यपुराण की कथा संज्ञा और सूर्य की दी गयी है, इसमें से अन्तिम श्लोक का अनुवाद बिल्कुल ही छोड़ दिया जो इस प्रकार है–"इस वेदानुकूल वाणी को सुनकर सूर्य ने भी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठ गति को प्राप्त किया।" इस वाक्य के बिना यह कथा अधूरी ही रह जाती है, परन्तु पोपजी ने यह अनुवाद नहीं दिया। **यह पोपजी का नवाँ झूठ है।**

१०. पं० लोकनाथजी ने अपने चौथे जवाबी भाषण में श्रीकृष्णजी का चीरहरण-लीला का चित्र दिखाया था, जिसे देखकर सनातनधर्मी चीख उठे थे और सनातनी जनता में हाहाकार मच गया था; परन्तु पोपजी ने इस बात का शास्त्रार्थ में उल्लेख नहीं किया, केवल इतना लिखकर छोड़ दिया कि "इस अवसर पर पं० लोकनाथजी ने कृष्ण-चीरलीला की कथा सुनाई।" चूँकि पं० श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपनी चौथी वक्तृता में स्वामीजी पर नाचने का आरोप लगाया था, इसलिए पण्डितजी को यह चित्र जनता में दिखाना पड़ा था, परन्तु पोपजी ने श्रीकृष्ण की वक्तृता से स्वामी दयानन्द पर नाचने के दोष को और पं० लोकनाथजी के भाषण से चित्र दिखाने को पूर्णरूप से पचा लिया है। **यह पोपजी का दसवाँ झूठ है।**

११. पं० श्रीकृष्णजी ने अपनी पाँचवीं वक्तृता में यह आक्षेप किया था कि "स्वामीजी ने वेदभाष्य करते हुए लिखा था कि लिंग को योनि में प्रविष्ट करो।" इसका उत्तर पं० लोकनाथजी ने अपने भाषण में यह दिया था कि "यदि स्वामीजी ने वेदभाष्य में लिखा है कि लिंग को योनि में प्रवेश करे तो इसमें बुराई क्या है? यह तो वेद ने गर्भाधान की शिक्षा दी है। यदि यह ग़लत है तो क्या पण्डितजी और दूसरे सनातनधर्मी लिंग को मुख में प्रविष्ट करते हैं?" पोपजी ने प्रश्न और उत्तर दोनों को हड़प लिया है। **यह पोपजी का ग्यारहवाँ झूठ है।**

१२. श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपनी पाँचवीं वक्तृता में स्वामीजी पर दोषारोपण करते हुए कहा कि "स्वामी दयानन्द का जीवन भी तो ऐसा ही था! जब वे छोटे थे तो उनपर जमींदार का लड़का आशिक़ था, वह स्वामी दयानन्द को लेकर भाग गया।" इस सम्बन्ध में जब प्रधान ने प्रमाण पूछा तो पण्डितजी ने उत्तर दिया कि "यह पुस्तक जियालाल जैनी की बनाई हुई है।" क्योंकि पं० श्रीकृष्ण शास्त्री का यह पक्ष निर्बल था, इसलिए पोपजी ने इस घटना को नहीं लिखा। **यह पोपजी का बारहवाँ झूठ है।**

परिणाम—ये कुछेक मोटी-मोटी बातें हैं, जिनका जनता को ठीक-ठीक ज्ञान है और पोपजी ने इसमें काट-छाँट से काम लिया है, अतः हमने लिख दी हैं। सारे ही शास्त्रार्थ में पोपजी ने जो बार-बार पं० श्रीकृष्ण शास्त्री के मुख से वेदों के मन्त्र प्रस्तुत करके यह कहलवाया है कि "मैंने वेदों के मन्त्र प्रस्तुत करके स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों को वेदविरुद्ध सिद्ध कर दिया है, इनका उत्तर अभी तक भी पं० लोकनाथजी ने नहीं दिया"—यह सफ़ेद झूठ है। वास्तविक बात यह है कि पं० श्रीकृष्ण शास्त्री ने प्रश्न करते हुए एक भी वेदमन्त्र प्रस्तुत करके उसके साथ स्वामीजी के ग्रन्थों का विरोध नहीं दिखाया, अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि पण्डितजी इतने मन्त्रों में से एक मन्त्र पर भी न बोलते! हाँ, पं० लोकनाथजी के इस उचित पक्ष पर कि "जब विषय यह निश्चित है कि 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं, या अष्टादश पुराण', तो स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों को वेदविरुद्ध सिद्ध करने के लिए सनातनधर्म के पण्डित का यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह वेद का मन्त्र प्रस्तुत करके इसके साथ स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों का विरोध दिखलाए, क्योंकि दावे का सिद्ध करना वादी का कर्त्तव्य होता है। जब तक सनातनधर्म का पण्डित वेदमन्त्र प्रस्तुत करके उनके साथ स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों का विरोध नहीं दिखाता, तब तक यह शास्त्रार्थ आगे नहीं चल सकता।" श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपने पक्ष में यजुर्वेद अध्याय १७, मन्त्र ४८—**यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव**—का स्वामीजी का अर्थ प्रस्तुत करते हुए बताया कि इस मन्त्र में अनेक चोटियोंवाले बालकों का वर्णन है, इसलिए चोटी रखना वेदानुकूल है और स्वामी दयानन्द ने चोटी को काटना लिखा है, इसलिए स्वामी दयानन्द के ग्रन्थ वेद के विरुद्ध हैं। इसपर पं० लोकनाथजी ने कहा—"हाँ, अब आप रास्ते पर आये, क्योंकि आपने अपने इस प्रश्न को न्याय के अनुसार वेदमन्त्र देकर प्रस्तुत किया है, इसलिए मैं इसका उत्तर देता हूँ।

पं० लोकनाथजी ने कहा कि जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले। जिस मन्त्र को आप चोटी रखने के पक्ष में प्रस्तुत कर रहे हैं, वही मन्त्र आपके प्रश्न का खण्डन करता है, अर्थात् चोटी काटने की आज्ञा देता है। स्वामीजी ने इसके दो अर्थ किये हैं कि "जैसे बिना चोटियोंवाले और अनेक चोटियोंवाले बालक।" आपने एक अर्थ तो ले-लिया और दूसरा छोड़ दिया। फिर पण्डितजी ने इसी मन्त्र का महीधर और उव्वट का अर्थ प्रस्तुत किया जिसमें "सारे मुँडे हुए और शिखा से रहित—बिल्कुल मुँडे हुए" अर्थ लिखा है, क्योंकि स्वामी दयानन्दजी यह मानते हैं कि यदि देश बहुत अधिक गर्म हो तो चोटीसहित मुँडवा दे और यदि देश अधिक गर्म न हो तो चोटी न मुँडवाए, क्योंकि स्वामीजी चोटी का रखना विकल्परूप से मानते हैं, इसलिए यह मन्त्र स्वामीजी के अनुकूल और आपके प्रतिकूल पड़ता है। आपने एक ही मन्त्र प्रस्तुत किया और वह भी तड़ाक से आपके ही सिर पर पड़ा। बस, इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण शास्त्री ने एक भी वेदमन्त्र अपने दावे को सिद्ध करने

के लिए प्रस्तुत नहीं किया। इस बात को पोपजी ने भी आगे चलकर स्वयं स्वीकार कर लिया है। देखिए, पोपजी लिखते हैं कि—"समाजियों के धुरन्धर विद्वान् की बहादुरी तो तब मानते यदि वे खुले दिल से घोषणा करते कि लो भाई! सनातनधर्मी पण्डित वेद-प्रमाणों से अपने पक्ष का स्थापन तो नहीं कर सके, परन्तु हम उत्तर दिये देते हैं।"

इससे सिद्ध होता है कि श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपने प्रश्नों के साथ वेदमन्त्र प्रस्तुत नहीं किये। ये सब वेदमन्त्र पोपजी ने ही अपनी ओर से शास्त्रार्थ में मिला दिये हैं जोकि पराकाष्ठा की चारित्रिक गिरावट है। हम उनके सम्बन्ध में आगे चलकर ही लिखेंगे, क्योंकि ये मन्त्र वास्तविक शास्त्रार्थ का अंश नहीं हैं। इस सारे लेख का तात्पर्य यह है कि शास्त्रार्थ शब्दशः वही ठीक है, जो हमने अपनी पुस्तक में लिखा है। इसलिए यदि पाठकवृन्द को शास्त्रार्थ पढ़ने की इच्छा हो तो हमारी पुस्तक 'शास्त्रार्थ जाखल' का अवलोकन करें, जोकि महाशय रामदासजी, प्रबन्धक, आर्यपुस्तकालय, पश्मवाला बाजार, अमृतसर से मिल सकती है। इस पुस्तक में शास्त्रार्थ को पुनः लिखने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

शास्त्रार्थ के पढ़ने से यह परिणाम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि पं० लोकनाथजी ने ऐसी भीषण पकड़ पकड़ी कि श्रीकृष्ण शास्त्री की चौकड़ी भूल गई, क्योंकि साधारणरूप से प्रश्न कर देना सरल है, परन्तु अपने दावे को वेदमन्त्रों और तर्क के साथ स्थापन करना खालाजी का घर नहीं है [सरल नहीं है], क्योंकि जितनी देर में बिना तर्क व प्रमाण के बीसियों प्रश्न किये जा सकते हैं, उतनी ही देर में वेदमन्त्र प्रस्तुत करके तर्क व न्यायानुसार एक प्रश्न की स्थापना भी कठिन होती है, अतः पं० लोकनाथजी के यह कहने पर कि "वेदमन्त्र प्रस्तुत करके इसके साथ स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों का विरोध सिद्ध करके अपने पक्ष का स्थापन करो", पं० श्रीकृष्ण शास्त्री को दिन में तारे दिखाई देने लगे और लगे इधर-उधर बगलें झाँकने। बौखलाहट की अवस्था में एक ही मन्त्र प्रस्तुत कर पाये थे, परन्तु दुर्भाग्य से वह भी दावे को सिद्ध करने के स्थान पर दावे का खण्डन करनेवाला ही निकला। इसपर अग्नि में घी का काम यह हो गया कि पं० लोकनाथजी ने निर्धारित विषय के अनुसार पुराणों पर प्रश्न करने आरम्भ कर दिगे। इन प्रश्नों ने श्रीकृष्ण शास्त्री का रहा-सहा दम भी निकाल दिया। किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की अवस्था में इधर-उधर स्टेज पर बैठे हुए सनातनधर्मियों के मुँह की ओर ताकने लगे। सनातनी ताड़ गये कि पण्डितजी अन्तिम श्वासों पर हैं। उन्हें पण्डितजी की अवस्था पर दया आ गयी और उन्होंने कोलाहल मचाकर 'सनातनधर्म की जय' का गंगाजल पण्डितजी के मुख में डालकर आर्यसमाज के मेधावी पं० लोकनाथ से उनकी जान छुड़वाई और पं० श्रीकृष्णजी इस कोलाहल में जान छुड़ाकर वायुमण्डल में ऐसे विलीन हुए कि फिर कभी सनातनधर्म सभा जाखल में पुनरागमन का साहस ही नहीं किया और विधवा स्त्री की भाँति बेचारी सनातनधर्म सभा जाखल भी कभी-कभी इनका श्राद्ध करके सन्तोष करने पर विवश हो गयी।

प्रामाणिक और अप्रामाणिक ग्रन्थ

इससे पूर्व कि हम प्रश्नों के उत्तर लिखना आरम्भ करें, इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि आर्यसमाज किन-किन ग्रन्थों को प्रमाण मानता है और किन-किन ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मानता। परमात्मा ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों को धर्म और अधर्म का ज्ञान देने के लिए चार वेदों का प्रकाश किया; क्योंकि परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है और उनका ज्ञान

त्रुटिरहित है, यह ईश्वर का ज्ञान है, अतः चारों वेद-संहिता स्वतःप्रमाण हैं, इनके प्रमाण के लिए अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर का ज्ञान होने से वे त्रुटिरहित हैं, इसलिए धर्म और अधर्म का निर्णय करने में वे ही अन्तिम कसौटी हैं, शेष सब ऋषिकृत ग्रन्थ जो ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द तक बनाये हुए हैं, वे सब परतःप्रमाण हैं, अर्थात् यदि वे वेद के अनुसार हों तो प्रमाण हैं। यदि इनमें कोई भी बात वेद के विरुद्ध हो तो वे प्रमाण नहीं है। शेष सब ग्रन्थ जोकि ऋषियों के बनाये हुए नहीं हैं, चाहे तो वे ऋषि दयानन्द से पूर्व के मनीषियों के बनाये हुए हों और चाहे वे ऋषि दयानन्द के पश्चात् के मनीषियों—तुलसीराम स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० राजाराम, पं० आर्यमुनि, पं० सातवलेकर, स्वामी सत्यानन्दजी, पं० नरदेवजी, पं० भगवद्दत्तजी, पं० विश्वबन्धुजी आदि किसी के भी बनाये हुए क्यों न हों, वे सब अनार्ष और अप्रामाणिक हैं। आर्यसमाज उनका उत्तरदायी नहीं है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने-आपको आर्यसमाजी कहते हुए कोई लेख आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विरुद्ध लिखा है तो हम उसका भी अपने उत्तरों में वैसे ही खण्डन करेंगे, जैसे अन्य अप्रामाणिक ग्रन्थों का।

इस विषय में ऋषि दयानन्द का लेख सत्यार्थप्रकाश में अत्यन्त स्पष्ट है—"[ब्राह्मण, अङ्ग, उपाङ्ग, उपवेद]" इत्यादि सब ऋषि-मुनियों के किये ग्रन्थ हैं। इनमें भी जो-जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो, उस-उसको छोड़ देना, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त, 'स्वतःप्रमाण' अर्थात् वेद का प्रमाण वेद से ही होता है। ब्राह्मण इत्यादि सब ग्रन्थ 'परतःप्रमाण' हैं, अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।"

"ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिए पढ़ना चाहिए कि वे बड़े विद्वान्, सर्वशास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्पशास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है, उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं"। —सत्यार्थ० तीसरा समुल्लास

इसी प्रकार से 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में भी लिखा है। निष्कर्ष यह कि आर्यसमाज वेदों को स्वतःप्रमाण, ऋषिकृत ग्रन्थों को परतःप्रमाण और अनार्ष, मनुष्यकृत ग्रन्थों को अप्रमाण मानता है। आर्यसमाज का यह सिद्धान्त प्रसिद्ध है, अतः सनातनधर्मियों को चाहिए कि वे प्रमाण देते हुए तनिक सोच लिया करें कि जिस ग्रन्थ का वे प्रमाण दे रहे है, वह आर्यसमाज को मान्य है भी या नहीं। यूँ ही इधर-उधर की मासिक पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों और अनार्ष ग्रन्थों तथा अनुवादों को प्रस्तुत करके अपना और हमारा समय नष्ट न करें।

सनातनधर्म से सम्बोधन

हिन्दुओ आर्यों से लड़के बतलाओ मिला क्या है, तुम्हें मालूम है दोनों के मजहब की बिना[१] क्या है?
स्वतःप्रमाण वेदों ही को हम तुम मानते आये, यह झगड़ा क्या है कजियः[२] क्या है फिर यह तफ्रिकः[३] क्या है।
जरूरत हमको सालिस[४] की न हाजत[५] हमको मुन्सिफ[६] की, हमारा वेद ही जज है, हमारा वेद ही राही।
जिसे तुम फ़ख्र[७] से कहते पञ्चम वेद ब्रह्मा का, खिलाफे-अक्ल[८] और अननेच्युरल[९]गप के सिवा क्या है?
उपनिषद् और गीता चारों वेदों में नमस्ते है, न जाने कृष्ण और जयरामजी का मुद्दआ[१०] क्या है?
बुजुर्गों पर तुम्हारे पारसल अनपेड[११] जाते हैं, वेद में श्राद्ध बतला दो हमारा फैसला क्या है?

---

१. नींव। २. झगड़ा। ३. शत्रुता। ४. पञ्च।
५. आवश्यकता। ६. जज। ७. गर्व। ८. बुद्धिविरुद्ध।
९. प्रकृति-विरुद्ध। १०. तात्पर्य। ११. un-paid.

बताते हो अगर मूरत को तुम भगवान् की सूरत, वह ईश्वर जब अकायम्[१] किसका फ़ोटो माजरा[२] क्या है?
अगर गंगा के नहाने से कटे हैं पाप जन्मों के, ग़लत मसला[३] कर्मफल का सज़ा[४] क्या है जजा[५] क्या है?
गवारा तो नहीं विधवाओं की शादी पर यह बतला दो, ईसाई, मुस्लिमों का ससुरा बनने में मज़ा क्या है?
करें नापाक हमला जो ऋषि के पुण्य जीवन पर, बजुज[६] नापाकी के उनकी ज़ुबाँ पर ही धरा क्या है?
भिड़ाना चाहते हो पुराण को सत्यार्थ से साहब, अजी उस तोप के आगे यह खसखाना[७] भला क्या है?
भला अब दो और दो को पाँच कैसे कोई मानेगा, ज़रा इतना तो सोचो अब जमाने की हवा क्या है?

पशेमाँ[८] होंगे पौराणिक अगर आर्यों से अटकेंगे।
करो बातें 'उदयसिंह' से तुम्हारा हौसला क्या है?

कवित्त

पुत्री का भोगी गुरुपत्नी संयोगी कोई बहिन का प्रयोगी ऐसे देवता तुम्हारे हैं।
वृन्दा को देख कोई अहल्या को पेख कोई मोहिनी के भेख पर तन मन बिसारे हैं।
अनुचित वशकर्मी कोई कन्या कुकर्मी कोई महा-अधर्मी पर-वामा[९] हरनहारे है।
झूठे लबार कोई महाचोर जार भला उनके अगार क्या दयानन्द बेचारे हैं॥

ग़ज़ल

इन्हीं पुरणों पै सच बताओं क्या हिन्दू बीबी उछल रही है।
कि जिसको पढ़के शरम के मारे शरम भी तो हाथ मल रही है।
मिलेगा तहजीब[१०] का नमूना सुनाऊँ उतथ्य का गर फ़साना[११]।
गुरु बृहस्पति खुद देव-योनियों के न उनको बिल्कुल अक़्ल रही है।
जनाना बाना बनाके विष्णु दिये जो दर्शन केलासपति को।
न पूछो यारो कुछ हाल उनका लंगोटी शंकर की खुल रही है।
सरस्वती के हुस्न[१२] पर आशिक हुआ था ब्रह्मा ज़माना जाने।
दुख्तर[१३] अपनी पै हाय वालिद[१४] की आज नीयत फिसल रही है।
वो विष्णु करने हरामकारी गया था वृन्दा के घर पै इक दिन।
शराप देके बनाया पत्थर कि जिसकी पूजा यह चल रही है।
लगे यूँ मोहन से कहने अर्जुन मजा वसल[१५] का चखाओ हमको।
चखाया वसलत का वो मज़ा था न इगलाम[१६] की कुछ असल रही है।
कभी अहल्या से जालसाजी कहीं हैं कुन्ती के यार कैई।
थे पाँच खाविन्द द्रौपदी के कि जिसपै जंगो-जदल[१७] रही है।
अड़े हैं जिद पै पौराणिक ऐसे कि जैसे टट्टू हो कोई अड़ियल।
नहीं है इतनी भी होश इनको कि दुनिया करवट बदल रही है।
ईसाइयों से जुबान बन्द है मुसलमाँ आया तो खेंचा घूँघट।
मगर 'उदयसिंह' के आगे इनकी जबान कैंची-सी चल रही है॥

---

१. शरीर-रहित। २. कौतुक। ३. सिद्धान्त। ४. दण्ड। ५. प्रत्युकार, पुण्य।
६. अतिरिक्त। ७. झोंपड़ा। ८. लज्जित। ९. स्त्री। १०. सभ्यता।
११. कथा। १२. हुस्न, सौन्दर्य। १३. पुत्री। १४. पिता। १५. मिलन।
१६. गुदामैथुन। १७. युद्ध।

पौराणिक पोप पर वैदिक तोप
अर्थात्
सनातनधर्म की मौत

पोपजी—सनातनधर्म विजय!

तोपजी—अपने मुँह मियाँ मिट्ठू। सनातनधर्म और उसकी विजय! यह मुँह और मसूर की दाल? हाँ, यह तो ठीक है कि पुस्तक को पढ़ने से वैदिक सिद्धान्तों के मुक़ाबले में सनातनधर्म की मौत का अनुमान होता है—

मुर्दा सनातनधर्म के फूलों को डालो गङ्ग में।
वैदिक उसूलों के मुताबिक़ मर चुका है जङ्ग में॥

पोपजी—श्रीकृष्णचन्द्रजी की तस्वीर!

तोपजी—कृपा करके यह तो लिख दिया होता कि यह चित्र गीता का उपदेश करते हुए योगिराज महात्मा कृष्ण का है या भागवत के दशम स्कन्ध में गोपियों के साथ चीरहरण आदि लीलाओं में रंगरलियाँ मनानेवाले सनातनधर्म के रंगीले अवतार कृष्ण का है।

पोपजी—ओम्।

तोपजी—पोपजी! धर्म से सच बतलाना कि आपने पुस्तक के आरम्भ में 'ओम्' नाम से मंगलाचरण करने के वैदिक सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है या रावण की भाँति जोगी का वेश बनाकर लोगों को धोखा देना ही प्रयोजन है?

पोपजी—तस्वीर धर्मभूषण पं० श्री कुञ्जलालजी भारद्वाज।

तोपजी—क्या यह उन्हीं पोपजी का चित्र तो नहीं, जिन्होंने अपने अश्लील भाषण के कारण पं० श्री लोकनाथजी की शान में डेरागाज़ीखाँ में बेहूदा बकवास करके अदालत में मानहानि का दावा होने पर अपनी करतूत पर खेद प्रकट किया और गिड़गिड़ाकर लिखित क्षमा माँगी?

पोपजी— सनातनधर्म की जयजय मना ले जिसका जी चाहे।
[१]इल्म बहसे-मुद्दल्लल[१] है उठा ले जिसका जी चाहे॥

तोपजी— फल्सफ़ा[२] और मन्तक[३] से सनातन को त'आल्लुक़[४] क्या?
दिमाग़ और अक़्ल पर ताला लगा ले जिसका जी चाहे॥

पोपजी— नुक्ता[५] यहाँ न कोई बगैर-अज़-दलील[६] है।
तिश्ना-लबों[७] के वास्ते जारी सबील[८] है॥

तोपजी— क्यों घटते-घटते रह गया बाकी कलील[९] है।
अपनों को धक्के देने की आदत ज़लील[१०] है॥

पोपजी— लाख बरसाते रहो पत्थर हमें मक़बूल[११] हैं।
यह सनातनधर्म है जिसकी तरफ़ से फूल हैं॥

तोपजी— गर सुगन्धित पुष्प हों तब तो हमें क़बूल हैं।
वरना गङ्गा में बहाओ सनातनधर्म के ये फूल हैं॥

१-१. ज्ञान (एक) तर्कपूर्ण परिसंवाद है। २. दर्शन। ३. तर्क। ४. सम्बन्ध। ५. तर्क-बिन्दु। ६. बिना तर्क। ७. प्यासे होंठ। ८. प्याऊ। ९. थोड़ा। १०. नीच। ११. स्वीकार।

झूठी शहादत

शहादत नाम गवाही का है। जब धर्म का युग था, उस समय गवाही को एक आवश्यक कर्त्तव्य समझा जाता था, जिसे गवाही देनेवाला धर्म को सन्मुख रखकर बड़ी ईमानदारी के साथ पूर्ण करता था। मानव-धर्मशास्त्र गवाही के विषय में कहता है–"या तो सभा में प्रविष्ट नहीं होना चाहिए, प्रविष्ट होने पर ठीक-ठीक, सच्ची गवाही देनी चाहिए। जो व्यक्ति सभा में प्रविष्ट होकर चुप रहता है या झूठ बोलता है, वह पापी है।" मानव-धर्मशास्त्र ने तो झूठे गवाहों के लिए दण्ड का भी विधान किया है, परन्तु युग में परिवर्तन आया–लोगों ने धर्म को तिलाञ्जलि देकर झूठी गवाही देना आरम्भ कर दिया और वर्त्तमान शासन ने भी झूठे गवाहों के लिए कोई विशेष दण्ड निर्धारित नहीं किया। परिणाम यह निकला कि गवाही देनेवाला एक सम्प्रदाय पैदा हो गया जो बिना देखे, बिना सुने ही तेल की पूरी-कचौरियों के बदले में झूठी गवाही देकर अपना पेट पालने लगा। इस सम्प्रदाय ने इतनी उन्नति की कि धार्मिक ग्रन्थों पर अपनी सम्मति देनेवाले भी इस सभा के सभासद् बन गये, और ग्रन्थ का अध्ययन किये बिना ही ग्रन्थ के सम्बन्ध में गवाही देने लग गये। उन गवाहों के दल में मुकुन्दराज अराधे, लालचन्द धुन्ना और जगन्नाथ हाँडा भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने 'सनातनधर्म विजय' पुस्तक को पढ़े बिना ही यह व्यवस्था दे दी की पुस्तक लेखन शिष्टता और सभ्यतापूर्ण है, जबकि इस पुस्तक की लेखन-पद्धति से शिष्टता और सभ्यता इतनी ही दूर है जितने गधे के सिर से सींग, जैसाकि हम इस ग्रन्थ के आरम्भ में 'सनातनधर्म के फूल' नामक शीर्षक में सिद्ध कर चुके हैं। अब हम तीनों गवाहों की गवाही पर संक्षिप्त जिरह (तर्क-वितर्क) करके पाठकों को वास्तविकता से परिचित कराते हैं।

अराधेजी की आराधना

पोपजी–आर्यसमाजियों के सरासर झूठे, उत्तेजनापूर्ण और अशिष्ट व्यवहार के उत्तर में।

तोपजी–वाह-वाह! मुख से क्या फूलों की वर्षा हो रही है। औरों को नसीहत (सीख) और खुद मियाँ फ़जीहत (अपयश) इसी का नाम है!

पोपजी–सनातनधर्मियों का सभ्यता और अमृतरूप प्रेमभरी वाणी से फूल बरसाना।

तोपजी–'वादी सुस्त और गवाह चुस्त' लोकोक्ति ऐसे अवसरों के लिए ही उचित प्रतीत होती है। अजी अराधेजी! ये गुलाब, गैंदा आदि के सुगन्धित फूल नहीं। हमारे विचार में तो ये मुर्दा सनातनधर्म के फूल हैं, अतः हमें इनकी आवश्यकता नहीं है। आप अपने विश्वास के अनुसार इन्हें गंगाजी में बहा दीजिए, ताकि सनातनधर्म सद्गति को प्राप्त हो जाए।

धुन्नाजी का निवेदन

पोपजी–ला० मनसाराम आर्योपदेशक ने पाप किया कि अकारण सनातनधर्मियों के हृदय को छलनी किया।

तोपजी–यह पाप मनसाराम ने नहीं किया, अपितु यह पाप तो पुराणों के बनानेवाले स्वार्थी वाममार्गियों ने किया है, जिन्होंने ब्रह्मा से लेकर व्यास मुनिपर्यन्त ऋषि-मुनियों और मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा योगिराज कृष्ण को भी मद्य, मांस और व्यभिचार आदि के दोष

लगाकर आर्यजाति के इतिहास को कलंकित कर दिया है।

पोपजी—और अपने दिल दुःखानेवाले लेख से हिन्दू-पूर्वजों पर सरासर झूठे और आधारहीन आरोप लगाये।

तोपजी—कुफ्र की नक़ल करना कुफ्र नहीं होता। हमने जो कुछ पुराणों में देखा नक़ल कर (लिख) दिया। हाँ, यदि आपकी उपर्युक्त सम्मति पुराणों को बनानेवालों के सम्बन्ध में हो तो इसका मैं भी ज़ोरदार शब्दों में समर्थन करता हूँ।

पोपजी—कि जिनकी कहीं चर्चा (वर्णन) तक भी न मिली।

तोपजी—यदि उल्लू को दिन में दिखाई न दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष है? वरना पुराणों में शब्दशः विद्यमान हैं।

पोपजी—आर्यसमाज और सनातनधर्मियों का लगभग पाँच सौ रुपया व्यर्थ नष्ट हुआ।

तोपजी—सनातनधर्म का रुपया व्यर्थ नष्ट हुआ होगा, आर्यसमाज की तो एक पाई भी व्यय नहीं हुई। महाशय रामदासजी पुस्तक विक्रेता, पश्म बाजार, अमृतसर ने 'शास्त्रार्थ जाखल' पुस्तक प्रकाशित कराई और पुस्तक हाथोंहाथ बिक गई। जनता ने पुस्तक को इतना पसन्द किया कि सिन्धी-भाषा में भी इसका अनुवाद करा दिया और अफ़रीका तक में आर्यसमाजों ने पुस्तकें प्रचार के लिए मँगवाई। लोग पुराणों की शिक्षा से सावधान होकर पुराणों से घृणा करने लगे।

पोपजी—और अन्य मतावलम्बियों की दृष्टि में हिन्दू-पूर्वज अपमानित हुए। मेरे आर्यसमाजी भाइयों को विचार करना चाहिए कि क्या सनातनधर्मियों के पूर्वज कोई और हैं और तुम्हारे और।

तोपजी—यह सब आपके पुराणों की कृपा है। यदि आप भी हिन्दू-पूर्वजों को अपमानित करनेवाले अठारह पुराणों को हमारी भाँति दूर से ही नमस्कार कर दें तो न हिन्दुओं के पूर्वज अपमानित हों और न अन्य मतावलम्बियों को हमारे पूर्वजों की हँसी उड़ाने का अवसर मिले।

पोपजी—प्यारे! गालियाँ देने और दूसरों को भड़काने से अपने मत का प्रचार नहीं होता।

तोपजी—बिल्कुल ठीक है, मैं आपसे सहमत हूँ। तभी तो मैंने अपनी पुस्तक में अपनी ओर से इस प्रकार का कोई शब्द नहीं लिखा। हाँ, आप बतलाइए कि संसार के कोश में वह कौन-सी गाली है जो आपने 'सनातनधर्म विजय' पुस्तक में आर्यसमाज की शान के विरुद्ध न निकाली हो? इतना होने पर भी आपने इस पुस्तक की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर दिया। कृपया यह बताइए कि आपने सनातनधर्म के प्रचार के लिए ऐसा किया है अथवा इसमें कोई और स्वर्णिम स्वार्थ छुपा हुआ है?

पोपजी—काश! यही पाँच सौ रुपया जो दोनों भाइयों की ओर से व्यर्थ नष्ट हुआ कहीं यतीमों और विधवाओं के पालन-पोषण में काम आता तो क्या ही उपकार होता!

तोपजी—परमात्मा का लाख-लाख धन्यवाद है कि सनातनधर्मियों के हृदयों में भी अनाथों और विधवाओं के पालन-पोषण का विचार आने लगा है; परन्तु खेद है तो यह कि कोई भी मनुष्य सनातनधर्म की सीमा में रहते हुए अनाथों और विधवाओं की सहायता नहीं कर सकता, क्योंकि अनाथालयों में प्रत्येक वर्ण और मत, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय,

वैश्य, शूद्र, भंगी, चमार, धानक, मुसलमान, ईसाई आदि के बच्चों के प्रविष्ट होने के कारण आपका सनातनधर्म रसातल को चला जाता है। रहा विधवाओं का प्रश्न, उसका समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक पुरुषों की भाँति उन्हें दूसरा विवाह करने की आज्ञा न दी जाए; और उसकी आज्ञा देना सनातनधर्म के लिए कठिन है, क्योंकि दूसरे विवाह की आज्ञा देने से सनातनधर्म के साधुओं और पण्डितों के भोगविलास और आय में विघ्न पड़ जाने का भय है। इसलिए धुन्नाजी! यदि आपके हृदय में वस्तुतः अनाथों और विधवाओं के लिए सहानुभूति है तो छुआछूत के भूत और सनातनधर्म के अवधूत से छुटकारा प्राप्त करके वैदिक धर्म की शरण में आइए और अपने हृदय को अनाथों और विधवाओं के उपकार में लगाकर शान्ति प्राप्त कीजिए।

सभा का निवेदन

पोपजी—एक मित्र ने 'जाखल शास्त्रार्थ' की पुस्तक मेरे हाथ में देकर कहा कि—"लो, आर्यसमाज ने हिन्दूजाति पर एक और नया उपकार किया है।"

तोपजी—पुराणों के खण्डन को आर्यसमाज का नया उपाकार कहना आर्यसमाज के ग्रन्थों से अनभिज्ञता का प्रमाण है, अन्यथा आर्यसमाज तो जन्मदिन से पुकार-पुकारकर कह रहा है कि पुराण अनार्ष ग्रन्थ हैं। इनमें वेद-शास्त्रों और ऋषि-मुनियों की निन्दा कूट-कूटकर भरी हुई है। जब तक हिन्दूजाति इन्हें तिलाञ्जलि नहीं देगी तब तक इनका उद्धार होना असम्भव है।

पोपजी—इस पुस्तक का आदि से अन्त तक अध्ययन किया गया और अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि यह गन्दा चिथड़ा किसी तनिक-सी भी मानवता रखनेवाले मनुष्य के मस्तिष्क की लेखनी से नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि इसमें मानवता से गिरी हुई ऐसी गन्दी और सभ्यता व शिष्टता से कोसों दूर, सरासर झूठी और तोड़-मरोड़कर बनाई बकवास से परम आदरणीय हिन्दू-पूर्वजों को इतना अपमानित किया गया है कि पढ़ते-पढ़ते ही शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं, आँखों से आँसू बह निकलते हैं और हृदय पूर्वजों के अपमान के कारण अग्नि उगलने लगता है।

तोपजी—तोड़-मरोड़ करना आर्यसमाज का काम नहीं, यह काम सनातनधर्म का है। हाँ, जिस पुस्तक को देखकर आप आपे से बाहर हो रहे हैं, वह तो पुराणों के सहस्रांश की भी नक़ल नहीं है। इस थोड़े-से अंश की नक़ल से यह पता लग सकता है कि पुराणों में कैसी सभ्यता है? मैं अपने परिश्रम को सफल समझता हूँ कि आपने इस प्रकार की सभ्यता से घृणा तो प्रकट की! आपका यह कहना उचित है कि ऐसी सभ्यता और शिष्टतावाली पुस्तकें किसी मानवता रखनेवाले मनुष्य के मस्तिष्क की उपज नहीं हो सकतीं! फिर क्या आश्चर्य कि इनको वेदव्यास की रचना कहा जाए? क्या मैं आशा करूँ कि अब आप पूर्वजों का अपमान करके रोंगटे खड़े करनेवाली और आँखों से आँसू लानेवाली इन पुस्तकों से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खेंगे और आर्यसमाज की भाँति इनको तिलाञ्जलि देकर हिन्दूजाति को विनाश के गढ़े में गिरने से बचाएँगे।

पोपजी—लाला मनसारामजी, पता नहीं आप सनातनधर्म के किस युग के शिशुपाल थे?

तोपजी—हाँडाजी! आपको तो गालियाँ देने का अच्छा अभ्यास है, परन्तु आपको बहुत बड़ी भ्रान्ति हुई है। शिशुपाल तो श्रीकृष्ण का सम्बन्धी और रुक्मिणी का प्रेमी था। मुझसे

तो सनातनधर्म की शान में ऐसी कोई कुचेष्टा होना सर्वथा असम्भव है। हाँ, मैं तो सनातनधर्म का हनुमान् हूँ। चूँकि सनातनधर्मरूप जोगी के वेश में रावण भारतवर्षरूपी राम की सभ्यतारूपी सीता को हरकर अष्टादश पुराणरूपी लङ्का में जा छुपा है। इसलिए मेरा यह धर्म है कि मैं पौराणिक लङ्का को आग लगाकर और सनातनधर्मरूप रावण को नष्ट करके भारत की सभ्यतारूप सीता को मुक्त करवा दूँ और भारत की सेवा में अपना जीवन अर्पित कर दूँ।

पोपजी—हम इस बेहूदा पुस्तक को पाँव तले रौंदकर बूट की ठोकर से गन्दी नाली में फेंक देते।

तोपजी—वस्तुतः इस प्रकार की पुस्तकें "जिनके कुछ अंश का अनुवाद यह पुस्तक है," बूट की ठोकर से गन्दी नाली में ही फेंकने योग्य होती हैं। हम प्रतीक्षा में हैं कि सनातनधर्म कब पुराणों-जैसी बेहूदा पुस्तकों के साथ उपर्युक्त व्यवहार करता है।

पोपजी—उस अशिष्ट, भड़कानेवाली और आदि से अन्त तक अश्लील पुस्तक का उत्तर अत्यन्त सभ्य व शिष्ट, शान्ति व प्रेमभरे शब्दों में देकर सभ्य संसार में प्यारे सनातनधर्म की शानदार विजय कर दिखाई।

तोपजी—यदि इसी का नाम सभ्यता, शिष्टता, प्रेम और शान्ति हैं जोकि इस पुस्तक में प्रकट की गयी है, तो पता नहीं गुण्डापन किस जानवर का नाम है। परमात्मा इस प्रकार की सभ्यता और शिष्टता, प्रेम और शान्ति सनातनधर्म को ही प्रदान करे।

सत्य का प्रकाश

पोपजी—शराबी, वेश्यागामी और लौंडेबाज आर्यसमाज का सदस्य हो सकता है, परन्तु मूर्त्तिपूजक और श्राद्ध पर विश्वास रखनेवाला नहीं हो सकता।

—स्वामी दर्शनानन्दकृत 'चाण्डाल चौकड़ी'

तोपजी—प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लज्जा तो नहीं आई? 'चाण्डाल चौकड़ी' आर्यसमाज की कोई धार्मिक पुस्तक नहीं, अपितु एक काल्पनिक उपन्यास है जो स्वामीजी ने इस प्रकार के लोगों के विरुद्ध लिखा है जो शराबी, मांसाहारी, वेश्यागामी और लौंडेबाज होते हुए अपने दुर्गुणों को छिपाने के लिए आर्यसमाज के सदस्य बन जाते हैं। उनमें से एक कलाल के मुख से इस उपन्यास में उपर्युक्त शब्द कहलवाये गये हैं, जिनका उत्तर पहले अध्याय के अन्त में इस प्रकार दिया गया है—"बस भगतजी! रहने दीजिए। आप लोगों ने तो आर्य नाम को भी कलङ्कित कर दिया। आप लोग ऐसे आर्य हैं जैसे पञ्जाब के नाई राजा हैं। मैं आपकी बातों को सुनकर चकित हूँ। पता नहीं परमेश्वर को भारत का दुर्भाग्य मिटाना स्वीकार है या नहीं, क्योंकि जब कोई आचार्य उत्पन्न होकर देश का सुधार और धर्म का प्रचार करना चाहता है तभी कुछ-न-कुछ विश्वासघाती व्यक्ति उसे विश्वास दिलाकर, उसके साथी होकर देश में अपना मान-सम्मान प्राप्त कर लेते हैं और उसके मरते ही अपनी पूजा कराने लगते हैं। आप लोगों ने तो आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द की शिक्षा को ऐसा घृणित बना दिया कि जिसे कोई भी भला मनुष्य स्वीकार नहीं कर सकता। जैसे दही-जैसी अमृत वस्तु तांबे के बर्तन में पड़ने पर विष बन जाती है और उसे कोई भी खाना पसन्द नहीं करता, ऐसे ही स्वामी दयानन्द के धर्म से भरे हुए उपदेश आप लोगों के कारण विषभरे हो गये हैं, जिन्हें कोई भी पसन्द नहीं करेगा। यदि आप लोग

आर्यसमाज में न आते तो भारतमाता का दुखड़ा बहुत शीघ्र दूर हो जाता।"

—चाण्डाल चौकड़ी, पृ० १३

अब बताइए, इस सम्पूर्ण लेख को देने से आर्यसमाज का मण्डन होता है या खण्डन? शराबी, वेश्यागामी और लौंडेबाजों का निर्वाह सनातनधर्म में ही यज्ञ, रामलीला और कृष्णलीला के बहाने से हो सकता है। आर्यसमाज में ऐसे व्यक्तियों की दाल गलनी कठिन है, जो सिद्धान्तविरोधी हों। उदाहरण के रूप में राजनारायण अरमान, अखिलानन्द, भीमसेन आदि अनेक व्यक्तियों के नाम बतलाये जा सकते हैं, जिनको आर्यसमाज ने सिद्धान्त-विरोधी ज्ञात होने पर दूध से मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक दिया है।

पोपजी—आर्यसमाज मन्दिरों में वेश्या का नाच, मद्यपान और गो-मांस...........भक्षण।

—'आर्यमित्र' का शताब्दी अंक, पृ० १२२

तोपजी—आर्यमित्र के इस लेख में भी जो लोग आर्यसमाज पर अधिकार करके अपनी लज्जाजनक करतूतों से आर्यसमाज को बदनाम करते हैं ऐसे लोगों की करतूतों से सावधान रहने का ही उपदेश किया गया है, और इस बात का परामर्श दिया गया है कि आर्यसमाज को उचित है कि वह शीघ्रातिशीघ्र सावधान होकर इन बुराइयों को जड़ से उखाड़ फेंके, जिससे किसी धूर्त को आर्यसमाज में रहकर आर्यसमाज को कलङ्कित करने का अवसर न मिले। देखिए, इसी लेख के अन्त में लेखक महाशय क्या लिखते हैं—

"मुझे क्षमा किया जाए यदि मैं यह कहूँ कि हमारे अन्दर जो त्रुटियाँ हैं, वे हमारे अस्तित्व को मिटाने के लिए बहुत अधिक हैं। यदि यही अवस्था कुछ दिनों और रही तो विश्वास रखिए कि हिन्दूधर्म के सहस्त्रों सम्प्रदायों में ही हमारी गणना रह जाने के अतिरिक्त और हमारा कुछ भी नाम नहीं रहेगा। यह अजगर बौद्ध और जैन-जैसे सम्प्रदायों को निगल चुका है फिर हमारी तो गणना ही क्या है? हमने अब तक इस विषय में जो दण्डनीय भूल की है, वह कभी भी क्षमा करने योग्य नहीं है। इसका फल तो अवश्य मिलेगा ही, परन्तु भविष्य के लिए भी हम चेत जाएँ, तो भी बिगड़ी बन सकती है। यह समय है, कि हम अपनी त्रुटियों पर दृष्टि डालें और इनसे बचने का दृढ़ निश्चय कर लें। यदि इस शताब्दी पर हम इतना भी कर सके तो उत्सव सार्थक होगा, हमारा धर्म और संसार सुधरेगा और संसार का उपकार होगा। —'आर्यमित्र' का शताब्दी अंक, पृ० १२४

पोपजी! अब इस लेख को मिलाकर देखें कि क्या इससे आपका उद्देश्य पूरा होता है? कदापि नहीं। यह आर्यसमाज की ही शक्ति है कि जब उसे ज्ञात हो जाए कि आर्यसमाज के किसी अधिकारी में अमुक दोष है तो वह तुरन्त उसके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाता है और अगर वह अधिकारी अपनी उस कमी को दूर न करे तो उसके बड़े-से-बड़े पद और मान-सम्मान को भी दृष्टि से ओझल करके उसे कूड़े-करकट की भाँति आर्यसमाज से निकालकर बाहर फेंक दिया जाता है। इस सम्बन्ध में स्वामी सत्यानन्दजी का उदाहरण आपके सामने हैं। वे आर्यजगत् में एक उच्च कोटि के संन्यासी थे, परन्तु जब उन्होंने वेद के विरुद्ध अपनी पुस्तक 'भक्तिप्रकाश' लोगों में वितरित करके ओम् नाम के स्थान पर 'राम' नाम का उपदेश करना आरम्भ किया और स्त्रियों को भी चेलियाँ बनाने लगे तथा कण्ठी-माला का उपदेश करने लगे और अपने उपनिषद्-भाष्य में मांस खाने का विधान भी कर दिया तो आर्यसमाजों की शिरोमणि सभा 'आर्य सार्वदेशिक सभा' ने इनके विरुद्ध तुरन्त घोषणा कर दी और प्रतिनिधि सभाओं ने भी इनके लिए अपनी वेदि बन्द कर दी।

यह गोलमाल सनातनधर्म में ही चल सकता है कि जिनकी पुस्तकों में वेश्या-गमन, मद्य-पान और गोमांसभक्षण की आज्ञा विद्यमान हो और वह टस-से-मस न हो।

पोपजी—मांस पकाने की विधि। —जोधपुर आर्यसमाजकृत 'भोजन-विचार'।

तोपजी—हम लोग इन पुस्तकों को आर्यसमाज के लिए इसी प्रकार कलङ्क समझते हैं, जिस प्रकार वेदव्यासजी के नाम पर अष्टादश पुराणों को। हाँ, इतना अन्तर है कि आर्यसमाज ने इन पुस्तकों को बूट की ठोकर मारकर गन्दी नाली में फेंक दिया है और सनातनधर्म अभी अष्टादश पुराणों के सम्बन्ध में सोच-विचार कर रहा है। आपका पुराणों में आये हुए मांस-भक्षण, मद्यपान, वेश्यागमन, लौंडेबाजी और गोमांस-भक्षण को 'चाण्डाल चौकड़ी', 'आर्यमित्र का शताब्दी अंक' और 'मांस-भोजन-विचार' आदि पुस्तकों से सिद्ध करने का प्रयत्न व्यर्थ है, क्योंकि इस प्रकार की पुस्तकों का आर्यसमाज पर कोई उत्तरदायित्व नहीं है। आर्यसमाज वेदों को स्वत:प्रमाण मानता है और ब्रह्मा से लेकर ऋषि दयानन्द तक के ऋषिकृत ग्रन्थों को परत:प्रमाण स्वीकार करता है और ऋषि दयानन्द के पश्चात् बनाये हुए ग्रन्थों को, चाहे वे किसी के भी द्वारा लिखे हुए क्यों न हों, अनार्ष और अप्रामाणिक मानता है। इसलिए पं० राजाराम, पं० आर्यमुनि, पं० तुलसीराम, पं० भगवद्दत्त, पं० सातवलेकर, स्वामी दर्शनानन्दजी आदि किसी की भी लिखी हुई पुस्तकों का आर्यसमाज उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि ये सब अनार्ष और अप्रामाणिक ग्रन्थ हैं। यदि आपमें साहस हो तो आर्यसमाज की प्रामाणिक पुस्तकों के प्रमाण प्रस्तुत करें।

पोपजी—मनुष्य को मनुष्य का मांस खाने की शिक्षा।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तम संस्करण, पृ० २८७

तोपजी—क्योंजी! सत्यार्थप्रकाश का पूरा पाठ क्यों नहीं लिखा, केवल संकेत करके ही क्यों रह गये? इसलिए न कि पोल न खुल जाए? तो क्या धोखा देना ही आप लोगों का काम रह गया है? इन्हीं बातों के कारण तो आपने पोप-पदवी प्राप्त की है। लीजिए, हम पुस्तक के वास्तविक शब्द सम्पूर्ण रूप में लिख देते हैं—

"देखो! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्यावर्त्त व अन्य भूगोलस्थ देशों में बड़े आनन्द में मनुष्य आदि प्राणी वर्तते थे, क्योंकि दूध-घी, बैल आदि पशुओं की अधिकता होने से अन्न-रस पुष्कल प्राप्त होते थे, जबसे विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गो-आदि पशुओं को मारनेवाले मद्यपायी राज्याधिकारी हुए हैं, तबसे क्रमश: आर्यों के दु:ख की वृद्धि होती जाती है, क्योंकि जब वृक्ष की जड़ ही काट दी जाए तो फल-फूल कहाँ से हों?

प्रश्न—जो सभी अहिंसक हो जाएँ तो सिंहादि पशु इतने बढ़ जाएँ कि सब गाय आदि पशुओं को मार खाएँ, तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाए।

उत्तर—यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु या मनुष्य हों उनको दण्ड दें और प्राणों से भी वियुक्त कर दें।

प्रश्न—फिर क्या इनका मांस फेंक दें?

उत्तर—चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कोई हानि नहीं होती, परन्तु इस व्यक्ति का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो जाएगा। जितना हिंसा और चोरी व विश्वासघात, छल-कपट आदि से वस्तुओं को प्राप्त करके व्यवहार करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा, धर्म आदि

कर्मों से प्राप्त करके भोजन आदि करना भक्ष्य है।"

अब कहिए पोपजी महाराज! आप झूठ बोलकर कौन-से नरक के योग्य हुए? क्योंकि उपर्युक्त लेख में तो मांस खाने का भीषण खण्डन किया गया है।

पोपजी—बकरे, मेंढे और बैल से भोग करना। —स्वामी दयाननन्दकृत 'यजुर्वेदभाष्य'

तोपजी—वाहजी वाह! तोड़-मरोड़कर स्वार्थ सिद्ध करना इसी का नाम है। यदि आपको पशुओं से भोग करने का शौक था तो पुराणों में कन्दम ऋषि का हिरनी से भोग करना, सूर्य का घोड़ी से मैथुन करना आदि-आदि अनेक उदाहरण मिल सकते थे, फिर वेदों को कलङ्कित करने की क्या आवश्यकता थी? और यदि वेदों को भी पुराणों की भाँति कलङ्कित करने से सनातनधर्म का प्रचार होता है तो फिर तनिक सन्दर्भ भी लिख दिया होता कि स्वामी दयानन्द ने यह शिक्षा कहाँ दी है; परन्तु सन्दर्भ लिखने से तो आपकी सारी पोपलीला का जाल खुल जाता है, इसलिए जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए बिना सन्दर्भ के ही लम्बी गप्प मारी, परन्तु यहाँ भी कम नहीं हैं, आपकी पोल खोलकर ही दम लेंगे। लीजिए, यजुर्वेद अध्याय २१, मन्त्र ६० के भाष्य में यह लेख इस प्रकार है—

"प्राण और अपान के लिए दु:ख-विनाश करनेवाले छेरी आदि पशु से, वाणी के लिए मेंढा से और परमैश्वर्य के लिए बैल से भोग करें—**उपयोग लें।"**

इसके आगे इसी मन्त्र का भावार्थ ऋषि दयानन्द इस प्रकार लिखते हैं—

"जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि से प्राणापान की रक्षा के लिए चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर, उत्तम रसों को पीके वृद्धि को पाते हैं, वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं।"

अब बतलाइए, इस मन्त्र में आपके पुराणों का समर्थन कहाँ से मिलेगा? **भोग करें** का अर्थ स्पष्ट रूप से भाष्य में लिखा हुआ विद्यमान है कि **उपयोग लें**, अर्थात् उचित प्रयोग करें। इस मन्त्र के भावार्थ में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि मनुष्य बकरी आदि पशुओं से दूध आदि का उचित काम लें। इतने स्पष्ट भाष्य की विद्यमानता में वेदमन्त्रों से पशुओं के साथ मैथुन का तात्पर्य लिखना अप्राकृतिक रूप से पशुओं के साथ मैथुन करनेवालों का ही कार्य हो सकता है।

पोपजी—मांस-हवन और भक्षण।—स्वामी दयानन्दकृत 'यजुर्वेदभाष्य'

तोपजी—आपने सन्दर्भ (पता) फिर नहीं लिखा कि स्वामीजी ने किस वेद-मन्त्र के भाष्य में मांस से हवन करना और मांस खाना लिखा है। क्या सनातनधर्म ने झूठ बोलने का ठेका ले-लिया है? और क्या इस प्रकार के झूठ और धोखे से पुराणों में लिखे हुए अजामेध, अश्वमेध और नरमेध सिद्ध हो जाएँगे, जिनमें कि बकरी, घोड़ा, गाय और मनुष्य को मारकर उनके मांस से हवन करना और खाना लिखा है? लीजिए, हम यजुर्वेद के वे शब्द संस्कृत-भाष्यसहित याथातथ्य लिख देते हैं, जिससे जनता आपके अपवित्र और मिथ्या भाषण से धोखे में न रहे।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽत्र बहुपशुर्हविर्भुग्वेदवित् सत्क्रियो मनुष्यो भवेत् स प्रशंसामाप्नोति। —यजु:० अ० १९। मन्त्र २०

भाषार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जो इस संसार में बहुत पशुवाला, होम करके हुतशेष का भोक्ता, वेदवित् और सत्य-क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे, सो प्रशंसा को प्राप्त होता है।

अब आप इस लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ें। इसमें 'मनुष्य' विशेष है और बहुत पशुवाला, होम करके होम से बचा हुआ खानेवाला, वेदों का जाननेवाला और सत्कर्मों का करनेवाला—ये चार विशेषण हैं। संस्कृत में भी चारों विशेषण बिल्कुल अलग-अलग प्रथमा विभक्ति के साथ स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे है अर्थात् बहुपशुः, हविर्भुक्, सत्क्रियः, और वेदवित्। ये चारों पद 'मनुष्य' शब्द के विशेषण हैं। अब इसमें बतलाइए कि पोपजी की बात किन शब्दों से निकलती है? इस भाष्य से मांस हवन करना और मांस खाना किसी भी प्रकार से नहीं लिया जा सकता, क्योंकि इसमें मांस शब्द भी विद्यमान नहीं हैं। इसमें पोपजी ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए संस्कृतभाष्य को दृष्टि से ओझल करके भाषा में दो विशेषणों को मिलाकर एक कर दिया है, अर्थात् **बहुत पशुवाला होम करके हुतशेष का भोक्ता**—इन दोनों को एक बनाकर **बहुत पशुवाला होम** समझकर यह अर्थ निकाला है कि **जिस होम में बहुत पशु प्रयुक्त किये गये हों, उस हवन का बचा हुआ खानेवाला।**

अब आप विचार करें कि इस प्रकार के स्पष्ट भाष्य में से इस प्रकार तोड़-मरोड़कर स्वार्थ सिद्ध करना कितना धोखा देना है। जिस प्रकार एक व्यक्ति अपनी दुकान पर बोर्ड लगाता है कि—'यहाँ पर देसी कपड़ा बिकता है'; दूसरा व्यक्ति 'पर' शब्द को 'देसी' के साथ मिलाकर इसका यह अर्थ निकाले कि 'यहाँ परदेसी कपड़ा बिकता है' तो बतलाइए, कितनी बड़ी और भयानक चालाकी है! यही चालाकी यहाँ प्रयुक्त की गयी है, परन्तु एक और बात भी पाठकों की सेवा में निवेदन करना आवश्यक है कि इतनी चालाकी करने पर भी पोपजी का स्वार्थ सिद्ध नहीं होता, क्योंकि 'बहुत पशुओंवाले होम' से यही तात्पर्य लिया जा सकता है कि जिस हवन में बहुत-से पशुओं का प्रयोग किया गया हो, अर्थात् जिसमें बहुत-से पशुओं को घी प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया हो, न कि मारकर मांस का प्रयोग करने के लिए। इसलिए पोपजी का यह सारा परिश्रम व्यर्थ है।

पोपजी—यदि भगवान् कृष्णचन्द्र महाराज राजसभा और विद्यासभा के द्वारा द्रोणाचार्य आदि को ब्राह्मण से क्षत्रिय और भीष्मपितामह और धर्मराज युधिष्ठिर को क्षत्रियर से ब्राह्मण बना देते!

तोपजी—आपने वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त को समझे बिना ही यह बात लिख मारी है। वर्ण-व्यवस्था कर्मों के अनुसार होती है—यह सत्य है, परन्तु कर्म भी दो प्रकार के होते हैं—एक मुख्य और दूसरे गौण। मुख्य कर्म वे होते हैं जिनके आधार पर कर्मकर्त्ता की जीवनवृत्ति निर्भर होती है, अर्थात् जिन कर्मों को करके मनुष्य अपनी आजीविका कमाता है, वे कर्म मुख्य हैं; और जो कभी-कभी आवश्यकता पड़ने पर करने पड़ते हैं, वे गौण होते हैं। कर्मों के अनुसार वर्ण-व्यवस्था का आधार मुख्य कर्मों पर है। उदाहरण के रूप में धोबी वही कहाता है जो कपड़े धोने से अपनी आजीविका कमाता है। आवश्यकता पड़ने पर बिना मज़दूरी अपने या किसी के कपड़े धोने से धोबी नहीं बन सकता। जो पखाना उठानो का काम आजीविका के लिए करता है, वह भंगी; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर बिना मज़दूरी अपना अथवा अपने बच्चों का पाखाना उठाने से कोई भंगी नहीं बनता। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लीजिए।

द्रोणाचार्य का मुख्य कार्य विद्या पढ़ाना था; युद्ध उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर किया, इसलिए वे क्षत्रिय नहीं बने। भीष्मपितामह और युधिष्ठिर का मुख्य काम राजप्रबन्ध था;

उपदेश वे आवश्यकता पड़ने पर देते थे, अतः वे ब्राह्मण नहीं बने। इसी कारण श्रीकृष्ण ने द्रोणाचार्य को क्षत्रिय और भीष्मपितामह तथा युधिष्ठिर को ब्राह्मण नहीं बनाया, अन्यथा श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज तो स्वयं कर्मों से ही वर्ण-व्यवस्था मानते थे, जैसाकि वे गीता (४।३) में कहते हैं–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

मैंने चारों वर्णों को गुण-कर्म के अनुसार बनाया है।

पोपजी–विधवाओं का विवाह कर देते।

तोपजी–तो क्या आपके विचार में कृष्णजी विधवा-विवाह और नियोग के विरुद्ध थे? कदापि नहीं। यदि वे विधवा-विवाह के विरुद्ध होते तो अपने बहनोई अर्जुन का तुरन्त बहिष्कार कर देते, क्योंकि अर्जुन ने नागराज की विधवा पुत्री से विवाह किया था, जिससे इरावान नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ; और कृष्ण की बुआ कुन्ती ने एक-एक करके तीन से नियोग किया, परन्तु कृष्ण ने कभी कुन्ती का बहिष्कार नहीं किया। पुनः श्रीकृष्ण के विशेष प्रिय पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी का पाँच दिन में विवाह हुआ। श्रीकृष्ण ने इसपर कोई अप्रसन्नता प्रकट नहीं की। इन सब बातों के अतिरिक्त कृष्ण ने स्वयं रायाण गोप की स्त्री राधा से पुनर्विवाह किया।[१] इन सब बातों की विद्यमानता में श्रीकृष्ण को विधवा-विवाह, नियोग और पुनर्विवाह के विरुद्ध बताना कितनी निडरता है?

पोपजी–और चूहड़े-चमारों के गले में यज्ञोपवीत डालकर उनके नाम के आगे शर्मा और वर्मा लगा देते।

तोपजी–वाह-जी-वाह पोपजी! बड़े पते की बात कही। क्या आपके विचार में श्रीकृष्णचन्द्र के समय में भी छूत-छात का रोग भारतवर्ष में था, जिसे दूर करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञोपवीत देना नुस्खे के रूप में प्रयुक्त किया जाता? क्या आपके विचार में उस समय भी कहारों की भाँति पानी भरनेवाले, भोजनशालाओं में रोटी बनानेवाले और गधों की भाँति यजमानों का बोझ ढोनेवाले, मारवाड़ियों की धोती धोने और उनके बच्चों की टट्टी उठानेवाले, जन्माभिमानी, निरक्षर भट्टाचार्य ब्राह्मण केवल यज्ञोपवीत पहनने के कारण लोगों के गुरु बने हुए थे, जिनके जन्माभिमान को मिटाने के लिए प्रत्येक योग्य और अयोग्य व्यक्ति को यज्ञोपवीत देने की आवश्यकता पड़ती? कदापि नहीं। चूँकि श्रीकृष्णचन्द्रजी के समय में गुण-कर्म से वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त पर पूर्णरूप से आचरण किया जाता था–जो ब्राह्मण दोनों समय सन्ध्या नहीं करता था, उससे बलात् शूद्र का काम लिया जाता था; छूत-छात का चिह्न भी नहीं था, अतः उपर्युक्त साधनों की आवश्यकता नहीं पडती थी।

पोपजी–यदि हम भंगी और धानक आदि से छूत-छात न रक्खेंगे और इनसे घृणा न करेंगे तो उनकी जवान लड़कियाँ जो हमारे घरों मे आती हैं, उनको देखकर हमारे नवयुवक सदाचार खो बैठेंगे और दुराचारी हो जाएँगे।

तोपजी–बलिहारी है! छूत-छात को स्थिर रखने का कैसा उचित तर्क है? इसका अर्थ

---

१. ये दोनों मान्यताएँ सनातनधर्म के अनुसार हैं। आर्यसमाज द्रौपदी का एक ही पति स्वीकार करता है और श्रीकृष्ण की भी एक ही पत्नी थी, रुक्मिणी। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण के राधा के साथ मामी, बहिन, पत्नी आदि के अनेक सम्बन्ध थे।
–जगदीश्वरानन्द

यह है कि जिन ब्राह्मण आदि वर्णों से छूत-छात नहीं की जाती और जिनकी युवति लड़कियाँ प्रायः हमारे घरों में आती-जाती रहती हैं, उनको देखकर हमारे नवयुवक अवश्य सदाचार खो बैठते होंगे और उनसे दुराचार भी करते होंगे। इसलिए उनसे बचाने का भी उपाय हो सकता है कि ब्राह्मण आदि वर्णों को अछूत घोषित किया जाए जिससे उनकी युवति लड़कियों और हमारे नवयुवकों का सदाचार सुरक्षित रह सके। अजी पोपजी! तनिक होश की दवा करो! सदाचार के सुरक्षित रखने का उपाय छूत-छात नहीं, अपितु धर्म-शिक्षा है, जिससे पर-स्त्री को माता के समान समझते हुए मनुष्य दुराचार से बच सकता है, अन्यथा दुराचारियों को छूत-छात भी दुराचार से नहीं रोक सकती। यदि आवश्यकता हो तो इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिनमें सनातनधर्म के ठेकेदार ब्राह्मण और बनियों ने भंगनों, चमारियों और धानकियों से मुँह काला करके न्यायालय से दण्ड पाया हो।

पोपजी—यदि पर-स्त्री को माता के समान जानकर दुराचार से बचना सत्य है तो आर्य विधवा-आश्रमों में विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार क्यों किया जाता है; क्यों उनके गर्भ गिरवाये जाते हैं?

तोपजी—आर्य विधवा-आश्रमों में प्रायः वे विधवा प्रविष्ट होती हैं, जिनका सनातनधर्मी विवाह नहीं करते और वे घरों में दुराचार में फँसी रहती हैं और गर्भ रह जाने पर अवसर पाकर ईसाई, मुसलमान, भंगी, चमारों के साथ भाग निकलती हैं, जिनको आर्यवीर ढूँढकर विधवा-आश्रम में प्रविष्ट करा देते हैं और इनके विवाह की सुव्यवस्था कर देते हैं। इनके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाता और विवाह हो जाने के कारण गर्भ गिराने की आवश्यकता ही नहीं हो सकती। हाँ, ये दोनों कार्य सनातनधर्म के ठेकेदारों के घरों में अवश्य होते हैं। घरों में विधवाओं को असहाय समझकर उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं और गर्भ रह जाने पर तीर्थ के बहाने से बाहर ले-जाकर गर्भपात कराया जाता है। यदि आवश्यकता हो तो सनातनधर्म के इस कृत्य का प्रतिवेदन (Report) प्रस्तुत किया जा सकता है।

पोपजी—क्या आर्यसमाज ने इस प्रकार का कोई विभाग खोला हुआ है जहाँ इस बात की जाँच-पड़ताल की जाती अथवा इस प्रकार के प्रतिवेदन प्राप्त होते हों कि घरों से रोटी लेनेवाली ब्राह्मणी के साथ गृहस्वामी के नौजवान लड़के दुराचार नहीं करते?

तोपजी—निःसन्देह! हमारा तो आज तक यही विचार था कि घरों से रोटी लानेवाली युवति ब्राह्मण लड़कियों के साथ गृहस्वामी के नौजवान लड़के दुराचार नहीं करते, परन्तु मनुष्य ग़लती का पुतला है और हम भी मनुष्य हैं, अतः हमसे भी ग़लती हो जाना कोई बड़ी बात नहीं हैं। दूसरी बात यह है हम तो अपनी आत्मा के अनुसार अनुमान ही कर सकते हैं, वास्तविक अवस्था तो आप लोग ही जान सकते हैं, जिनके साथ बीतती है, अतः हम अपना विचार वापस ले-लेते हैं। क्षमा करना हमने ग़लत अनुमान लगाया। आपका विचार ठीक है। अवश्य ही रोटी लानेवाली ब्राह्मण युवति लड़कियों के साथ गृहस्वामी के नौजवान लड़के दुराचार कर बैठते होंगे, अतः उनके चाल-चलन को ठीक रखने के लिए ब्राह्मणों को शीघ्र जी अछूतों में सम्मिलित हो जाना चाहिए।

पोपजी—ब्राह्मणी रोटी लेने के लिए केवल उन्हीं घरों में जाती हैं जहाँ स्त्रियाँ होती हैं, जिनकी उपस्थिति में गृहस्वामी के नौजवान लड़कों को दुराचार करने का अवसर ही

नहीं मिल सकता।

तोपजी—ठीक है, अब बुद्धि ठिकाने आई। भला, यह तो बतलाएँ कि यदि भंगी, चमार और धानकों से छूत-छात न रक्खी जाए और उनकी नौजवान लड़कियाँ भी ब्राह्मणों की युवति लड़कियों की भाँति उन्हीं के घरों में जाया करें जिन घरों में स्त्रियाँ हों, जिनकी उपस्थिति में गृहस्वामी के नौजवान लड़कों को दुराचार करने का अवसर ही न मिल सकेगा, फिर तो आपको अछूतोद्धार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

पोपजी—इनका उद्धार छूत-छात के दूर करने से नहीं होता, अपितु इनका उद्धार तो इनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने में है।

तोपजी—तो फिर सनातनधर्म ने अछूतोद्धार का विभाग क्यों रक्खा है? क्या केवल जनता से धन बटोरने के लिए? और पं० मदनमोहनजी मालवीय प्रयाग और वाराणसी में गङ्गा के किनारे पर भंगियों को स्नान करवाकर, शुद्ध वस्त्र पहिनाकर, माला देकर और मन्त्र-उपदेश करके दीक्षा क्यों देते हैं तथा जनता में भंगी और चमारों के लड़कों को गोद में उठाकर छाती से क्यों लगाते हैं? आप इनके विरुद्ध बहिष्कार का प्रस्ताव पास क्यों नहीं करते और आपने तथा मालवीयजी ने इनकी आर्थिक अवस्था का क्या सुधार किया है, तनिक इसकी सूचना समाचार-पत्रों में दे दीजिए।

पोपजी—प्रसिद्ध आर्यसमाजी श्री भल्ला ने बूटों का व्यापार स्वयं हाथ में लेकर चमारों को व्यवसायहीन बना दिया है।

तोपजी—क्या आपने अमृतसर के बाजार में ब्राह्मणों की बूटों की दुकान नहीं देखी, जिसपर यह बोर्ड लगा हुआ है—'पण्डिताँ दी हट्टी।' इसके अतिरिक्त सिखों, खत्रियों और बनियों की भी बूटों की दुकानें हैं। जब सनातनधर्मियों की भी दुकानें विद्यमान हैं, तब केवल भल्लाजी पर आक्षेप करना मूर्खता नहीं तो क्या है?

पोपजी—यदि चमारों के हाथों में व्यापार होता तो इसमें सन्देह नहीं कि इनकी आर्थिक अवस्था बहुत उन्नत होती, परन्तु आर्यसमाज की कृपा से इनका बहुत बड़ा भाग बासी रोटी के लिए भी परावलम्बी हो गया है।

तोपजी—पण्डितों, खत्रियों, सिखों और भल्लाजी के बूटों के व्यापार होने के कारण चमारों को कोई हानि नहीं पहुँची है। हाँ, मुसलमानों को अवश्य हानि हुई है, क्योंकि पहले मुसलमान ही बूटों का व्यापार करते थे और चमार लोग उन्हें अपने बूट बेचते थे और मुसलमान उनसे लाभ उठाते थे। अब मुसलमानों के स्थान पर हिन्दू लाभ उठाते हैं। हाँ, चमारों को भी अवश्य लाभ हुआ है, क्योंकि पहले मुसलमान हिन्दू चमारों से मनमाने भाव पर जूते खरीदते थे, अब हिन्दुओं के साथ मुक़ाबला हो जाने से चमारों के जूते अच्छे दामों पर बिकते हैं और यदि कोई पूँजीपति चमार जूतों का व्यापार करे तो उसके लिए कोई रुकावट नहीं है। रहा बासी रोटी से भी वञ्चित होने का प्रश्न, वह इनपर सनातनधर्म की ही कृपा थी, क्योंकि ये लोग जूता बनाने के अतिरिक्त और कोई कर्म न कर पाते थे। न ये सोडावाटर और भल्ले-पकौड़ी की दुकान खोल सकते थे, न हलवाई और सब्जी बेचने का व्यापार कर सकते थे, न ही दूध आदि बेच सकते थे और न ही इनको घरों में नौकर रक्खा जाता था, क्योंकि इन दीन-हीनों पर छूत-छात का आदेश लगाकर सनातनधर्म ने इनकी आजीविका के सब द्वार बन्द करके इनको दैनिक रोटी की प्राप्ति से भी वञ्चित कर दिया था। भला हो आर्यसमाज का, जिसने सनातनधर्म के सम्पूर्ण आदेशों के विरुद्ध

आवाज़ उठाकर इनके लिए व्यापार के द्वार खोल दिये और छूत-छात के उड़ जाने से उपर्युक्त सभी कार्यों को इन लोगों ने अपने हाथ में ले-लिया और अपने पैरों पर खड़े होने योग्य हो गये। यह सब आर्यसमाज की कृपा है कि आज ये लोग मनुष्य कहलाने के योग्य बन गये हैं और किसी ने सोडावाटर की दुकान में उन्नति करके लाखों रुपया कमाया है तो किसी ने हलवाई और सब्जी की दुकान में हाथ दिखाया है। किसी ने दूध बेचकर परिवार का पालन किया तो किसी ने बर्फ और भल्ला-पकौड़ी बेचकर बच्चों का पेट पाला और कुओं, मन्दिरों, पाठशालाओं और उत्सवों के द्वार खुलने से सामाजिक अवस्था में सुधार हुआ। तात्पर्य यह कि आर्यसमाज की कृपा से उन्होंने प्रत्येक दिशा में भारी उन्नति कर दिखाई है। पोपजी को धनीराम भल्ला तो तुरन्त याद आ गया, परन्तु केसरी की दुकान स्मरण नहीं आई, जिसके पानी की बोतल गटागट पेट में जाकर पोपजी की आत्मा को प्रसन्न कर देती है और पोपजी पर अछूतोद्धार की मोहर लगा देती है।

पोपजी—मालवीयजी ने सनातनधर्म कान्फ्रेंस लाहौर में कहा—"आर्यसमाजी सनातनधर्मियों को चैलैञ्ज देते हैं, मुझे क्यों नहीं देते? मैं उनका चैलैञ्ज स्वीकार करता हूँ।" पण्डितजी के इस भाषण से आर्यसमाजी शिविर में खलबली मच गयी, परन्तु किसी को उनके साथ शास्त्रार्थ करने का साहस न हुआ।

तोपजी—मालवीयजी की भी खूब सुनाई! अजी पोपजी! वैसे तो हम वृद्ध होने के कारण मालवीयजी का आदर करते हैं, परन्तु धार्मिक विषय में तो मालवीयजी बिना पैंदे के मुरादाबादी लोटे हैं। 'गङ्गा गये गङ्गादास और जमना गये जमनादास' की कहावत उनपर चरितार्थ होती है। कहीं पर विदेश जाते हैं तो कहीं प्रायश्चित्त करते हैं। कहीं सचैल (वस्त्रों-सहित) स्नान करते हैं तो कहीं भंगी लड़कों को गोद में उठा लेते हैं। कहीं सनातनधर्मियों को प्रसन्न करने के लिए पुराणों की प्रशंसा करके उनकी आँखों में धूल झोंक देते हैं तो कहीं वेदों में मूर्त्तिपूजा का निषेध करके आर्यसमाजियों से वाह-वाह करवा लेते हैं। बस, यही बात उपर्युक्त चैलैञ्ज में भी हुई। पहले तो उन्होंने सनातनधर्म कान्फ्रेंस लाहौर में आर्यसमाजियों को चैलैञ्ज देकर सनातनधर्मियों को प्रसन्न कर लिया, परन्तु जब आर्यसमाज के धुरन्धर विद्वान्, गुरुकुल काँगड़ी के अमूल्य रत्न, वेदों के समुद्र, शास्त्रार्थों के महारथी पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालङ्कार ने चैलैञ्ज को स्वीकार करके समय निर्धारित करने के लिए पत्र भेजा और लिखित स्वीकृति माँगी तो चुप्पी साध गये। जब कोई उत्तर नहीं आया तो आर्यसमाज बच्छोवाली, लाहौर आर्यसमाज के प्रधान रायसाहब ला० रोशनलालजी बैरिस्टर पं० मालवीयजी के निवास-स्थान पर गये और शास्त्रार्थ के लिए लिखित स्वीकृति माँगी तो मालवीयजी ने अपना भागवत उठाकर प्रधानजी के आगे रख दिया, जिसमें सैकड़ों स्थानों पर लाल पैंसिल से गन्दी कथाओं को काटा हुआ था, और कहा—"मैं तो इस प्रकार के पुराणों को मानता हूँ। जिस किसी को शास्त्रार्थ करना हो वह मेरे इस भागवत पर आक्षेप करे।" यह कहकर शास्त्रार्थ से स्पष्ट इन्कार कर दिया। यह हैं आपके चैलैञ्ज और मालवीयजी की वास्तविकता, जिसको स्मरण करके आप फूले नहीं समाते।

पोपजी—मालवीयजी ने यह भी कहा था कि स्वामी दयानन्द ने पुराणों को समझा नहीं था। यदि वे जीवित रहते तो मैं उन्हें अपने विचारों का बना लेता।

तोपजी—जी हाँ, ठीक है मालवीयजी स्वामीजी को अपने विचार का बना लेते या

सनातनधर्म से त्याग-पत्र दे देते। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि मालवीयजी ने आर्यसमाज की शिक्षा से प्रभावित होकर सनातनधर्म के कितने ही सिद्धान्तों पर पानी फेर रक्खा है। भागवत पर सैकड़ों स्थानों पर लाल पैंसिल फेर रक्खी है, समुद्र-यात्रा करते हैं, भंगियों को मन्त्रोपदेश करते हैं; अछूतोद्धार और शुद्धि के प्रबल समर्थक हैं, ऋषि दयानन्द के श्रद्धालु भक्त हैं। इन सब बातों को दृष्टि में रखकर पूर्णरूप से यह अनुमान किया जा सकता है कि यदि स्वामी दयानन्दजी जीवित होते और उनका मालवीयजी के साथ विचार-विनिमय हो जाता तो मालवीयजी श्रीमद्‌भागवतसहित अष्टादश पुराणों को यमुना में बहाकर वैदिक धर्म की शरण में आ जाते, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

पोपजी की भूमिका

पोपजी—जनता की हार्दिक इच्छा थी कि शास्त्रार्थ का प्रधान पं० माधवाचार्यजी शास्त्री को बनाया जाए।

तोपजी—बिल्कुल सफ़ेद झूठ है। जनता को तो यह पता ही नहीं था कि माधवाचार्य किस चिड़िया का नाम है। हाँ, कुछ सनातनधर्मियों ने शोर अवश्य मचाया जोकि अनधिकार चेष्टा समझी गयी।

पोपजी—परन्तु आर्यसमाज ने स्वीकार नहीं किया।

तोपजी—नियम और व्यवस्था की बात है। जब उत्सव आर्यसमाज का था और शान्ति का उत्तरदायित्व भी आर्यसमाज पर था तो फिर माधवाचार्य-जैसे दायित्वहीन व्यक्ति को, जिसका कार्य ही शान्तिभंग करना हो, प्रधान कैसे बनाया जा सकता था?

पोपजी—क्योंकि आज तक आर्यसमाज ने कभी सनातनधर्मी प्रधान की विद्यमानता में शास्त्रार्थ स्वीकार नहीं किया।

तोपजी—सत्य को झुठलाना इसी का नाम है। कम-से-कम बीस स्थानों पर तो सनातनधर्म के उत्सवों में मैंने सनातनधर्म के प्रधानों की विद्यमानता में शास्त्रार्थ किये हैं, क्योंकि साधारणत: नियम यही है कि जिसका उत्सव हो और जिसका उत्तरदायित्व और प्रबन्ध हो, प्रधान उसी का होता है।

पोपजी—अन्ततोगत्वा आर्यसमाज को प्रथम विषय अर्थात् 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदानुकूल हैं' पर विवश होकर शास्त्रार्थ करना पड़ा।

तोपजी—यह बिल्कुल असत्य है। शास्त्रार्थ आरम्भ करते समय विषय के सम्बन्ध में कोई चर्चा ही नहीं हुई, क्योंकि शास्त्रार्थ का विषय 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण' पहले से ही पत्र-व्यवहार के द्वारा निश्चित हो गया था।

पोपजी—महाशयजी ने उत्तर देने की बजाय पुराणों पर टीका-टिप्पणी आरम्भ कर दी।

तोपजी—जब मुक़ाबिले का विषय निर्धारित था तो फिर पुराणों पर प्रश्न करना आवश्यक था। उत्तरों ने आपकी जो दुर्दशा की वह आप अनुभव कर ही चुके हैं।

पोपजी—जनता के आग्रह करने पर कि शास्त्रार्थ के वास्तविक विषय को छोड़कर पुराणों पर टीका-टिप्पणी करना शास्त्रार्थ के नियमों के विरुद्ध है, और कहाँ की बुद्धिमानी है, परन्तु प्रधान स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी ने यूँ ही टाल दिया।

तोपजी—निर्णीत विषय के अनुसार पुराणों पर प्रश्न करने से सनातनधर्मियों का शोर

मचाना केवल शरारत थी। प्रधानजी ने यूँ ही नहीं टाला, अपितु आध घण्टा में दोनों ओर के पत्र-व्यवहार को सुनकर निर्णय दिया कि विषय यही निर्धारित हुआ है कि 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं या अष्टादश पुराण'। पत्र-व्यवहार के अनुसार सनातनधर्मियों को मुँह की खानी पड़ी और उपर्युक्त विषय पर ही शास्त्रार्थ पुनः आरम्भ हुआ।

पोपजी–आर्यसमाज को इस शास्त्रार्थ में बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी।

तोपजी–मुँह की आर्यसमाज को खानी पड़ी या सनातनधर्म को–यह आपके रोने-चिल्लाने से ही प्रकट हो रहा है।

पोपजी–आर्यसमाज जाखल ने मनमाना शास्त्रार्थ तैयार करवाने के लिए लाला मनसारामजी को विवश किया।

तोपजी–मनमाना शास्त्रार्थ तैयार करवाने के लिए तो आपको सनातनधर्म सभा जाखल ने विवश किया है और आपने ऐसा कर भी दिखाया है। जहाँ पर पं० श्रीकृष्ण शास्त्री ने एक भी वेदमन्त्र अपने प्रश्नों की पुष्टि में प्रस्तुत नहीं किया था, वहाँ आपने मनमाने ढंग से प्रश्नों के साथ वेदमन्त्र जड़ दिये हैं और श्रीकृष्ण के मुख से भी प्रत्येक टर्न (Turn, बारी) में मनमाने ढंग से कहलवा दिया है कि 'मैंने वेदमन्त्र प्रस्तुत करके स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों को वेदविरुद्ध सिद्ध कर दिया है, जबकि शास्त्रार्थ में ऐसा नहीं हुआ था, अतः शास्त्रार्थ का मनमाना मसौदा[१] [प्रारूप] तैयार कराना सनातनधर्म का ही काम है। आर्यसमाज ने तो याथातथ्य, शब्दशः जो कुछ हुआ था वही तैयार करवाकर प्रकाशित किया है।

पोपजी–पुस्तक 'शास्त्रार्थ जाखल मण्डी' आर्यसमाज की ओर से प्रकाशित कराई गयी।

तोपजी–निःसन्देह, क्योंकि सचाई का प्रचार करना आर्यसमाज का मुख्य कर्त्तव्य है, इसलिए इसे प्रकाशित करना आवश्यक था।

पोपजी–भूमिका में स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी स्वयं स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि पं० मनसारामजी ने शास्त्रार्थ में जो बातें नहीं भी हुई थी, वे भी लिख दी हैं। इनका यही तात्पर्य है कि लोगों को यह विषय भली-भाँति समझ में आ जाए।

तोपजी–स्वामीजी के उस लेख का यह तात्पर्य नहीं है कि हमने दोनों पक्षों के भाषणों में कोई वृद्धि की है, अपितु स्वामीजी का संकेत हमारे उस लेख की ओर है जोकि हमने शास्त्रार्थ के पश्चात् प्रश्न और उत्तर के रूप में और पुराणों पर आठ प्रश्नों के रूप में लिखा है और उसके विषय में उनका लिखना उचित भी है। स्वामीजी के लेख को समझने के लिए उनके उन दो वाक्यों को और जोड़िए जिनको आपने जान-बूझकर जनता को धोखे में रखने के लिए छोड़ दिया है। वे दो वाक्य हैं–"और इसपर अच्छी प्रकार विचार किया गया है और उत्तर विस्तार से दिये गये हैं।" इन दो वाक्यों को जोड़कर स्वामीजी के लेख को पढ़ें और बतलाएँ कि अच्छी प्रकार से विचार किये जाने और विस्तारपूर्वक उत्तर दिये जाने का काम शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों के भाषणों में विद्यमान है अथवा शास्त्रार्थ के पश्चात् प्रश्न और उत्तर के रूप में तथा पुराणों पर आठ प्रश्नों के रूप में हमारे लेख में विद्यमान है।

१. लेख का वह पूर्व-रूप जिसमें काट-छाँट तथा सुधार किया जाता हो। –जगदीश्वरानन्द

पोपजी—लाला मनसारामजी ने पुराणों की आदर्श कथाओं को तोड़-मरोड़कर अशिष्ट शब्दों में पुराणों पर बेहूदा दोष आरोपित किये हैं।

तोपजी—जैसे को वैसा वर्णन करना सचाई है। हमने तो पुराणों की कथाओं को शब्दशः लिख दिया है। यदि इनमें कोई अश्लीलता या असभ्यता दिखाई देती है तो वह पुराणों की अपनी सम्पत्ति है, हमारा इसमें कोई दोष नहीं है।

पोपजी—स्वामी दयानन्दजी ने जबकि अपने धर्मग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में कई-एक झूठे प्रमाण और मनमानी कथाएँ लिखकर ऋषि-मुनियों को गालियाँ दीं और वेदमन्त्रों को कतरकर मनमाना अर्थ करके जनता को धोखा देना अपना परमधर्म बना रक्खा था तो उनके चेलों की तो बात ही क्या है? उदाहरण के रूप में स्वामीजी के कुछ झूठे प्रमाण प्रस्तुत किये जाते है।

तोपजी—ऋषि दयानन्दजी महाराज ने न तो कोई झूठा प्रमाण दिया है और न ही वेदमन्त्रों की कतर-ब्यौंत करके मनमाने अर्थ किये हैं, मनमानी कथाएँ घड़कर ऋषि-मुनियों को गाली देना—यह तो पुराणों का ही रजिस्टर्ड पेशा है। हाँ, यह ठीक है कि आचार्य लोग भावप्रधान होते हैं। वे सहस्रों पुस्तकों का अध्ययन करने के पश्चात् जब पुस्तक लिखने बैठते हैं तो सारे ग्रन्थों को अपने चारों ओर रखकर नहीं बैठते। अनेक स्थानों पर वे ग्रन्थ के भाव को अपनी संस्कृत में लिख देते हैं। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने झूठा प्रमाण दिया है, क्योंकि उस अर्थ को बतानेवाला पाठ उस ग्रन्थ में विद्यमान होता है; और दूसरी बात यह है कि प्रायः पुस्तकों में भी पाठभेद होता है। पाठभेद का अर्थ है कि श्लोकों के शब्दों में अन्तर होता है, परन्तु उनका तात्पर्य एक ही होता है। तीसरे, पुस्तकें पास न होने के कारण एक पुस्तक का पाठ दूसरी पुस्तक के नाम से लिख दिया जाता है। इससे आचार्य की नीयत पर सन्देह नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह पाठ किसी-न-किसी ग्रन्थ में विद्यमान है और इससे सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं आता। तात्पर्य यह कि किसी ग्रन्थ के प्रमाणों के भाव को अपनी संस्कृत में लिखने से और ग्रन्थों में पाठभेद होने के कारण अथवा एक पुस्तक का पाठ दूसरे ग्रन्थ के नाम से लिखे जाने के कारण किसी आचार्य की नीयत पर सन्देह नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा होने से सिद्धान्त में कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिए ये बातें जैसे अन्य आचार्यों के ग्रन्थों में पाई जाती हैं, वैसे ही ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भी विद्यमान हैं। इससे ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों पर कोई दोष नहीं आता। फिर भी आगे चलकर इन बातों का उदाहरण देकर और भी स्पष्टरूप से वर्णन करेंगे। पाठक ध्यान से पढ़कर ठीक-ठीक परिणाम पर पहुँचने का प्रयत्न करें।

पोपजी—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८, पृष्ठ २३७ में लिखते हैं—

मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त। —यजुर्वेद

यह मन्त्र सत्यार्थप्रकाश के ११ संस्करणों तक यजुर्वेद का ही लिखा जाता रहा, परन्तु बारहवें संस्करण में यजुर्वेद और शतपथब्राह्मण का मन्त्र लिखा गया, परन्तु यह मन्त्र किसी वेद में नहीं। स्वामीजी ने सरासर झूठा प्रमाण देकर धोखा दिया है।

तोपजी—उपर्युक्त संस्कृत-लेख में दो वाक्य हैं। पहले को यजुर्वेद के नाम से और दूसरे को उसके ब्राह्मण अर्थात् शतपथ के नाम से सत्यार्थप्रकाश में दिया गया है। इन दोनों में से दूसरे के सम्बन्ध में तो कोई विवाद नहीं क्योंकि **'ततो मनुष्या अजायन्त'**—यह पाठ

इसी रूप में शतपथ में १४।४।२।५ पर विद्यमान है। रह गया प्रथम वाक्य। यह स्वामीजी ने यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का भाव लेकर लिख दिया है। स्वामीजी का उद्देश्य यह बताना था कि सृष्टि के आरम्भ में अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए और यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय में सृष्ट्युत्पत्ति का और सब जीवधारियों की उत्पत्ति का वर्णन है। इसलिए बहुत-से मन्त्र लिखने के स्थान पर इस अध्याय के भाव को लिख दिया। देखिए यजुर्वेद (३१।९) में यह पाठ विद्यमान है—**साध्या ऋषयश्च ये।** अब उपर्युक्त वाक्य १ और इस पाठ में केवल इतना अन्तर है कि इसमें **'मनुष्याः'** पद है और उसमें **'साध्याः'** और इन दोनों शब्दों के अर्थ एक ही हैं। देखिए, महीधर इसका अर्थ यूँ करते हैं—

ये साध्याः सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः।

अर्थ—जो सन्तान उत्पन्न करने के योग्य प्रजापति आदि थे वे उत्पन्न हुए।

बस, यह सिद्ध है कि इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है। इसलिए ऋषि दयानन्द का 'साध्याः' के स्थान पर 'मनुष्याः' लिखना उनकी नीयत पर सन्देह करने का अवसर नहीं देता, क्योंकि इससे सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं आता और ऐसा प्रायः ऋषियों के ग्रन्थों में हो जाता है। ऋषि दयानन्द के लेख में तो केवल शब्दों का ही अन्तर है, अर्थों का नहीं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय को ईशोपनिषद् कहा गया है और इसे पृथक् करके उपनिषदों के गुटके में सम्मिलित कर दिया गया है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय और गुटके में सम्मिलित उपनिषद् के पाठ में बहुत भारी अन्तर है। इस समय हमारे सामने निर्णयसागर द्वारा प्रकाशित अड़तीस उपनिषदों का गुटका है। इसमें और यजुर्वेद के **चालीसवें अध्याय** में जो अन्तर है, उसे हम विस्तार से नीचे लिख रहे हैं। पाठक उसे **ध्यानपूर्वक पढ़कर आनन्द लें।**

१. यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में सत्रह मन्त्र हैं, परन्तु ईशोपनिषद् में अठारह मन्त्र हैं। इस प्रकार एक मन्त्र अधिक है।

२. यजुर्वेद में **'हिरणमयेन पात्रेण'** इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में—**'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओ३म् खं ब्रह्म'**—पाठ है, परन्तु ईशोपनिषद् में **'तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये'** पाठ है।

३. **पूषन्नेकर्षे यम इति**—यह मन्त्र यजुर्वेद में है ही नहीं, परन्तु ईशोपनिषद् में है।

४. यजुर्वेद में **'वायुरनिलम्'**—इत्यादि मन्त्र में **'क्लिबे स्मर'**—यह पाठ है, परन्तु ईशोपनिषद् में यह पाठ बिल्कुल नहीं है, इसके स्थान पर **'कृतꣳ स्मर'** पाठ है और 'क्रतो स्मर' भी दो बार दिया है।

५. **ओ३म् खं ब्रह्म**—यजुर्वेद में है, परन्तु ईशोपनिषद् में बिल्कुल नहीं है।[1]

इसका नाम अन्तर है। स्वामी दयानन्दजी की भाँति और ग्रन्थों में भी पाठभेद विद्यमान हैं। उपर्युक्त यजुर्वेद और ईशोपनिषद् के तो अर्थ में भी अन्तर है। अब हम आपको स्वामीजी के प्रकार का ही व्यासजी का प्रमाण देते हैं। देखिए, महाभारत आदिपर्व अध्याय १०४ श्लोक ६ में नियोग का वर्णन करते हुए लिखा है—

पाणिग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्।

---

१. इनके अतिरिक्त भी अन्य भेद हैं। क्रम में भी अन्तर है, मन्त्र आगे पीछे हैं; ध्यानपूर्वक देखने से पाठकों को स्वयं पता चल जाएगा। —सम्पादक

परन्तु वेद में **'हस्तग्राभस्य दधिषोस्तवेदम्'** (अथर्व० १८।३।२) यह पाठ मिलता है। इन दोनों में पाठभेद तो है। महाभारत में व्यासजी ने **'पाणिग्राहस्य'** लिखा है और वेद में **'हस्तग्राभस्य'** है, परन्तु दोनों का अर्थ एक ही है। इससे व्यासजी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता, क्योंकि व्यासजी ने वेद का भाव लेकर उसे अपने शब्दों में लिख दिया है। इसी प्रकार स्वामीजी ने भी **'साध्याः'** के स्थान पर **'मनुष्याः'** लिख दिया है, परन्तु अर्थ दोनों का एक ही है।

स्वामीजी का काम झूठा मन्त्र बनाकर लोगों को धोखा देना नहीं, प्रत्युत यह काम तो पुराणों ने रजिस्टर्ड करवा रक्खा है, क्योंकि पुराणों में कई स्थानों में वेद के नाम से ऐसे मन्त्र दिये गये हैं, जिनका वेद में चिह्न भी नहीं है। उदाहरण के रूप में ब्रह्मवैवर्तपुराण ख० ४, अ० २७, श्लो० ८ में लिखा है–

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽ यातयामः सबीजकः।
ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नम इति॥

फिर इसी पुराण में ४।७८।३७-३८ में लिखा है–

ओं सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहेति॥३७॥
अयं मन्त्रो महागूढः सर्वेषां कल्पपादपः।
सामवेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः॥३८॥

ये दोनों मन्त्र सामवेद के नाम से ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखे गये हैं। कोई पौराणिक पण्डित इन दोनों मन्त्रों को सामवेद में से निकालकर दिखलाए। इसलिए हमने बताया कि झूठे वेदमन्त्र बनाकर लोगों को धोखा देना पुराणों का काम है, स्वामीजी का नहीं।

रहा यह प्रश्न कि "यह मन्त्र 'सत्यार्थप्रकाश' के ग्यारह संस्करणों तक यजुर्वेद का ही लिखा जाता रहा, परन्तु बारहवें संस्करण में यजुर्वेद और शतपथब्राह्मण का लिखा गया।" इसका उत्तर यह है कि यदि इस सारे पाठ को यजुर्वेद का लिखा जाए तो भी कोई दोष नहीं आता, क्योंकि स्वामीजी ने यह सब यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का भाव लेकर लिखा है और इस अध्याय में इस भाव के मन्त्र विद्यमान हैं, परन्तु आर्यसमाज का सचाई से प्रेम है। जब आर्यसमाज को पता लगा कि वाक्य संख्या २ शब्दशः शतपथ में है तो कोष्ठक में ब्राह्मण का नाम भी लिख दिया गया। इससे आर्यसमाज पर कोई आक्षेप नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि यदि शतपथ के पाठ को यजुर्वेद का पाठ लिखा भी गया तो भी सनातनधर्म तो आपत्ति नहीं कर सकता, क्योंकि सनातनधर्म ब्राह्मणग्रन्थों को भी वेद ही मानता है। इस प्रकार सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी का जो लेख है, वह किसी प्रकार आपत्तियोग्य नहीं है।

पोपजी–भागवत के नाम से स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि हिरण्याक्ष पृथिवी को चटाई की भाँति लपेटकर सिर के नीचे रखकर सो गया।

तोपजी–स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में वराह की कथा लिखकर दो आक्षेप किये हैं–एक तो यह कि जब पृथिवी गोल है तो उसे चटाई की भाँति लपेटना लिखना भूगोलविद्या से शत्रुता करना है, दूसरा यह कि जब पृथिवी को सिरहाने या दाँत पर रख लिया तो सोये किसपर और लड़े किसपर? इन दोनों बातों से स्वामीजी ने असम्भव होने की शंका की है। इन दोनों बातों में से दूसरी बात का मामला तो भागवत में विद्यमान है। भागवत तृतीय स्कन्ध अध्याय १७ से १९ के अन्त तक पढ़ जाएँ। इसमें लिखा है कि दिति

के कश्यप से दो पुत्र हुए—हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु। इनमें से हिरण्याक्ष सम्पूर्ण विश्व को जीतता हुआ समुद्र में चला गया और वरुण के घर पहुँचा। वहाँ वरुण से कहा—"मुझे युद्ध प्रदान करो।" वरुण ने कहा—"मैंने लड़ाई करना छोड़ रक्खा है। तुम विष्णु से युद्ध करो। वे तुम्हारे साथ लड़कर तुम्हें प्रसन्न करेंगे।" हिरण्याक्ष यह सुनकर और नारद से विष्णु का पता पूछकर पाताल को चला गया। वहाँ उसने देखा कि विष्णु भगवान् वराह का रूप धारण किये पृथिवी को अपने दाँत की नोक पर रक्खे हुए आ रहे हैं। तब हिरण्याक्ष ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। उस समय वराह भगवान् ने देखा कि दाँत पर रक्खी हुई पृथिवी भयभीत हो रही है। तब वराह ने पृथिवी को एक ओर रखकर हिरण्याक्ष से युद्ध करना आरम्भ किया, यहाँ तक कि हिरण्याक्ष को वराह ने मार दिया।

अब इस कथा को पढ़कर विचार करें कि स्वामीजी की दूसरी शंका बिल्कुल ठीक है कि जब वराह ने पृथिवी को दाँत की नोक पर रक्खा हुआ था तो वराह और हिरण्याक्ष खड़े किसपर थे, और दौड़ किसपर रहे थे और जब पृथिवी को एक ओर रख दिया तो युद्ध किसपर लड़ा?

अब रह गयी पहली शंका—पृथिवी को लपेटने की, तो इसके बारे में पहली बात तो यह है कि स्वामीजी ने यह शंका केवल भागवत पर ही नहीं अपितु स्वामीजी ने लिखा है कि—"पृथिवी को तो वराहजी ने मुख में रक्खा, फिर दोनों किसपर खड़े होकर लड़े? वहाँ तो और कोई ठहरने का स्थान न था; किन्तु **भागवत आदि पुराण बनानेवाले** पोपजी की छाती पर खड़े होकर लड़े होंगे।'' इस लेख से सिद्ध है कि स्वामीजी की दृष्टि में भागवत ही नहीं था अपितु भागवत आदि सारे पुराणों को दृष्टि में रखकर स्वामीजी ने यह कथा लिखी है, और यह निश्चित बात है कि पुराणों में कोई कथा एक प्रकार से नहीं आती, अपितु एक ही घटना विभिन्न पुराणों में परिवर्तन के साथ और कभी बिल्कुल ही भिन्न प्रकार से लिखी हुई पाई जाती है। उदाहरण के रूप में भागवत दशम स्कन्ध, अध्याय चार, श्लोक आठ में तो लिखा है कि कंस ने कृष्ण के बदले में आई हुई नन्द की कन्या को पत्थर पर पटककर जान से मार दिया और ब्रह्मवैवर्तपुराण खण्ड चार अध्याय सात श्लोक १२६ तक लिखा है कि कंस ने वसुदेव के कहने से लड़की को छोड़ दिया। इसका नाम एकानंशा रक्खा गया और इस कन्या का विवाह वसुदेव ने दुर्वासा ऋषि के साथ कर दिया। शिवपुराण रुद्रसंहिता दो, कुमारखण्ड चार, अध्याय तेरह, श्लोक बीस में लिखा है कि गणेशजी को पार्वती ने अपने मैल से बनाया और अध्याय सोलह में गणेश की मृत्यु महादेवजी के त्रिशूल से हुई, अर्थात् महादेव ने त्रिशूल से गणेशजी का सिर काट दिया। इसी बात को ब्रह्मवैवर्तपुराण गणेशखण्ड, अध्याय आठ तथा नौ में लिखा है कि महादेव और पार्वती दोनों सुन्दर पंलग पर गर्भाधान-क्रिया कर रहे थे कि जब वीर्य के योनि में प्रविष्ट होने का समय आया तो विष्णुजी ब्राह्मण का रूप धारण करके इसी घर में आ गये। उसकी आवाज़ सुनकर महादेवजी उठे तो उनका वीर्य पार्वती की योनि में नहीं गिरा अपितु पलँग पर गिर पड़ा। पार्वती भी महीन वस्त्र पहनकर महादेव के साथ घर के द्वार पर इस ब्राह्मण को देखने आई। इतने में कृष्णजी गणेश का रूप धारण करके पलँग पर पड़े हुए उस शिव के वीर्य में लतपत होकर पड़ रहे। जब पार्वती वापस आई तो उसने बालक को पलंग पर देखा और प्रेम से स्तन दिया और महादेव ने बालक को गोद में उठा लिया। यह तो हुई गणेश की उत्पत्ति। आगे अध्याय बारह में लिखा है कि इस बालक को देखने के

लिए शनिश्चर देवता आया। शनिश्चर के देखनेमात्र से गणेश का मस्तक कटकर गिर पड़ा।

अब देखिए, पुराणों में एक ही घटना को कितने अन्तर के साथ लिखा गया है। इसी प्रकार से वराह भगवान् की कथा को भी यदि विभिन्न पुराणों में भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखा गया तो क्या आश्चर्य है!

रह गई पृथिवी को लपेटने की बात। पुराणों में इसका भी वर्णन विद्यमान है। देखिए, गरुड़ पुराण, ब्रह्मकाण्ड, उत्तरखण्ड अध्याय २६, श्लोक २० में वर्णन है कि–

चतुर्मुखं प्रीणयित्वैव भक्त्या ह्यवध्यत्वं प्राप तस्मान्महात्मा।
ततो भूमिं करवद्वेष्टयित्वा निन्ये तदा दैत्यवर्यो महात्मा॥२०॥

इस पाठ को ध्यानपूर्वक पढ़ें तो पता लगेगा कि संस्कृत में 'र' और 'ट' में बहुत साधारण-सा अन्तर होता है। इस पाठ को दोनों प्रकार से पढ़ा जा सकता है–**'करवद्वेष्टयित्वा'** भी और **'कटवद्वेष्टयित्वा'** भी। हम दोनों पाठों को दृष्टि में रखकर अनुवाद कर देते हैं–

अर्थ–वह महात्मा हिरण्याक्ष अपनी भक्ति से ब्रह्मा को प्रसन्न करके उससे यह वर प्राप्त करने में सफल हो गया कि तू मरेगा नहीं। तब वह महात्मा दैत्य हिरण्याक्ष पृथिवी को हाथ की भाँति या चटाई की भाँति लपेटकर ले-गया।"

प्रतीत होता है कि इस पाठ में 'कट' के स्थान पर गलती से 'कर' छप गया है, क्योंकि हाथ की भाँति लपेटना–यह लोकोक्ति संसार में प्रसिद्ध नहीं है, अपितु चटाई की भाँति लपेटने की लोकोक्ति ही ठीक है; तथापि लपेटना दोनों रूपों में ही विद्यमान है, अत: स्वामीजी का आक्षेप कि 'जब पृथिवी गोल है तो इसको लपेटना लिखना ही भूगोलविद्या से शत्रुता करना है', वज्रलेप के समान है। स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है वह पुराणों के आधार पर ठीक लिखा है, क्योंकि समालोचना करते हुए स्वामीजी की दृष्टि के समक्ष केवल भागवत ही न था, परन्तु अठारहों पुराण उनके समक्ष थे, तभी तो उन्होंने समालोचना में '**भागवत आदि** बनानेवाले पोप ही छाती पर लड़े होंगे' ऐसा लिखा है। स्वामीजी को इस लेख से संसार में धोखा देना इष्ट नहीं था, अपितु पुराणों की यथार्थता को जनता के समक्ष प्रकट करना था। परमात्मा हमारे भाइयों को सन्मार्ग दिखाएँ कि वे पुराणों की ऐसी असम्भव शिक्षा को छोड़कर वैदिक धर्म की शरण में आ जाएँ।

पोपजी–भगवान् ने प्रह्लाद के लिए गर्म खम्बे पर चींटी चढ़ा दी।

तोपजी–पौराणिक जगत् में यह बात प्राय: पाई जाती है कि पुराणों में लिखी हुई कथाओं के अतिरिक्त कुछ हस्तियों [महापुरुषों] के सम्बन्ध में ऐसी कथाएँ प्राय: प्रसिद्ध हैं जिनका मूलग्रन्थों में नाममात्र भी वर्णन नहीं है, परन्तु पीछे लिखे हुए ग्रन्थों में बहुत-सी कथाओं को लिख भी दिया गया है। पौराणिक जगत् इन सर्वत्र प्रचलित कथाओं को बड़ी रुचि के साथ सुनता भी है और ठीक भी मानता है तथा पुराणों में लिखी हुई और लोक में प्रचलित कथाओं में कोई भेद भी नहीं करता। उदाहरण के रूप में सबसे पहले आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित कथाओं को लीजिए। यह बात मानी हुई है कि श्री रामचन्द्रजी के जीवन की घटनाओं के सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ वाल्मीकि रामायण है, परन्तु राम के जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेक गाथाएँ मिलती हैं जिनका वाल्मीकि रामायण में उल्लेख भी नहीं है, परन्तु पीछे लिखी गयी पुस्तकों में उनका समावेश कर दिया गया है। जैसे सुलोचना का अपने पति मेघनाद का सिर युद्धभूमि से

लाकर उसके साथ सती होना, अङ्गद का रावण के दरबार में पैर जमाकर खड़ा होना, रावण का सीता के स्वयंवर में जाना, हनुमान् का संजीवनी बूटी लेकर लौटते हुए अयोध्या में भरत के तीर से गिर पड़ना और भरत का उसे बाण पर बैठाकर लङ्का की युद्धभूमि में राम के पास पहुँचाना, भीलनी के जूठे बेरों का खाना और वन में राम के द्वारा दशरथ का श्राद्ध करने पर सीता को ऋषियों के मध्य में दशरथ का दिखाई देना और सीता का उन्हें देखकर छुप जाना, राम के वनवास के पश्चात् भरत का गोमूत्र में जौ का दलिया पकाकर खाना [भागवत स्कन्ध ९, अध्याय १०, श्लोक ३४] आदि ऐसी कथाएँ हैं जिनका वाल्मीकि रामायण में उल्लेख तक नहीं है, परन्तु इनमें से कई का वर्णन पीछे लिखी हुई पुस्तकों—गरुड़पुराण, भागवत और तुलसीकृत रामायण आदि में आता है और पौराणिक लोग उपर्युक्त कथाओं पर उतना ही विश्वास रखते हैं जितना वाल्मीकि रामायण पर।

महाभारत के सम्बन्ध में भी सैकड़ों गाथाएँ प्रचलित हैं, जो महाभारत में नहीं हैं, परन्तु बाद में लिखे ग्रन्थों में कुछ घटनाएँ लिख दी गयी हैं, जैसे—अम्बिका, अम्बालिका और दासी का व्यास के सामने से निकल जाना और उनके गर्भ ठहर जाना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सभाभवन को देखते हुए दुर्योधन को द्रौपदी का ताना देना कि अन्धों के अन्धे ही पैदा होते हैं, युद्ध में मरणासन्न कर्ण के पास अर्जुन और कृष्ण का ब्राह्मण का रूप धारण करके भिक्षा माँगने के लिए जाना—आदि अनेक गाथाएँ हैं जिनका महाभारत में कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु उपर्युक्त कथाएँ महाभारत के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनमें से कुछ को बाद में लिखे हुए भाषा-ग्रन्थों में लिख भी दिया गया है।

इसी प्रकार भक्त प्रह्लाद के सम्बन्ध में उन घटनाओं के अतिरिक्त, जो भागवत में विद्यमान हैं, बहुत-सी कथाएँ पौराणिक जगत् में प्रसिद्ध हैं। भागवत में प्रह्लाद के सम्बन्ध में जो कथा आती है, वह इस प्रकार है—

"हिरण्यकश्यपु के चार पुत्र थे। इनमें सबसे छोटा प्रह्लाद था। वह बड़ा ही धर्मात्मा और कृष्ण का बड़ा भक्त था, क्योंकि राक्षसों ने शुक्राचार्यजी को गुरु बनाया हुआ था और गुरु के दो पुत्र शण्ड और अमर्क हिरण्यकश्यपु के भवन के पास ही रहते थे, इसलिए हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को शिक्षा-प्राप्ति के लिए उनके पास भेज दिया। प्रह्लाद ने यद्यपि अन्य बालकों के साथ राजनीति की शिक्षा प्राप्त की, परन्तु उसे अच्छा नहीं माना। एक दिन हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद को अपनी गोद में बिठाकर पूछा—'तुझे क्या अच्छा लगता है?' प्रह्लाद ने उत्तर दिया—'मुझे यह अच्छा लगता है कि मैं वन में जाकर श्रीहरि का भजन करूँ।' यह सुनकर हिरण्यकश्यपु ने शण्ड और अमर्क को ध्यान दिलाया कि इस बालक पर विशेष ध्यान रक्खो, कहीं लोग इसकी बुद्धि को भ्रष्ट न कर दें। घर ले-जाकर उन्होंने प्रह्लाद से पूछा—'हे बालक! यह बताओ कि तुम्हारी बुद्धि में यह क्या फेर पड़ गया? तुम्हें किसी ने बहका तो नहीं दिया?' प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि 'परमात्मा ही मेरी बुद्धि को फेर रहे हैं।' यह सुनकर गुरु ने बहुत धमकाया और शास्त्र पढ़ाने आरम्भ किये और प्रह्लाद को स्नान आदि करवाकर पुनः हिरण्यकश्यपु के पास ले-गये। वह पुत्र को देखकर अति प्रसन्न हुआ और प्रह्लाद से कहा कि अपना पढ़ा हुआ कुछ हमें भी सुनाओ। प्रह्लाद ने कहा—'पिताजी! मैं विष्णु की भक्ति को सर्वोत्तम समझता हूँ।' यह सुनकर हिरण्यकश्यपु उन गुरुपुत्रों पर क्रुद्ध हुआ कि तुमने मेरे पुत्र को यह क्या सिखा दिया? तब गुरुपुत्रों ने कहा कि यह हमने नहीं सिखाया। तब तो हिरण्यकश्यपु ने क्रुद्ध होकर प्रह्लाद को भूमि

पर पटक दिया और राक्षसों को आज्ञा दी कि इसको मार डालो, क्योंकि यह लड़का मेरे भाई हिरण्याक्ष को मारनेवाले विष्णु से प्रेम करता है। यह सुनकर राक्षसों ने प्रह्लाद पर एकदम अपने हथियारों से आक्रमण कर दिया, परन्तु इनके हथियारों से प्रह्लाद को कोई हानि नहीं पहुँची। यह देखकर हिरण्कश्यपु अत्यन्त दुःखी हुआ और उसने प्रह्लाद को मारने के अनेक उपाय किये। हाथियों के पैरों से कुचलवाना, बड़े-बड़े साँपों से डसवाना, पुरश्चरण करवाकर मरवाना, पर्वत की चोटी आदि से नीचे गिरवाना, भाँति-भाँति की चालाकियों से मरवाना, अँधेरी कोठड़ियों में बन्द कर देना, विष दिलवाना, भोजन न देना, सर्दी में रखना, आँधी में बैठाना, अग्नि में डालना, जल में डुबोना और उसपर पत्थर फेंकना आदि अनेक बार किये हुए उपायों से जब वह अपने पुत्र को न मार सका और कोई अन्य उपाय उसे न सूझा तो गहन चिन्ता में पड़ गया। यह देखकर शण्ड और अमर्क ने कहा कि आप बालक की बातों का विचार न करें। शुक्राचार्यजी तप करने गये हैं। उनके आने तक आप ठहरें, सम्भव है इसकी बुद्धि सुधर जाए। यह सुनकर हिरण्यकश्यपु ने कहा–'ठीक है। हे गुरुपुत्रो! आप इसे गृहस्थ की शिक्षा दीजिए।' तब वे प्रह्लाद को शिक्षा देने लगे। एक दिन गुरु-पुत्र तो गृहकार्य में लग गये और लड़कों को खेलने का अवकाश मिल गया। तब प्रह्लाद ने सब लड़कों को एकत्र करके उपदेश करना आरम्भ किया और उन्हें परमात्मा की भक्ति करना सिखाया। प्रह्लाद के उपदेश ने बालकों को प्रभावित किया, अतः जो कुछ गुरुपुत्रों ने सिखाया था, वह सब भुला दिया। यह देखकर गुरुपुत्र डर गये और हिरण्यकश्यपु के पास जाकर उन्हें सारी बात बता दी। यह सुनकर हिरण्यकश्यपु क्रोध से थर-थर काँपने लगा और क्रुद्ध होकर प्रह्लाद से बोला–'हे मूर्ख! तू मेरे आदेश का पालन नहीं करता, अतः आज मैं तेरा वध करूँगा। देखता हूँ तुझे कौन बचाता है और बता कि मेरे बिना जो तूने दूसरा जगत् का ईश्वर माना है वह कहाँ है?' प्रह्लाद ने कहा–'वह सर्वत्र है, वही मेरी रक्षा करेगा।' हिरण्यकश्यपु ने कहा–'तो फिर इस खम्भे में भी है क्या?' इसके पश्चात् प्रह्लादजी ने उस खम्भे की ओर देखकर और उसे नमस्कार करके कहा–'हाँ, मुझे इसमें भी दीखता है।' जब हिरण्यकश्यपु को कुछ दिखाई नहीं दिया तब वह कहने लगा–'अरे! तू अब भी उल्टी बातें कर रहा है। इसलिए मैं तेरे सिर को अभी धड़ से अलग कर देता हूँ। जो हरि तुझे प्रिय लगता है, वह आज तेरी रक्षा करे।' यह कहकर हिरण्यकश्यपु हाथ में तलवार लेकर तख्त (मञ्च) से नीचे उतरा और प्रह्लाद की ओर वार करते हुए उस खम्भे को काटने लगा। इतनें में ही उस खम्भे से एक भयानक ध्वनि निकली, जिससे सब डर गये। इतने में श्रीहरि अपने भक्त की बात को सच करने के लिए उस खम्भे में से नृसिंहरूप धारण करके प्रकट हुए। हिरण्यकश्यपु अपनी गदा लेकर उससे लड़ने लगा, परन्तु नृसिंह भगवान् ने उसे उठाकर सायंकाल, देहली के ऊपर जाँघों पर रखकर चीर दिया, और भी सैकड़ों राक्षसों को मार डाला और नृसिंह भगवान् तख्त पर बैठ गये। तब सब देवताओं ने नृसिंहजी की स्तुति की। फिर प्रह्लाद ने भी उनकी स्तुति की। जब भगवान् ने कहा–'हम तुझपर प्रसन्न हैं, वर माँगो।' प्रह्लाद ने अपने पिता की सद्गति माँगी। भगवान् ने कहा कि तेरा पिता अपने इक्कीस पूर्वजोंसहित पवित्र हो गया है।"

यह कथा भागवत के सातवें स्कन्ध में अध्याय ४ के श्लोक ३० से लेकर अध्याय १० के श्लोक १८ तक है। अब यदि आप इस कथा को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो पता चलेगा कि इसमें प्रह्लाद के सम्बन्ध में पौराणिक जगत् में प्रसिद्ध कई घटनाएँ नहीं हैं,

यथा—बिल्ली के बच्चों को घड़े-समेत भट्टी में रखकर आग लगानेवाली और याद आने पर राम-राम करनेवाली और प्रह्लाद को जीवित बच्चे निकलते हुए दिखाकर राम की भक्ति का उपदेश करनेवाली कुम्हारी का भागवत में कोई वर्णन नहीं है; और प्रह्लाद को गोद में लेकर बैठनेवाली कंस की बहिन होलिका की, जिसके नाम से पौराणिक लोग होली मनाते हैं, और होलिका को जलाकर प्रसन्न होते हैं, भागवत में चर्चा भी नहीं है; और भागवत में तो लोहे के खम्भे को तपा और लाल कर उसके साथ प्रह्लाद को बाँधने के प्रस्ताव का भी कोई वर्णन नहीं है; और स्वामी दयानन्दजी महाराज ने जो प्रह्लाद की पट्टी पर अध्यापकों से राम-राम लिखवाने की प्रह्लाद की माँग लिखी है, वह भी भागवत में नहीं है; **खम्भे का तपाना** और उसपर भगवान् का चींटियों को चलाने का वर्णन भी भागवत में नहीं है; और स्वामीजी ने लिखा है कि नृसिंह प्रह्लाद को चाटने लगा यह भी भागवत में नहीं है; और स्वामीजी ने जो पर्वत से गिरना, कुएँ में डालना और खम्भे से नृसिंह का प्रकट होना और प्रह्लाद के पिता का पेट फाड़ डालना और नृसिंह का प्रह्लाद को वर माँगने के लिए कहना, प्रह्लाद का पिता की सद्गति माँगना और नृसिंह का यह कहना कि तेरा पिता अपने इक्कीस पूर्वजोंसहित सद्गति को गया—ये बातें भागवत में है।

यदि कोई व्यक्ति यह आक्षेप करे कि स्वामीजी ने भागवत को पढ़ा ही नहीं था तो यह कहना बिल्कुल ग़लत है, क्योंकि स्वामीजी ने जहाँ चार बातें पौराणिक जगत् में प्रह्लाद के सम्बन्ध में प्रसिद्ध गाथाओं में वहाँ दी हैं, तो सात बातें वे दी हैं जो भागवत में विद्यमान हैं, और स्वामीजी ने जो प्रचलित गाथाओं और भागवत में लिखित बातों का असम्भव दोष दिखाकर खण्डन किया है, उसका पौराणिक पण्डित कोई भी समाधान नहीं कर सके। इक्कीस पुरुषों की सद्गति पर स्वामीजी ने जो आक्षेप किया है इसपर तो पौराणिक पण्डित चौकड़ी ही भूल गये और ऋषिकुमार रामस्वरूपजी शर्मा को भी भागवत की भाषा-टीका करते हुए भागवत स्कन्ध ७, अध्याय १०, श्लोक १८ पर यह टिप्पणी लिखनी पड़ी—"यद्यपि हिरण्यकश्यपु के ब्रह्माजी, मरीचि और कश्यप—ये तीन ही पूर्वपुरुष थे तथापि पूर्वकल्पों में होनेवाले पितरों के अभिप्राय से यह कथन है।" अब बतलाइए, स्वामीजी के इस आक्षेप का कि "प्रह्लाद के इक्कीस पूर्वपुरुष थे ही नहीं तो इक्कीस की सद्गति का वरदान देना विडम्बना ही है।" पौराणिक पण्डित ने क्या उत्तर दिया है? यह भी कोई उत्तर है कि पूर्वकल्पों के पितरों से तात्पर्य है? क्या पूर्वकल्पों के पूर्वजों के साथ प्रह्लाद का पीढ़ी-दर-पीढ़ी का सम्बन्ध था? कदापि नहीं, क्योंकि ब्रह्मा का भी किसी के साथ पैतृक सम्बन्ध नहीं था। इसलिए यह कहना तो बिल्कुल गलत है कि स्वामीजी ने भागवत को पढ़ा ही नहीं था। हाँ, यह ठीक है कि स्वामीजी सुधारक थे। वे संसार को पौराणिक गढे से निकालकर संसार का कल्याण करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने यह आवश्यक समझा कि पुराणों के खण्डन के साथ-साथ पौराणिक जगत् में जो पौराणिक कथाओं के साथ सम्बन्ध रखनेवाली प्रचलित पौराणिक गाथाएँ हैं, उनका भी अवश्य खण्डन करना चाहिए, इसलिए उन्होंने प्रह्लाद के सम्बन्ध में प्रचलित पौराणिक घटनाओं में से चार घटनाएँ लिखकर उनका भी खण्डन कर दिया।

पौराणिक पण्डितों की चालाकी देखिए कि उन्होंने यह आक्षेप तो कर दिया कि चींटियों का चलना भागवत में नहीं है, स्वामीजी ने ग़लत लिख दिया, परन्तु स्वामीजी की तीन बातों को जो भागवत में नहीं हैं, माता के दूध की भाँति पचा गये। जैसे चींटियों का

चलना भागवत में नहीं है, वैसे ही प्रह्लाद की पट्टी पर राम-राम लिखने का आग्रह, खम्भे को अग्नि में तपाकर लाल करना और नृसिंह का प्रह्लाद को चाटना भी भागवत में नहीं लिखा है। इन तीनों बातों के सम्बन्ध में चुप रहने का कारण यह प्रतीत होता है कि प्रथम तो इन तीन बातों को न मानने से प्रह्लाद की कथा का बहुत-सा गौरव उड़ जाता है, क्योंकि यदि इन लोगों को यह पता लग जाए कि भागवत में राम नाम का चिह्न ही नहीं है और खम्भा तपाया ही नहीं गया और नृसिंह ने प्रह्लाद को चाटा ही नहीं तो लोगों की श्रद्धा इस कथा से उड़ जाएगी और दूसरा कारण यह है कि पौराणिक पण्डित अपने हृदय में यह सोचते हैं कि इन तीन बातों के सम्बन्ध में तो दूसरे स्थानों पर प्रमाण मिल सकते हैं, परन्तु चींटियों के सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिल सकता; परन्तु इनका यह विचार ग़लत है। जैसे उपर्युक्त तीनों बातों के सम्बन्ध में आपको दूसरे भाषा-ग्रन्थों में प्रमाण मिल जाते हैं, वैसे ही खम्भे पर चींटियों के चलने की गाथा भी पौराणिक जगत् में बड़ी प्रसिद्ध है और इसके सम्बन्ध में आपके भाषा-ग्रन्थों में प्रमाण विद्यमान हैं और इस पौराणिक गाथा बनानेवालों ने भी आधार भागवत से ही लिया है। देखिए, जब प्रह्लाद ने कहा कि हरि सर्वत्र है, तो हिरण्यकश्यपु ने पूछा—"क्या इस खम्भे में भी है?" प्रह्लाद ने खम्भे की ओर देखकर उत्तर दिया—"हाँ, मुझे दिखाई देता है।" इसपर पौराणिकों ने कल्पना की है कि इस समय प्रह्लाद को भगवान् चींटियों के रूप में दिखाई दिया।

१. सनातनधर्म के प्रसिद्ध नाटककार ला० किशनचन्दजी 'ज़ेबा' ने एक पुस्तक 'बाल भक्त प्रह्लाद' लिखी है। इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर खम्भे का चित्र देकर इसपर कीड़ी चलती हुई भी दिखाई गयी हैं और पुस्तक के अन्त में वही चित्र देकर उसके नीचे लिखा हुआ है—"प्रह्लाद और जलता हुआ लौहस्तम्भ।" हैं, हैं, यह क्या देख रहा हूँ कि एक छोटी-सी कीड़ी उस गर्म और जला देनेवाले स्तम्भ पर चलती है और नहीं जलती"—दृश्य ४, अङ्क ३। फिर पुस्तक में यह विषय अङ्क तीन, दृश्य ४, पृष्ठ १४२ पर इस प्रकार लिखा है—प्रह्लाद—(स्तम्भ पर एक कीड़ी को देखकर) हैं, मैं यह क्या देख रहा हूँ एक छोटी-सी कीड़ी इस गर्म और जला देनेवाले स्तम्भ पर चलती है और नहीं जलती। आह! ईश्वर की लीला अपार है! सचमुच यह ईश्वरीय चमत्कार है! यह निश्चय ही मेरे चलायमान होनेवाले विश्वास को बचाने आयी है।

नहीं कीड़ी को भी खटका है जब इस आग से जाँ का।
दया से उसकी हो सकता है मेरा बाल कब बाँका॥

—प्रकाशक, नेशनल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली, भाषा, तीसरी बार

२. बम्बई से एक गुजराती-पत्र गुजरातीभाषा में ही निकलता है, इसके ३ अक्तूबर १९२३ के साप्ताहिक अङ्क, पृष्ठ १४८५ पर प्रह्लाद की कथा देते हुए यूँ लिखा है—"प्रह्लाद के लिए खम्भे में कीड़ियों में ईश्वर का दर्शन" प्रह्लाद के लिए खम्भे पर कीड़ियाँ छोड़ी। इनको देखकर प्रह्लाद की ईश्वर में पूरी श्रद्धा हो गयी। कीड़ियाँ उस खम्भे पर चलती रहीं। प्रह्लाद ने अपने मन में कहा—'परमात्मा ने खम्भे पर कीड़ियाँ चलाई हैं।' इस बात को देखकर प्रह्लाद को साहस हो गया कि जिस ईश्वर ने खम्भे पर कीड़ियाँ चलाई हैं, वह खम्भे में भी विद्यमान है।

३. एक ट्रैक्ट लाहौर से प्रकाशित हुआ है जिसका नाम है—सिलसिला धर्मप्रचार ट्रैक्ट संख्या २"। "निराकार अर्थात् क्या ईश्वर निराकार है, साकार नहीं" जिसे स्वामी

बलिनाथजी योगेश्वर टल्ला, गुरुगोरखनाथ हाल निलय, जिला जेहलम ने लिखा और जिसे भाई ताराचन्द के आदेशानुसार छब्बर बुकसेलर, लाहौरी गेट, लाहौर ने जनसाधारण के लिए प्रकाशित कराया। प्रथम मघर, संवत् १९८२ विक्रमी, अमृतसर प्रेस लाहौर में ला० दुर्गादास के प्रबन्ध में छपा। इस ट्रैक्ट के पृष्ठ ३ पर यूँ लिखा है–

"कभी तू नर-नारायण होकर वन में योगाभ्यास करता है और कभी चींटी का रूप रखकर आग के समान लाल लोहे के खम्भे पर चलता हुआ दिखाई देता है और नृसिंह [सिर शेर का और शरीर मनुष्य का] रूप रखकर हिरण्यकश्यपु को मार रहा है।"

अब बतलाइए, उपर्युक्त लोगों ने खम्भे पर कीड़ियों का चलना लिखा है, क्या इनको भी स्वामीजी सिखा गये? यदि सनातनधर्म में यह गाथा प्रसिद्ध न होती तो ये लोग कैसे लिखते? अतः यह सिद्ध है कि पौराणिक जगत् में यह गाथा प्रसिद्ध और लोगों के लिए रुचिपूर्ण है। जहाँ-जहाँ भी लोहे के खम्भे को गर्म करके इसके साथ प्रह्लाद को लगाने का वर्णन है, वहाँ-वहाँ कीड़ियों का भी अवश्य वर्णन है, इसलिए स्वामीजी ने जो कुछ लिखा है, वह सत्य और यथार्थ है।

अब इस विषय पर हम एक अन्य दृष्टिकोण से विचार करना चाहते हैं कि क्या कीड़ियों की इस गाथा को लिखने से स्वामीजी का कोई विशेष उद्देश्य सिद्ध होता था? कदापि नहीं, क्योंकि स्वामीजी ने इस सारी कथा में असम्भव दोष दिखाया है। इसे दिखाने के लिए पर्वत से गिराना, आग से तपे हुए लाल खम्भे से लगाना, नृसिंह का खम्भे से निकलना आदि अनेक घटनाएँ विद्यमान है, जिनसे सनातनधर्म की असम्भव गाथाओं और सिद्धान्तों का अच्छी प्रकार खण्डन हो सकता है, अतः स्वामीजी ने इस घटना को किसी स्वार्थ से नहीं, अपितु असत्य के खण्डन के लिए ही लिखा है।

एक और भी प्रश्न है कि सनातनधर्म के पण्डितों को इस बात पर आपत्ति क्यों है? क्या सनातनधर्म में इस प्रकार की बातें असम्भव हैं? कदापि नहीं। जिस सनातनधर्म में प्रह्लाद का जलती अग्नि से जीवित निकलना, विष पीकर न मरना, साँपों के काटने से न मरना, पर्वत से गिराने पर न मरना और नृसिंह का खम्भा चीरकर निकलना सम्भव हो सकता है, उस सनातनधर्म में आग से लाल किये लोहे के खम्भे पर चींटियों का चलना असम्भव कैसे हो सकता है? और जब सनातनधर्म के ग्रन्थों में इसके प्रमाण भी विद्यमान हैं तो फिर आपत्ति करने का अवकाश ही नहीं रहता। फिर बात क्या है? वास्तविक बात यह है कि अब सनातनधर्म के उपदेशक शास्त्रार्थ की युद्धभूमि से तो पीठ दिखा चुके हैं और किसी भी निश्चित किये हुए विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार नहीं हैं; बस केवल इधर-उधर की बातों में ही अपनी जान बचाते फिरते हैं। ये पहले तो किसी बात को स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु जब आर्यसमाज इनपर टीका-टिप्पणी करने लगता है तो फिर उलटा आर्यसमाज ही से पूछने लगते हैं कि बताओ, यह हमारे ग्रन्थों में कहाँ लिखा है?

१. देखिए, कल तक सनातनधर्म के पण्डित मानते थे कि राम ने भीलनी के जूठे बेर खाये और झूम-झूमकर यह शैर पढ़ा करते थे–

भिलनी के बेर सुदामा के तण्डुल रुचि-रुचि भोग लगाये।
दुर्योधन के मेवा त्यागे, साग विदुर घर खाये।।

जब आर्यसमाज ने इससे अछूतोद्धार में सहायता लेनी आरम्भ की तो उलटा

आर्यसमाज से ही पूछने लगे कि बताओ, हमारे किस ग्रन्थ में लिखा है कि राम ने भीलनी के झूठे बेर खाये थे?

२. सारे सनातनधर्मी लोग भङ्ग को शिवजी की बूटी कह-कहकर प्यार करते थे और जङ्गम लोग तो अब भी शिवजी के भंग रगड़ने का गाना गाते हैं-

भङ्ग गङ्ग दो बहिन हैं रहती शिव के सङ्ग।
तरनतारनी गङ्ग है तो लड्डू खानी भङ्ग॥

जब आर्यसमाज ने आक्षेप किया तो हमसे ही पूछने लगे कि बताओ, 'शिवाजी ने भंग पी' यह हमारे किस ग्रन्थ में लिखा है?

३. राजा कर्ण का परलोक से पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर संसार में आना और श्राद्ध करना- यह कथा पौराणिकों में खूब प्रचलित थी और इसी घटना के आधार पर श्राद्धों को अब भी पौराणिक लोग 'कर्णागत' कहते हैं, परन्तु जब आर्यसमाज ने धज्जियाँ उड़ाई तो इस कथा को भी अस्वीकार कर दिया और हमसे ही पूछने लगे कि कर्ण की यह गाथा हमारे किस ग्रन्थ में लिखी है?

४. इसी प्रकार यह लोहे के लाल खम्भे पर कीड़ियों के चलने की कथा है। सनातनधर्मी इसे मानते हैं। इनकी भाषा की पुस्तकों में यह विद्यमान है और सारे नाटकों और सिनेमाओं में यह दृश्य दिखाया भी जाता है, परन्तु जब स्वामी दयानन्दजी ने भागवत की प्रह्लाद की कथा के साथ इस पाखण्ड का भी खण्डन कर दिया तो अब पौराणिक लोग इसे मानने से इन्कार करने लगे हैं और कहते हैं कि यह घटना हमारी पुस्तकों में दिखाओ।

वस्तुतः हम लोग इस बात से अत्यन्त प्रसन्न हैं कि ज्यूँ-ज्यूँ आर्यसमाज पौराणिक पाखण्ड का खण्डन करता है, त्यूँ-त्यूँ पौराणिक लोग पाखण्ड को तिलाञ्जलि दे रहे हैं। जिस-जिस बात से सर्वथा इन्कार करना सम्भव हो सकता है, उससे ते सर्वथा मुकर जाते हैं और जिससे मुकरना कठिन हो जाता है, उसे अलङ्कार बनाने का प्रयत्न करते हैं। बस, हमारा यह उद्देश्य था कि लोग पाखण्ड को छोड़ दें और स्वामीजी ने अपना सारा जीवन इसी में समाप्त कर दिया। उनके लेखों में जो खण्डन है वह भी पाखण्ड को छुड़वाने के लिए ही है। स्वामीजी ने जिन-जिन बातों का खण्डन किया है, यदि सनातनधर्मी उन सब बातों को छोड़कर पृथक् हो जाएँ तो स्वामीजी का खण्डन भी उसी के साथ समाप्त हो जाता है। परमात्मा करे कि पौराणिक लोग स्वामीजी के खण्डन से शिक्षा ग्रहण करके इन अठारह पुराणों से भी स्पष्ट इन्कार कर दें तो स्वामीजी का उद्देश्य पूर्ण हो जाए और हमारा खण्डन करने का कार्य भी उसी के साथ समाप्त हो जाए।

पोपजी-अक्रूर वायु के समान चलनेवाले घोड़ों के रथ पर चढ़कर प्रातः से सायं तक मथुरा से गोकुल तक पहुँचा, जबकि अन्तर केवल चार कोस का था, आदि, परन्तु भागवत में उपर्युक्त लेख सर्वथा नहीं है।

तोपजी-आपने भागवत को पढ़कर यह बात लिखी है अथवा ऐसे ही लिख मारा कि भागवत में उपर्युक्त घटना कदापि नहीं है? देखिए, कंस की आज्ञा से अक्रूरजी कृष्ण और बलराम को लाने के लिए मथुरा से प्रातः चले और सायं सूर्यास्त पर गोकुल में पहुँचे और वे इन दोनों को साथ लेकर दूसरे दिन मथुरा आये। इन बातों का वर्णन भावगत दशम स्कन्ध अध्याय ३८-३९ में विस्तार से है। स्वामीजी ने संक्षेप से दोनों अध्यायों में से दो वाक्य सार-रूप से लिखकर आक्षेप किया है कि जब मथुरा से गोकुल केवल एक योजन

अर्थात् चार कोस था और रथ वायु के समान वेगवाला था तो सारे दिन वह रथ कहाँ रहा और इतने विलम्ब से क्यों पहुँचा? अब हम भागवत से प्रमाण लिख देते हैं—

रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम्। —भा० १०।३९।३८

अर्थ—हे राजन्! इधर अक्रूरजी बलराम और कृष्णसहित वायु के समान वेगवाले रथ के द्वारा पापों का नाश करनेवाली यमुना के तट पर पहुँचे।

इस श्लोक से रथ की तीव्रता दिखाना अभिप्रेत है।

रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप। —भा० १०।३८।२४

अर्थ—रथ में बैठकर गोकुल में पहुँचे। इसी समय सूर्य भी अस्त हो गया।

इस श्लोक से सूर्यास्त के समय पहुँचे—यह दिखाना उद्देश्य है।

उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम्॥ —भा० १०।३८।१

अर्थ—रात्रि में मथुरा में विश्राम करके प्रातः रथ पर बैठकर नन्द के गोकुल को चल पड़े।

इससे प्रातः प्रस्थित हुए थे—यह बताना अभिप्रेत है।

अब बताइए कि स्वामीजी ने ग़लत क्या लिखा है? **'रथेन वायुवेगेन'** यह शब्द तो शब्दशः ३८वें श्लोक में विद्यमान है और **'जगाम गोकुलं प्रति'** के स्थान में **'रथेन गोकुलं प्राप्तः'** और **'प्रययौ नन्दगोकुलम्'** विद्यमान है। इन दोनों वाक्यों में **'जगाम'** के स्थान में **'प्राप्तः'** और **'प्रययौ'** पड़े हुए हैं, जिनके एक ही अर्थ हैं।

स्वामीजी का तात्पर्य हूबहू पुस्तक में होने पर भी उससे इन्कार करना जनता को धोखा देना नहीं तो और क्या है?

पोपजी—सत्यार्थप्रकाश के चौथे समुल्लास पृष्ठ ९० पर दो प्रमाण आपस्तम्बसूत्र के लिखे हैं, परन्तु ये दोनों सूत्र आपस्तम्ब के नहीं।

तोपजी—क्या झूठ बोलने का ठेका आपने ही ले-रक्खा है? पुस्तक को उठाकर भी देखा था या यूँही किसी से सुन-सुनाकर लिख दिया? पुस्तक खोलकर देखें, ये दोनो सूत्र आपस्तम्बगृह्यसूत्र में विद्यमान हैं। वे सूत्र ये हैं—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ॥१०॥
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ॥११॥

—आपस्तम्ब० २।५।११।१०-११

अब कहिए, झूठ बोलना आप लोगों का काम है अथवा स्वामीजी का? हाथ कङ्गन को आरसी क्या? पुस्तक खोलकर अवलोन कीजिए। इन दोनों सूत्रों के अर्थ निम्न हैं—

१. धर्म का आचरण करने से नीचे-नीचेवाला वर्ण अपने से पहले-पहले वर्ण को प्राप्त हो जाता है, जाति के बदलने से।

२. पाप का आचरण करने से पहले-पहले वर्ण अपने से नीचे-नीचे वर्ण को प्राप्त हो जाता है, जाति के बदलने से।

जैसे कबूतर बिल्ली को देखकर आँखें बन्द कर लेता है कि बिल्ली है ही नहीं, इसी प्रकार जन्म से वर्ण-व्यवस्था माननेवाले पौराणिक पोप भी आँखें बन्द करके समझ लेते हैं कि जन्म की वर्ण-व्यवस्था का नाश करनेवाले प्रमाण शास्त्रों में हैं ही नहीं, परन्तु जैसे आँखें बन्द करने से कबूतर की जान नहीं बचती, अपितु इस भोलेपन से वह बिल्ली का

ग्रास बन जाता है, इसी प्रकार से प्रमाणों की ओर से आँखें बन्द करके भी जन्माभिमानी पौराणिक पोपों की जान बचनी भी कठिन है। इनको एक-न-एक दिन गुण-कर्ण-स्वभावनुसार वैदिक वर्ण-व्यवस्था का ग्रास बनना ही पड़ेगा।

पोपजी—सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सात, पृष्ठ २०७ पर एक मन्त्र बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से लिखा है, परन्तु वह मन्त्र इस उपनिषद् में नहीं है। यह शतपथब्राह्मण का वचन है।

तोपजी—बतलाइए, इसमें स्वामीजी का झूठ क्या हुआ? जब आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि वह मन्त्र बृहदारण्यक में तो नहीं है, परन्तु शतपथ में वही मन्त्र विद्यमान है। केवल इतना ही हुआ न कि शतपथ का पाठ बृहदारण्यक के नाम से लिखा गया। इसमें सिद्धान्त का क्या भेद हुआ और आर्यसमाज पर क्या आक्षेप आया और आपकी क्या प्रयोजन-सिद्धि हुई? प्रथम तो आपके लेख के अनुसार कोई हर्ज की बात नहीं है। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार का पाठ दोनों ग्रन्थों में आता है, जिनमें केवल एक शब्द का अन्तर है और इसपर भी अर्थ दोनों का एक ही है, अतः चाहे किसी ग्रन्थ के नाम से लिखा जाए कोई हर्ज नहीं है। देखिए, बृहदारण्यक में यह पाठ है—

यो विज्ञाने तिष्ठन्विज्ञानादन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानꣳशरीरं
विज्ञानमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥ —बृहदा० ३।७।२२

शतपथ में यही पाठ इस प्रकार है—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽ यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्।
आत्मनोन्तरा यमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः॥

अब आप इन दोनों पाठों को ध्यानपूर्वक पढ़ें तो पता लगेगा कि बृहदारण्यक के पाठ में विज्ञान शब्द है और शतपथ में आत्मा पाठ है। इसके अतिरिक्त सब पाठ समान ही है और स्वामी शंकराचार्यजी अपने वेदान्तभाष्य में लिखते हैं कि विज्ञान और आत्मा शब्द का अर्थ एक ही है—

शरीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते॥ —वे० भा० १।२।२०

काण्व और माध्यन्दिन दोनों ही शाखावाले अन्तर्यामी-भेद से इस जीव को समानरूप से ही पढ़ते हैं। काण्व शाखावाले **'यो विज्ञाने तिष्ठन्'** ऐसा पाठ पढ़ते हैं और माध्यन्दिनवाले **'य आत्मनि तिष्ठन्'** ऐसा पाठ पढ़ते हैं, परन्तु दोनों में 'आत्मा' भी जीव का ही बोधक है और 'विज्ञान' भी। दोनों का एक ही अर्थ है, केवल आत्मा और विज्ञान दो शब्दों का भेद है, अर्थ का नहीं।

अब कहिए, जब दोनों ही पाठों का एक ही अर्थ है और इस बात को स्वामी शंकराचार्यजी ने स्पष्ट कर दिया है तो इसमें आक्षेप-योग्य कोई बात शेष नहीं रहनी चाहिए। कोई पाठ किसी पुस्तक के नाम से लिखा जाए, अर्थ एक ही है तो पुस्तक के नाम-भेद से कोई दोष नहीं आता।

पोपजी—कतरे हुए वेदमन्त्र नियोग-प्रकरण में दिखाये जाएँगे।

तोपजी—हम भी आपके झूठ की पोल वहीं पर खोलकर दिखाएँगे।

पोपजी—ठीक ही लाला मनसारामजी ने स्वामीजी के मिशन के अनुसार काम करके अपनी गुरुभक्ति और आर्यसमाज की शिक्षा का पूरा-पूरा प्रमाण दिया है।

तोपजी--इसमें क्या सन्देह है! जैसे ऋषि दयानन्दजी महाराज सत्यप्रेमी और सत्यवक्ता थे, वैसे ही प्रत्येक आर्यसमाजी को होना चाहिए और पुराणों के अन्धकार को मिटाकर वैदिक धर्म का मार्ग बताना प्रत्येक आर्य का धर्म है।

पोपजी--पुराण वेदों के व्याख्या-ग्रन्थ होने से वेदों के अनुसार हैं।

तोपजी--वेदों पर दया करो और पुराणों को वेदों की व्याख्या बताकर उन्हें (वेदों को) कलङ्कित मत करो। पहले पौराणिक भाष्यकार महीधर और सायणाचार्य ने ही वेदों को पर्याप्त बदनाम कर दिया है। कुछ परमात्मा से भय करो, क्यों झूठ बोलने पर कमर बाँध रक्खी है? भला! कोई भी बुद्धिमान् पुराणों को वेदों की व्याख्या स्वीकार कर सकता है? वेदों के व्याख्या-ग्रन्थ तो ११२७ शाखा-ग्रन्थ हैं, जिनमें वेदमन्त्रों की प्रतीकें देकर उनकी व्याख्या की गयी है। क्या आप ऐसा कोई प्रमाण दे सकते हैं कि भागवत आदि अष्टादश पुराण भी ११२७ शाखाओं में सम्मिलित हैं? अथवा आप बता सकते हैं कि पुराणों में वेद के मन्त्रों की कौन-सी प्रतीकें देकर व्याख्या की गयी है? और क्या आप बतला सकते हैं कि चीरहरण-लीला, कुब्जा-समागम, गोमांस-भक्षण, मद्यपान, पोती को देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात होना, महादेव का लिंग हाथ में लेकर ऋषि-पत्नियों में जाना, महादेव का वेश्यागमन, ब्रह्मा का पुत्री से, विष्णु का माँ से, महादेव का बहिन से, सूर्य का भतीजी से विवाह आदि पौराणिक लेख वेद के किन मन्त्रों की व्याख्या हैं? फिर यूँ ही जनता को धोखा देने के लिए पुराणों को वेदों के व्याख्या-ग्रन्थ बतलाना जनता की अज्ञानता से अनुचित लाभ उठाना नहीं तो क्या है?

पोपजी--पुराण वेदों की भाँति भगवान् के ही निःश्वास हैं और इन्हें वेदों के साथ ही ईश्वर ने प्रकट किया था।

तोपजी--आपकी अवस्था भी विचित्र और दया करने योग्य है। आप अभी तो बता रहे थे कि "पुराण वेदों के व्याख्या-ग्रन्थ हैं और वेदों में जो कठिन विषय समाधि द्वारा जानने योग्य थे, उन्हें ही भगवान् वेदव्यास ने पृथक्-पृथक् भागों में और पृथक्-पृथक् भाषाओं में कई प्रकार की कथाओं और अलङ्कारों के द्वारा विस्तार से पुराणों में लिखा है। संक्षेप में वेदों में बीजरूप से कही हुई बातों को विस्तारपूर्वक वर्णन करनेवाले यदि कोई ग्रन्थ हैं तो वे पुराण हैं।" और अब आप ये बता रहे हैं कि पुराण भी वेदों की भाँति स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं और वे भी भगवान् के निःश्वास हैं और वे भी वेदों के साथ ही ईश्वर ने प्रकट किये हैं--इन दोनों बातों में से कौन-सी ठीक और कौन-सी ग़लत है? कृपा करके चित्त को एकाग्र करके एक सिद्धान्त निश्चित करें, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि 'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम।'

पोपजी--अथर्ववेद काण्ड ११, मन्त्र २४ से स्पष्ट प्रकट होता है कि सबके अन्त में शेष रहनेवाले ईश्वर से ऋग्वेद, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ ही प्रकट हुए।

तोपजी--प्रमाण तो आपने अथर्ववेद का दे दिया, परन्तु कभी अथर्ववेद को खोलकर देखा भी है? हमारे विचार से तो आपने किसी से सुन-सुनाके लिख मारा, अन्यथा क्या अथर्ववेद का प्रमाण इस प्रकार से लिखा जाता है, जैसे आपने लिखा है? अथर्ववेद के काण्ड ११ में पाँच अनुवाक हैं और दस सूक्त हैं। आपने केवल काण्ड और मन्त्र लिख दिया। यह तो बताया होता कि कौन-से अनुवाक और कौन-से सूक्त का यह मन्त्र है। लीजिए, हम आपको पूरा प्रमाण लिखना बताते हैं। अथर्ववेद काण्ड ११, अनुवाक ४, सूक्त

७, मन्त्र २४–पूरा पता लिखने की विधि यह है। अच्छा! भला, यह तो बतलाइए इस वेदमन्त्र को प्रस्तुत करने से आपका अभिप्राय क्या है? कदाचित् पुराण शब्द को देखकर आपके मुख में पानी भर आया होगा और भागवत आदि अष्टादश पुराणों को वेदोक्त सिद्ध करने की सूझी होगी, जोकि असम्भव बात है।

यदि कोई शराबी अपना नाम राम रख ले और अपने मांसाहारी साथी का नाम लक्ष्मण रख ले और वे दोनों व्यक्ति एक रण्डी को घर में रखकर उसका नाम सीता रखकर लोगों में यह सिद्ध करने का प्रयत्न करें कि वाल्मीकि रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने हमारा ही वर्णन किया है–जैसे यह प्रयत्न करना अज्ञानता और धोखा देना है, ऐसे ही वेदों में पुराण शब्द देकर नवीन कपोलकल्पित भागवत आदि को वेदोक्त सिद्ध करने का प्रयत्न करना मूर्खता और जनता को धोखा देना है।

पोपजी! सुनिए और कान खोलकर सुनिए। पुराण शब्द जहाँ कहीं भी वेदों में आता है, वहाँ विशेषण के रूप में आता है, विशेष्य के रूप में नहीं। देखिए, निरुक्त अध्याय ३, पाद ४, खण्ड १९ में पुराण शब्द का अर्थ पुराना लिखा है। इसी प्रकार अथर्ववेद (१८।३।१) में **'धर्मं पुराणमनु पालयन्ति'**–'पुराने धर्म का पालन करती हुई' यहाँ पर पुराण शब्द धर्म का विशेषण है। अमरकोश तृतीय काण्ड, वर्ग १ श्लोक ७७ में पुराण का अर्थ पुराना लिखा है और १।६।५ में भी पुराण भागवत आदि का नाम नहीं है। गीता अध्याय २, श्लोक २० में **'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः'**–'यह जीव अजन्मा, सदा रहनेवाला और पुराना है'–यहाँ भी पुराण शब्द जीव का विशेषण है। तात्पर्य यह कि पुराण विशेषण है। जब तक इसे किसी विशेष्य के साथ न लगाया जाए तब तक यह अकेला कोई अर्थ नहीं रखता।

वेदमन्त्र में भी पुराण शब्द छन्द शब्द के विशेषण के रूप में आया है, अतः इस वेदमन्त्र का अर्थ यह हुआ कि "सबके अन्त में शेष रहनेवाले परमात्मा से ज्ञान, उपासना और पुराण अर्थात् संसार की उत्पत्ति का वर्णन करनेवाले मन्त्र कर्मकाण्ड के मन्त्रों के साथ ही प्रकट हुए।" इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि चारों वेदों में जहाँ ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन करनेवाले मन्त्र हैं, वहाँ पुरानी अवस्था अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करनेवाले मन्त्र भी हैं। इसलिए इस वेदमन्त्र में आये हुए पुराण शब्द से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करनेवाले वेदमन्त्रों का ग्रहण होता है, न कि कपोलकल्पित नवीन भागवत आदि अष्टादश पुराणों का।

पोपजी–अथर्ववेद काण्ड १५, मन्त्र १२ में इतिहास, पुराण और नाराशंसी आदि नामों का वर्णन है।

तोपजी–मन्त्र का पूरा पता फिर नहीं दिया। अथर्ववेद के पन्द्रहवें काण्ड में दो अनुवाक हैं और अठारह सूक्त हैं। आपको यह लिखना चाहिए था कि यह मन्त्र पन्द्रहवें काण्ड के कौन-से अनुवाक और कौन-से सूक्त का है। प्रतीत होता है या तो आपने अथर्ववेद के दर्शन ही नहीं किये अथवा लोगों को धोखा देना ही परमधर्म मान रक्खा है। देखिए, यह मन्त्र अथर्ववेद काण्ड पन्द्रह, अनुवाक प्रथम, सूक्त छह का बारहवाँ मन्त्र है, जिसका अर्थ है–"पुराने इतिहास, गाथा और नाराशंसी आदि विद्याओं का भी वही परमात्मा धाम अर्थात् आश्रय है।" इस मन्त्र में भी पुराण शब्द इतिहास शब्द का विशेषण है और इस वेदमन्त्र में यह कहा गया है कि पुराने इतिहास अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन

करनेवाले वेदमन्त्रों का आश्रय भी परमात्मा ही है। बताइए, इस वेदमन्त्र में भागवत आदि अष्टादश पुराणों का वर्णन कहाँ है? आपके सिर पर विचित्र पागलपन सवार हुआ है, जो आप वेदमन्त्रों में आये हुए विशेषण शब्द पुराण से कपोलकल्पित नवीन भागवत आदि अष्टादश पुराणों के अस्तित्व को प्राचीन सिद्ध करने के पीछे पड़े हुए हैं। परमात्मा आपको सद्बुद्धि प्रदान करे!

पोपजी—बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय ४, खण्ड ९ में चारों वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, इतिहास, पुराणों को ईश्वर का निःश्वास माना है।

तोपजी—हम चकित हैं कि सनातनधर्म के पण्डित इतना दायित्वहीन कार्य क्यों करते हैं? उपर्युक्त दोनों अथर्ववेद के मन्त्रों के पते देने में ग़लती खाई। अब बृहदारण्यक का पता भी अत्यन्त अशुद्ध दिया है। ऊपर का पाठ प्रथम तो चौथे की बजाय दूसरे अध्याय में है। दूसरे, बृहदारण्यक उपनिषद् के अध्यायों में खण्डों का नाम भी नहीं, अपितु ब्राह्मण हैं और वह भी नौ की बजाय चौथे ब्राह्मण में यह पाठ है, और फिर मन्त्र की संख्या भी पोपजी ने नहीं दी। मूलपाठ का पता इस प्रकार है—बृहदारण्यक उपनिषद् अध्याय २, ब्राह्मण ४, मन्त्र १०। अब पता ठीक बताया तो पाठ में भी पोपजी ने 'ब्राह्मणग्रन्थ' शब्द तो अपनी ओर से जोड़ दिया और 'विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान'—इतने शब्दों को पाठ में से हड़प ही कर गये। भला! इतनी बेईमानी से काम लिया जाए वहाँ धर्म कहाँ? लीजिए, हम मूल पाठ देते हैं—"परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान प्रकाशित अर्थात् प्रकट हुए हैं।" इस पाठ में विद्या शब्द स्पष्ट पड़ा हुआ है जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि उपनिषद् ने इस बात का वर्णन किया है कि इन सारी विद्याओं का प्रकाश परमात्मा ने चारों वेदों के द्वारा किया है। इस प्रमाण में भी पुराण शब्द इतिहास का विशेषण है, जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि परमात्मा ने जहाँ और विद्याओं का प्रकाश किया है, वहाँ पुराने इतिहास अर्थात् संसार की उत्पत्ति के इतिहास का भी विस्तार से वर्णन किया है। अब भला बताइए, इस पाठ में से कपोलकल्पित भागवत आदि अष्टादश पुराणों की सिद्धि कैसे हो सकती है?

पोपजी—गोपथब्राह्मण में लिखा है कि ईश्वर ने वेदों के मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग, उपनिषद्, निरुक्त, कल्प, इतिहास और पुराण आदि को एक-साथ ही प्रकट किया।

तोपजी—या बेईमानी तेरा ही आश्रय! प्रथम तीनों प्रमाणों में तो आपने पते अशुद्ध लिखे और कुछ शब्द भी अपनी ओर से मिलाये। चौथे प्रमाण में पता ही लुप्त है, केवल ग्रन्थ का नाम लिखकर ही प्रमाण दे दिया गया है। अब न जाने पोपजी ने इस प्रमाण में कितनी हेरा-फेरी की होगी, परन्तु फिर भी पोपजी का प्रयोजन सिद्ध होता दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य यह स्वीकार नहीं कर सकता कि वेदों के साथ ईश्वर ने ब्राह्मणभाग, अर्थात् शतपथ, गोपथ, सामविधान और ऐतरेय तथा वर्त्तमान गुटके में विद्यमान १०८ उपनिषद् और वर्त्तमान यास्कमुनिकृत निरुक्त तथा कल्प अर्थात् पराशर, गोभिल, आश्वलायन आदि गृह्यसूत्र और इतिहास—रामायण, महाभारत आदि तथा पुराण—भागवत आदि ये सब चारों वेदों के साथ ही प्रकट हुए। वस्तुतः यही मानना ठीक है कि परमात्मा ने चारों वेदों के साथ ब्राह्मण, उपनिषद, निरुक्त, कल्प, इतिहास, पुराण आदि विद्याओं के सिद्धान्तों को प्रकट किया। इस प्रमाण में भी पुराण शब्द इतिहास शब्द के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसके अर्थ स्पष्ट हैं—पुराण-इतिहास, अर्थात् सृष्टि

की उत्पत्ति का वर्णन करनेवाले मन्त्र। इस प्रमाण से भी कपोलकल्पित भागवत आदि अष्टादश पुराणों का अस्तित्व प्राचीन सिद्ध नहीं हो सकता।

पोपजी—जब वेद पुराणों को नित्य और अनादि ईश्वर-निर्मित बतलाते हैं तो इन्हें नये और अप्रामाणिक मानना वेद के आदेश से ही इन्कार करना है।

तोपजी—प्रथम तो ऊपर के चारों प्रमाणों को वेद का बताना जनता को धोखा देना है, क्योंकि इनमें से पहले दो तो अथर्ववेद के हैं, तीसरा बृहदारण्यक उपनिषद् का है और चौथा गोपथ के नाम से दिया गया है। बृहदारण्यक उपनिषद् और गोपथ को वेद बतलाना सचमुच वीरता है। रहा इन प्रमाणों से भागवत आदि अष्टादश पुराणों को ईश्वरकृत सिद्ध करना, वह ऐसा ही असम्भव है जैसाकि पुराणों की शिक्षा का विद्या, बुद्धि और सदाचार के अनुकूल सिद्ध होना, क्योंकि उपर्युक्त मन्त्रों का आशय यह है कि "परमेश्वर ने चारों वेदों के साथ ही छन्द, पुराण, इतिहास, गाथा, नाराशंसी, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और व्याख्यान, निरुक्त, कल्प आदि को प्रकट किया।" अब यदि इनसे पुस्तकें ग्रहण की जाएँ तो इसके अर्थ ये होंगे कि संस्कृत की एक भी पुस्तक ऐसी नहीं जो मनुष्यकृत हो, अपितु सारी ही पुस्तकें ईश्वरकृत हैं, क्योंकि जो भी पुस्तक श्लोकों, सूत्रों, मन्त्रों, व्याख्यान अर्थात् गद्य में हो वे सब-की-सब ईश्वरकृत हैं। इसलिए उल्लिखित सन्दर्भ से पुस्तकों का तात्पर्य नहीं है, अपितु इस प्रमाण में ही विद्या शब्द पड़ा हुआ है, इसलिए इस लेख का तात्पर्य स्पष्ट है कि परमात्मा से उल्लिखित विद्याएँ वेदों के द्वारा प्रकट हुईं। इस प्रमाण में पुराण शब्द इतिहास का विशेषण है, अर्थात् पुराने इतिहास का ज्ञान भी परमात्मा से प्रकट हुआ। वेदों के प्रकट होने के समय पुरातन इतिहास वही हो सकता है। इसलिए पुराण, इतिहास का स्पष्ट तात्पर्य यही है कि और विद्याओं के साथ-साथ, परमेश्वर ने पुराण इतिहास अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करने की विद्या भी प्रकट की, न कि मांस-भक्षण, मद्यपान, व्यभिचार, जुआ-बाजी आदि की शिक्षा देनेवाले कपोलकल्पित भागवत आदि अष्टादश पुराणों को प्रकट किया। पुराण न ईश्वर-निर्मित हैं और न ही नित्य हैं, अपितु वेदविरुद्ध, पोप-निर्मित अप्रामाणिक पुस्तकें हैं।

पोपजी—महर्षि वेदव्यासजी ने जिस प्रकार वेदों के काण्ड, सूक्त, अध्याय, मन्त्र आदि के विभाग किये, उसी प्रकार महर्षि वेदव्यासजी ने ईश्वर-निर्मित अनादि पुराणों को सूक्ष्म रूप से बिखरे हुए जानकर विस्तार से अठारह पुस्तकों के रूप में विभक्त किया था।

तोपजी—वेदव्यासजी ने न तो वेदों के काण्ड, सूक्त, अध्याय, मन्त्र आदि विभागों को बनाया है और न ही भागवत आदि अष्टादश पुराणों को सूक्ष्म रूप से विस्तारपूर्वक बनाया है, अपितु पोपजी ने यह अपने घर का गपोड़ा बनाया है, क्योंकि ऋग्यजुः, साम और अथर्व—चारों वेद जिस रूप में सृष्टि के आरम्भ में विद्यमान थे, ठीक उसी रूप में आज भी विद्यमान हैं। इनके काण्ड, सूक्त, अध्याय, मण्डल आदि सब विभाग भी ईश्वरकृत ही हैं और वेदव्यासजी से पूर्व भी इनके काण्ड, सूक्त, मण्डल, अध्याय आदि विभाग विद्यमान थे। रहा पुराणों का प्रश्न? वेदव्यासजी के बनाये हुए वेदान्तदर्शन और योगदर्शन के भाष्य को देखकर पता लगता है कि व्यासजी महाराज विद्वान्, सत्यप्रेमी, सदाचारी और योगी थे। मद्यपान, मांसभक्षण और दुराचार की शिक्षा देनेवाले भागवत आदि अष्टादश पुराण व्यासजी के बनाये हुए नहीं हो सकते, अपितु ये तो किन्हीं वाममार्गी, बदमाश, धूर्त, दुराचारी और पामर लोगों के बनाये हुए प्रतीत होते हैं।

पोपजी—महाभूतों की सृष्टि, चराचर की सृष्टि, वंशावली, मन्वन्तरों का वर्णन, महापुरुषों का वर्णन करना—ये पाँच पुराणों के लक्षण हैं।

तोपजी—इन लक्षणों को मानकर भी भागवत आदि अष्टादश पुराण इन लक्षणों के अनुसार ठीक नहीं उतरते। महाभूतों की सृष्टि में पुराणों का बड़ा भारी मतभेद है। कहीं शिव से सृष्टि को माना है, कहीं कृष्ण से, कहीं देवी से तो कहीं ब्रह्मा से और आपस में एक-दूसरे की निन्दा भी की गयी है। चराचर की सृष्टि तो पुराणों में अद्‌भुत एवं विचित्र है। कहीं पशुओं से मनुष्यों की उत्पत्ति और कहीं मनुष्यों से पशुओं की उत्पत्ति कथन की है। कहीं वृक्षों से मनुष्यों की और कहीं मनुष्यों से धातुओं की उत्पत्ति का वर्णन है। तात्पर्य यह कि पुराणें में चराचर की सृष्टि का वर्णन सृष्टि-नियम के विरुद्ध, असम्भव और बेहूदा ढंग से किया गया है। वंशावलियों का तो कहना की क्या है? वे ऐसे बेढंगे रूप से लिखी गयी हैं कि पढ़नेवाला किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सकता। मन्वन्तरों का तो कहीं पता ही नहीं लगता। रह गया महापुरुषों के इतिहास का वर्णन, इसमें तो इतनी गन्दगी बिखेरी गयी है कि कोई ऋषि, कोई मुनि और कोई देवता, यहाँ तक कि राम और कृष्ण को भी मांसभक्षण, मद्यपान और दुराचार आदि के दोष लगाये बिना नहीं छोड़ा गया, अतः उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार भागवत आदि अठारह पुस्तकें पुराण कहलाने योग्य नहीं ठहराई जा सकतीं। इन लक्षणों के अनुसार यदि किन्हीं पुस्तकों को पुराण का स्थान दिया जा सकता है तो वे शतपथ, गोपथ, सामविधान और ऐतरेय—चार ब्राह्मणग्रन्थ हैं और बस।

पोपजी—इन पाँचों लक्षणों का ज्ञान हम पुराण के बिना किसी भी ग्रन्थ से प्राप्त नहीं कर सकते। संसार का कोई मत सृष्टि की उत्पत्ति का पूर्ण उत्तर नहीं दे सकता। आर्यसमाजी भी इन विषयों के सम्बन्ध में मौन धारण कर लेते हैं।

तोपजी—हमने यह सिद्ध कर दिया है कि इन पाँचों लक्षणों के अनुसार भागवत आदि अष्टादश पुस्तकें किसी भी रूप में पुराण कहलाने के योग्य नहीं हैं। इन पाँचों बातों का ठीक ढंग से प्रतिपादन यदि कहीं मिल सकता है तो ब्राह्मणग्रन्थों में ही मिल सकता है और वे ही पुराण कहलाने के योग्य हैं। संसार के अन्य मतों के सम्बन्ध में सम्भव है पोपजी की सम्मति ठीक हो। हमारे विचार में तो सृष्टि की उत्पत्ति का पूर्ण वर्णन भागवत आदि पुराण भी नहीं कर सकते। सृष्टि-उत्पत्ति का पूर्ण उत्तर यदि कोई दे सकता है तो वह वैदिक धर्म है। वेदों में सृष्ट्युत्पत्ति का पूर्ण उत्तर मिल जाता है। आवश्यकता हो तो सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का सृष्ट्युत्पत्तिप्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़ें।

पोपजी—जो सज्जन पुराणों में महात्मा बुद्धदेव, विष्णु सम्प्रदाय और सेतुबन्ध रामेश्वर आदि इतिहासों को देखकर पुराणों को इनके पश्चात् बने हुए जानते हैं, यह उनकी भूल है।

तोपजी—यह उनकी भूल नहीं है, अपितु उनका विचार सत्य है, क्योंकि किसी व्यक्ति की जीवन-घटनाएँ उसी पुस्तक में लिखी जा सकती हैं, जो पुस्तक उस व्यक्ति के जन्म के पश्चात् लिखी गयी हो।

पोपजी—त्रिकालदर्शी महर्षि व्यासजी ने तीनों कालों की बातों का पहले वर्णन कर दिया है जैसाकि भविष्यपुराण और कल्किपुराण में आगे होनेवाली बातों का वर्णन मिलता है।

तोपजी—क्योंकि मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है और किसी कार्य को करने या न

करने के सम्बन्ध में अपने विचार को बदल सकता है, इसलिए उसे अपने जीवन में जो कार्य करने हैं वे निश्चित नहीं है। इसलिए जिन कार्यों को करने का अभी व्यक्ति के हृदय में विचार भी उत्पन्न नहीं हुआ, उसे तो ईश्वर भी नहीं जान सकता, मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है? इसलिए भविष्यपुराण और कल्किपुराण में जो हजरत आदम, नूह, मूसा, ईसा और मुहम्मद साहब को ही नहीं, अपितु अकबर और औरंगजेब तक को भी अवतार माना गया है और गदर (स्वतन्त्रता-संग्राम) तक की घटनाएँ हैं तथा महारानी विक्टोरिया और कलकत्ते के डिप्टी कमिश्नर तक के जीवन-वृत्तान्त मिलते हैं, यह व्यासजी के योगबल का परिणाम नहीं अपितु पोपजी की माया है कि दक्षिणा के बदले में आवश्यकता के अनुसार श्लोक बना-बनाकर पुस्तकों में प्रविष्ट किये जाते रहे। यदि यह बात नहीं तो व्यासजी ने पुराणों में स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज का वर्णन क्यों नहीं किया? महात्मा गांधी, कांग्रेस और नॉन-कोऑपरेशन (असहयोग आन्दोलन) आदि का उल्लेख क्यों नहीं किया? लॉर्ड हार्डिगं पर बम्बकेस और साण्डर्स का वध, जलियाँवाला बाग, गुरु का बाग और कश्मीर का गदर आदि प्रसिद्ध घटनाओं का पुराणों में वर्णन क्यों नहीं है? इसलिए किसी के जन्म से पूर्व उसके द्वारा होनेवाले कार्यों का ज्ञान होना विद्या, बुद्धि और घटनाओं के विरुद्ध होने से स्वीकार करने के योग्य ही नहीं है।

पोपजी—जबकि वेदों में भी यम-यमी, देवाली, और इन्द्र-वृत्रासुर-संग्राम का इतिहास आर्यसमाज के योग्य विद्वान् भी मानते हैं, तो फिर वेदों को भी उनके बाद का बनाया हुआ मानना पड़ेगा।

तोपजी—'वेदों में किन्हीं भी मनुष्यों का इतिहास नहीं है'—आर्यसमाज का यह प्रसिद्ध सिद्धान्त है। आर्यसमाज में रहते हुए भी यदि कोई वेदों में इतिहास मानता है तो वह भी विश्वासघाती, पामर और पोप है। वे आर्यसमाज के योग्य विद्वान् कहलाने योग्य नहीं। हाँ, वेद में प्रकृति के दृश्यों का वर्णन तो विद्यमान है जिनको यदि इतिहास कहा जाए तो कोई आपत्तिजनक बात नहीं है, और आपने जो यम-यमी की बात लिखी है वहाँ 'यम' नाम धर्मशास्त्र के अनुकूल आचरण करनेवाले पुरुष का है और 'यमी' नाम वेद के अनुसार आचरण करनेवाली स्त्री का है। यदि इनके सम्बन्ध में वेद में कोई वर्णन है तो वह सैद्धान्तिक बात का वर्णन करने के लिए है, किसी विशेष पुरुष या स्त्री के जीवन का वृत्तान्त नहीं है। 'देवाली' चारों वेदों में कोई शब्द ही नहीं है। आपने पता नहीं कहाँ से लिख दिया। हाँ, यदि आपका तात्पर्य 'देवापि' से हो तो दूसरी बात है। वेदों में 'अहि' और वृत्रासुर नाम बादलों का है और इनका देव या इन्द्र अर्थात् सूर्य के साथ युद्ध एक प्राकृतिक दृश्य है, जिसका वेद में वर्णन है। यहाँ पर किन्हीं विशेष मनुष्यों के युद्ध का वर्णन नहीं है। आवश्यकता हो तो निरुक्त उठाकर देख लीजिए। इस प्रकार वेदों में न तो किन्हीं मनुष्यों का इतिहास है, न ही वेदों को उनके पश्चात् बना हुआ मानने की आवश्यकता है।

पोपजी—यदि बुद्ध आदि का पुराण में वर्णन होने से पुराण बुद्ध आदि के बाद के बनाये हुए माने जाएँ, तो चूँकि वेदों में भी पुराणों, श्रीकृष्ण, भगवान् राम, रावण, वामन, कंस आदि का वर्णन होने से वेदों को भी रावण आदि के बाद में बने हुए मानना पड़ेगा।

तोपजी—वेदों में न तो भागवत आदि पुराणों का वर्णन है और न ही वसुदेव के पुत्र कृष्ण तथा दशरथ के पुत्र राम तथा सीता का हरण करनेवाले रावण और पौराणिकों के अवतार वामन तथा कृष्ण के मामा कंस का वर्णन है। वेद में सारे शब्द यौगिक हैं, जिनके

अर्थ धातुओं के अनुसार लिखे जाते हैं। वेद में उपर्युक्त व्यक्तियों का वर्णन नहीं है, अपितु वेदों में से शब्द लेकर उन व्यक्तियों के नाम रक्खे गये हैं। यदि आज मैं वेदों को देखकर अपनु पुत्रों के नाम इन्द्र, शिव और ब्रह्मा आदि रख लूँ तो इसका यह अर्थ नहीं कि वेद मेरे पुत्रों के पश्चात् बने, अपितु इसका अर्थ यह है कि मैंने अपने पुत्रों के नाम वेदों को देखकर रक्खे हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त नामों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

देखिए, वेदों में पुराण नाम पुराने का है। भागवत आदि पुराणों के बनानेवालों ने अपनी पुस्तकों को प्राचीन सिद्ध करने के लिए अपनी पुस्तकों का नाम पुराण रख लिया। वेदों में कृष्ण नाम काले पदार्थों के लिए प्रयुक्त हुआ है। वसुदेव ने अपने पुत्र का रंग काला देखकर उसका नाम कृष्ण रख दिया। वेदों में राम नाम अन्धकार के अर्थ में आया है, क्योंकि राम का रंग भी अन्धकार की भाँति साँवला ही था, इसलिए दशरथ ने अपने पुत्र का नाम राम रख दिया। वेदों में रावण नाम डरावने अर्थों में आता है। रावण के पिता ने अपने पुत्र की डरावनी आकृति देखकर उसका नाम रावण रख दिया। वामन नाम वेदों में प्रत्येक प्रकार से छोटे अर्थात् ठिंगने का आता है, अतः लोगों ने जिनको ठिगना देखा, उन्हें वामन कहना आरम्भ कर दिया। वेदों में 'कंस' शब्द तो कहीं भी नहीं है। हाँ, बहुवचन में 'कंसा:' आता है, जिसका अर्थ है–'कड़ा शासन करनेवाले'। उग्रसेन के पुत्र की शासन में कठोरता देखकर लोगों ने उसे कंस कहना आरम्भ कर दिया।

हमारे इस सारे लेख का तात्पर्य यह है कि ये सब नाम लोगों ने वेदों में से देखकर रख लिये हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वेद इनके पश्चात् बने, अपितु वेदों में से देखकर इन लोगों ने उचित नाम रख लिये हैं। इसलिए वेदों में न तो किसी व्यक्ति का इतिहास है और न ही वेदों को किसी के जन्म के पश्चात् बना हुआ मानने की आवश्यकता है। हाँ, पुराणों के सम्बन्ध में क्योंकि आप स्वयं स्वीकार करते हैं कि इनमें महात्मा बुद्धदेव आदि का इतिहास लिखा हुआ है, अतः इनके सम्बन्ध में प्रत्येक बुद्धिमान् व्यक्ति को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भागवत आदि पुराण महात्मा बुद्धदेव आदि के जन्म के पश्चात् ही बनाये गये हैं।

पोपजी–जबकि हम एक वर्ष पूर्व ही आगे होनेवाले सूर्य और चन्द्रग्रहण का वर्णन तिथि-पत्रे में देखकर तथा विज्ञान और तर्क-शास्त्र के द्वारा आगे होनेवाली घटनाओं का ज्ञान कर लेते हैं तो त्रिकालदर्शी महर्षि व्यासजी के सम्बन्ध में आशंका करना सरासर अन्याय है।

तोपजी–जो बातें व्यवस्था के अनुसार नियमपूर्वक होनेवाली हैं, उनका एक वर्ष क्या सौ वर्ष पूर्व जान लेना भी ठीक है। उदाहरण के रूप में चाँद, सूर्य, पृथिवी और सितारों की नियमित गति से दिन-रात, तिथि, वार और सूर्य-चन्द्रग्रहण आदि घटित होते हैं, अतः इनके सम्बन्ध में सौ वर्ष पूर्व भी ज्ञान हो सकता है और कारण को जानकर कार्य का ज्ञान होना ठीक भी है। विज्ञान और तर्कशास्त्र किन्हीं कारणों के आधार पर आगे होनेवाली घटनाओं का अनुमान करते हैं जो प्रायः सत्य होती हैं, परन्तु आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिनट पर मैं क्या करूँगा, इसे तो ईश्वर भी नहीं जानता, क्योंकि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र हूँ। जिस कार्य को करने का विचार भी मेरे हृदय में उत्पन्न नहीं हुआ, उसके सम्बन्ध में ईश्वर भी वैसा ही जानता है; और जब किसी कार्य को करने का विचार मेरे हृदय में उत्पन्न होता है, तो ईश्वर को उसका तुरन्त ज्ञान हो जाता है, परन्तु मैं आज से

आठवें दिन बारह बजकर एक मिनट पर क्या करूँगा, इसका ज्ञान ईश्वर को भी नहीं। हाँ, ईश्वर मौलिक रूप से यह जानता है कि मनुष्य क्या-कुछ कर सकता है। जीव जैसा कर्म करता है ईश्वर वैसा फल देता है। यदि आप यह मान लें कि 'आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिनट पर मैं क्या करूँगा' इसे ईश्वर जानता है तो फिर यह बताएँ कि यदि मैं चाहूँ तो इस कार्य को करने के सम्बन्ध में अपने विचार को बदल सकता हूँ अथवा नहीं? यदि कहो कि मैं कर्म करने में स्वतन्त्र होने के कारण इस काम को करने के विचार को बदल सकता हूँ तो फिर ईश्वर का ज्ञान ग़लत हो जाएगा और वह ईश्वर ईश्वर कहलाने के योग्य नहीं रहेगा। यदि आप कहो कि मैं अपने विचार को बदल नहीं सकता तो मैं इस काम को करने में विवश हो गया, और जो काम विवशता से किया जाएगा उसके फल का उत्तरदायी मैं क्यों? इस कर्म का फल ईश्वर को ही भुगतना चाहिए, क्योंकि मैं ईश्वर के ज्ञान को ठीक सिद्ध करने के लिए अपने विचार को बदल नहीं सकता। इस प्रकार 'मैं आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिनट पर क्या करूँगा' जब इस बात का ईश्वर को पता नहीं है तो फिर 'सारे संसार के इतिहास को सहस्रों वर्ष पूर्व व्यासजी ने लिखकर रख दिया' इसे कैसे माना जा सकता है?

देखिए 'भोज-प्रबन्ध' में क्या लिखा है? जब राजा मुञ्ज ने एक ज्योतिषी को बहाना बनाकर वत्सराज को आज्ञा दी कि भोज को पाठशाला से बाहर ले-जाकर उसका वध कर दो तो बुद्धिमान् मन्त्री ने इन ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के सम्बन्ध में क्या युक्तियुक्त सम्मति दी है—

त्रैलोक्यनाथो रामोऽ स्ति वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः। तेन राज्याभिषेके तु मुहूर्तः कथितोऽभवत्॥२०॥
तन्मुहूर्तेन रामोऽ पि वनं नीतोऽ वनिं विना। सीतापहारोऽ प्यभवद्विरञ्चिवचनं वृथा॥२१॥
जातः कोऽ यं नृपश्रेष्ठ किञ्चिज्ज उदरम्भरिः। यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तुमिच्छसि॥२२॥

अर्थ—श्रीराम त्रिलोकी के स्वामी थे और वसिष्ठजी ब्रह्मा के पुत्र थे। उस ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ने त्रिलोकीनाथ राम के राजगद्दी पर बैठने का मुहूर्त्त निकाला। इसी मुहूर्त में राम पृथिवी का राज्य छोड़कर वन में चले गये। आगे चलकर सीता का हरण हुआ। वसिष्ठजी का कथन व्यर्थ ही गया। हे राजन्! जब ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ को कल का भी पता न लगा तो इस मूर्ख तथा पेटू की बात मानने योग्य कैसे हो सकती है, जिसके कहने से आप कामदेव के समान सुन्दर कुमार को मारने के लिए तैयार हुए हो?

देखिए, क्या उत्तम तर्क है! यह निश्चित सिद्धान्त है कि जीवों द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक किये जानेवाले कार्यों का जब ईश्वर को भी ज्ञान नहीं हो सकता तो मनुष्यों की तो हस्ती ही क्या है? इसलिए पुराणों में जिन व्यक्तियों का वर्णन है, निश्चितरूप से पुराण उन लोगों के जन्म के पश्चात् ही बनाये गये हैं।

पोपजी—वास्तव में पुराण हिन्दूजाति के प्राण हैं।

तोपजी—ये भागवत आदि अष्टादश पुराण हिन्दूजाति के प्राण नहीं अपितु ये तो हिन्दूजाति की गर्दन पर तीव्र कुल्हाड़े हैं, जिनसे मौत के घाट उतारे जाकर जाति के नीलकण्ठ और खड्गसिंह जैसे लाखों लाल ईसाइयों और मुसलमानों में जाकर सम्मिलित हो गये।

पापेजी—मेरा यह दावा (घोषणा) है कि वेदों का पूर्ण ज्ञान हम पुराणों के बिना प्राप्त नहीं कर सकते।

तोपजी—वेदों के ज्ञान के लिए वेदों के छह अङ्ग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष; तथा छह उपांग हैं—न्याय, सांख्य, वैशेषिक, योग, वेदान्त और मीमांसा। इन्हीं से वेदों का ज्ञान होता है। भागवत आदि अष्टादश पुराणों से वेदों का ज्ञान होना ऐसे ही असम्भव है जैसे वन्ध्या के पुत्र के विवाह में मिठाई का खाना।

पोपजी—महर्षि व्यासजी ने पुराणों में वेदों की समस्त आज्ञाओं को दार्शनिक रूप में सिद्ध करके हिन्दुओं को इस ओर आकर्षित किया है।

तोपजी—व्यासजी का तो व्यर्थ में नाम बदनाम है। हाँ, यह ठीक है कि वाममार्गी, पामर लोगों ने अपने दोषों को उचित सिद्ध करने के लिए भागवत आदि अठारह पुराणों को रचा है, जिनमें वेदों के विरुद्ध मद्यपान, मांसाहार और व्यभिचार का भरपेट समर्थन किया गया है। अच्छा पोपजी! कृपा करके यह तो बतलाएँ कि ब्रह्मा का पोती को देखकर वीर्यपात होना और बृहस्पति का अपने भाई की गर्भवती स्त्री ममता के साथ बलात् मैथुन करते समय लड़के का बोलना—इनमें वेद की कौन-सी आज्ञाओं को दार्शनिक रूप से सिद्ध करके हिन्दुओं को इस ओर प्रवृत्त किया है?

पोपजी—हिन्दुओं की वीरता, न्याय-प्रियता, प्रभुता, शासन-पद्धति, कला-कौशल, दान और भक्ति की महिमा तथा पूर्वजों के चरित्रों का ज्ञान हम सिवाय पुराणों के कहीं से प्राप्त नहीं कर सकते।

तोपजी—भागवत आदि अठारह पुराणों से पूर्वजों के चरित्रों का जो ज्ञान और उनकी वीरता तथा न्यायप्रियता आदि गुणों का जो वर्णन इन पुराणों में मिलता है, उसे पढ़कर हिन्दूजाति दूसरों के समक्ष सिर ऊँचा करने के योग्य भी नहीं है, क्योंकि इस हिन्दूजाति को रसातल में ले-जाने का ठेका इन पुराणों ने ही ले-रक्खा है। हिन्दूजाति के लाखों लाल पुराणों की कुशिक्षा के कारण ईसाई और मुसलमान हो गये। अब जो बच रहे हैं उनपर दया करो। अपनी हठधर्मी छोड़ो और इस हिन्दूजाति को पुराणों के गढ़े से निकालकर जीवन का मार्ग दिखाओ। क्या मैं आशा करूँ कि आप सन्मार्ग पर आएँगे? कार्य कठिन है, विश्वास नहीं आता। क्योंकि—

है बीमार तो लेकिन बचने के क़ाबिल जो अपनी खता को खता मानता है।
वले ऐसे नादान का क्या ठिकाना कि जो मर्ज़ को ही दवा जानता है।।

पोपजी—पुराणों में समाधि भाषा जिसे आध्यात्मिक भाषा कहते हैं, दूसरी लोकभाषा और तीसरी परकीय भाषा का प्रयोग हुआ है।

तोपजी—आर्यसमाज के जन्मदिन से ही सनातनधर्म ने यह प्रयत्न किया है कि पुराणों के गन्दे और अशिष्ट वर्णन को अलङ्कार सिद्ध करके पुराणों को निष्कलंक सिद्ध किया जाए, परन्तु सनातनधर्म इसमें सफल नहीं हो सका। इसका प्रमाण यह है कि अठारह पुराणों में से एक पुराण की भी सनातनधर्म अपनी कल्पना के अनुसार टीका नहीं कर सका और कर भी कैसे सकता है जबकि पुराण इस दृष्टिकोण से लिखे ही नहीं गये? जिस दृष्टिकोण को सनातनधर्म प्रस्तुत करता है, यदि आपकी यह कल्पना भी पुराणों को निष्कंलक सिद्ध कर सके तो बधाई है, परन्तु हमें यह बेल सिरे चढ़ती दिखाई नहीं देती।

पोपजी—जिस भाषा के द्वारा महर्षि व्यासजी ने वेदों के तत्त्वों को समाधि के द्वारा शारीरक (जीवात्मा-सम्बन्धी या आध्यात्मिक) कथा को सांसारिक इतिहास बनाकर समझाया है, उसे समाधि-भाषा अथवा आध्यात्मिक भाषा कहते हैं।

तोपजी—आपकी यह कल्पना बिल्कुल निर्मूल है। चाहिए तो यह था कि वेद के गूढ़ तत्त्वों को समाधि के द्वारा जानकर उन्हें सरल भाषा में लिखकर लोगों के समझने योग्य बनाया जाता। इसके विपरीत आप लिख यह रहे हैं कि इन तत्त्वों को समाधि के द्वारा जानकर भी फिर अलङ्कारों के जाल में फँसा दिया गया तो भला! यह तो बताइए कि इससे व्यासजी ने उपकार क्या किया? कुएँ में से निकाला और गढ़े में गिरा दिया! और आपकी पूर्व-प्रतिज्ञा भी—"व्यासजी ने बीजरूप वेद की आज्ञाओं को पुराणों के द्वारा समझाकर हिन्दुओं को इस ओर आकर्षित किया है", सर्वथा झूठ सिद्ध होती है और आपके ग्रन्थ भी यही कह रहे हैं कि जिनकी समझ में वेद और शास्त्र न आ सकते थे, उनके लिए पुराण बनाये गये। देखिए अत्रिस्मृति श्लोक ३८१ में लिखा है—

"जो वेदों को नहीं समझ सकते वे शास्त्रों को पढ़ते हैं, और जो शास्त्रों को नहीं पढ़ सकते उनके लिए पुराण पढ़ने के योग्य हैं। जो पुराण भी नहीं पढ़ सकते वे खेती करने के योग्य हैं, और जो खेती करने के योग्य भी बुद्धि नहीं रखते, अपितु उनसे भी गिरे हुए हैं वे भागवत पढ़ते हैं।"[१]

इस लेख से पता लगता है कि भागवत आदि पुराण अत्यन्त अल्प बुद्धिवाले लोगों के लिए बनाये गये हैं। देखिए, इस बात की पुष्टि भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व अध्याय १, श्लोक ५४ तथा ५५ में की गयी है—

"मुनियों ने अठारह पुराण और रामचन्द्रजी का जीवन विशेषकर शूद्रों को पवित्र करने के लिए बनाये हैं।"[२]

अब बताइए कि पुराणों की सर्वसाधारण को समझ में आनेवाली कथाओं को फिर से अलङ्कारों के जाल में फँसाकर कठिन बनाना पोपलीला नहीं तो क्या है? परन्तु ध्यान रक्खो, इससे भी जान बचानी कठिन है।

पोपजी—समाधिभाषा अर्थात् आध्यात्मिक भाषा को समझाने के लिए श्रीमद्भागवत के चौथे स्कन्ध की एक कथा लिखी जाती है—

तोपजी—आपने स्कन्ध तो लिख दिया, परन्तु यह तो बताया होता कि यह कौन-से अध्याय की कथा है, जिससे आपकी चालाकी का लोगों को पता तो लग जाता कि ये लोग विशेष्य के गुणों (विशेषणों) को हड़प कर और कथा को तोड़-मरोड़कर जनता की आँखों में धूल झोंकते हैं। अस्तु, आप न लिखें, हम लिख देते हैं कि यह कथा भागवत के चौथे स्कन्ध में पच्चीसवें अध्याय के श्लोक नौ से आरम्भ होकर अध्याय अट्ठाइस के श्लोक-संख्या ६५ पर समाप्त होती है। वहाँ से कथा को पूरे रूप में पढ़कर पोपजी की कतर-ब्योंत का अवलोकन कीजिए।

---

१. मूल श्लोक इस प्रकार है—

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं, शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति, भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति॥ —अत्रिसंहिता ३८४

—अष्टादश स्मृतयः, सस्ता साहित्य मण्डल, शामली (उ० प्र०)

२. पुराण का मूल पाठ निम्न है—

धर्मशास्त्राणि राजेन्द्र शृणु तानि नृपोत्तम। विशेषतश्च शूद्राणां पावनानि मनीषिभिः॥५४॥
अष्टादश पुराणानि चरितं राघवस्य च॥५५॥ —जगदीश्वरानन्द

पोपजी—पुरञ्जन से तात्पर्य जीवात्मा है।

तोपजी—वह कैसे? कोई कसौटी तो बताई होती? अथवा कथा में ही कोई संकेत बताया होता कि पुरञ्जन से जीवात्मा क्यों अभिप्रेत है? तनिक प्रकरण तो देखा होता! यहाँ तो नारदजी राजा प्राचीनबर्हि को उपदेश करते हैं कि—हे राजन्! तुमने दयाहीन होकर यज्ञ में सहस्रों पशुओं का वध किया है, वे सब आकाश में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे कि कब तू मरे और कब वे अपने तीक्ष्ण सींगों से तेरी खबर लेवें (तुझे पाठ पढ़ाएँ), अतः इस कष्ट से बचने के लिए मैं तुझे राजा पुरञ्जन का प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। देखिए भागवत (४।२५।९) क्या कहता है—

अत्र ते कथयिष्येऽ मुमितिहासं पुरातनम्। पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मया॥

अर्थ—आपके लिए मैं पुरञ्जन राजा का वृत्तान्त, अर्थात् पुराना इतिहास कहूँगा। आप मेरे द्वारा कहे उस इतिहास को सावधान होकर सुनो।

अब बताइए, पुस्तक में तो राजा पुरञ्जन का पुराना इतिहास सुनाना लिखा है और आप अपनी मनमानी कल्पना से जीवात्मा अभिप्राय ले रहे हैं। यह जनता की अज्ञानता से अनुचित लाभ उठाना नहीं तो क्या है? और अलङ्कार मान लेने से इतिहास का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

पोपजी—वही जीवात्मा नौ द्वारोंवाले मनुष्य-शरीर में रहता है।

तोपजी—यदि पुस्तक में केवल 'नौ द्वारोंवाली नगरी' ही लिखा होता तो भी कदाचित् मानवशरीर की कल्पना सम्भव हो जाती, परन्तु वहाँ तो लिखा है कि "जिसके चारों ओर उद्यान लगे हुए थे, चारों ओर खाई खुदी हुई थी और जिसमें चौबारे और झरोखे बन्दनवारों से सजे हुए थे और जो नगरी सोने और चाँदी की चोटियोंवाले भव्य भवनों से ठसाठस भरी हुई थी तथा हीरे, मोती, जवाहर और लालों से जिसके फर्श बने हुए थे। इस नगरी में बैठक, चौक, सड़कें, खेल के मैदान, बाजार, विश्राम-स्थल और मूँगों से बनी हुई वेदियाँ विद्यमान थी।"

अब बताइए कि उपर्युक्त विशेषणों की विद्यमानता में इस लेख से मानव-शरीर का अभिप्राय लेना स्पष्ट धोखा देना है या नहीं, क्योंकि मानव-शरीर में उपर्युक्त खाई आदि का अस्तित्व नहीं है।

पोपजी—अज्ञात मित्र जो सबको जानता है, वह ईश्वर है।

तोपजी—पुस्तक को तनिक आँख खोलकर पढ़ें कि क्या लिखा है? जब पुरञ्जन राजा स्त्री के रूप में अपने पति की चिता पर बैठकर जलने को तैयार हुआ तो "इतने में वहाँ उसका कोई पुरातन आत्मज्ञानी मित्र आया और हृदय को चीर देनेवाले उपदेश से रोनेवाली उस वैदर्भी नाम की स्त्री को धैर्य प्रदान करके कहने लगा—मैं तेरा पुराना और अज्ञात नाम का पुत्र हूँ, तू क्या स्मरण नहीं करता?" अब तनिक बतलाएँ तो सही कि इस लेख में उपदेश करनेवाले ब्राह्मण से क्या अभिप्राय है। आपकी निर्मूल कल्पना के अनुसार यहाँ ईश्वर अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता, क्योंकि परमात्मा होना भिन्न है और आत्मज्ञानी होना और बात है। यहाँ आत्मज्ञानी का वर्णन है, न कि परमात्मा का।

पोपजी—सुन्दरी स्त्री जो पुरञ्जन को मिली थी, वह बुद्धि है।

तोपजी—सुन्दरी नारी से बुद्धि का ग्रहण कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ पर लिखा है कि—वह स्त्री "सोलह वर्ष की अवस्थावाली थी, अनेक प्रकार के आभूषणों को

धारण किये हुए थी, वह बहुत सुन्दरी थी, इसकी नाक, दाँत, कपोल और मुख अत्यन्त सुन्दर था। इसके दोनों कानों की बनावट एक-सी थी। इनमें उसने कुण्डल पहन रक्खे थे। वह पीली साड़ी पहने हुए थी। उसका रंग साँवला था और सोने की तगड़ी पहने हुए थी। वह सुन्दर चाल चलती थी और यौवन के कारण यौवन को प्रकट करनेवाले एकसार, गोल जुड़े हुए अपने स्तनों को लज्जा के कारण बार-बार आँचल से ढक रही थी।"

कहिए पोपजी महाराज! इस लेख की विद्यमानता में आप सुन्दरी नारी से बुद्धि का अर्थ कैसे ले-सकते हैं, क्योंकि बुद्धि में उपर्युक्त विशेषताएँ नहीं हो सकतीं।

पोपजी—पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ दस सेवक और रथ के दस घोड़े हैं।

तोपजी—वहाँ के लेख को तो देखिए! वह स्त्री ऐसे दस सेवकों के साथ वहाँ आयी थी, जिनमें से "प्रत्येक सेवक सौ-सौ नायिकाओं का पति था।" अब यहाँ सेवकों को इन्द्रियों पर घटाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय के साथ सौ सेवकों का अस्तित्व नहीं है।

पोपजी—सेवकों के साथ जो सैकड़ों स्त्रियाँ आयी थीं, वे इन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं।

तोपजी—पुस्तक में तो सेवकों के साथ जानेवाली स्त्रियों का चिह्न भी नहीं है। आप अलङ्कार की धुन में यूँ ही कपोलकल्पित कथाएँ घड़ रहे हैं।

पोपजी—प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—पाँच सिरोंवाला साँप है।

तोपजी—प्रथम तो प्राण दस होते हैं—पाँच प्राण और पाँच उपप्राण; तथापि इस लेख को पुस्तक में पढ़कर संगति तो लगाएँ—"जिसकी शक्तियों का गन्धर्वों ने हरण कर लिया है, जिसके अङ्ग ढीले पड़ गये हैं, ऐसा वह नाग नगर में से निकलकर जाने लगा। उस समय यवन शत्रुओं ने उसे वहीं रोक दिया, अतः वह विलाप करने लगा।" भला! इस लेख की विद्यमानता में पाँच सिरवाले सर्प से पाँच प्राणों की कल्पना करना धोखा देना नहीं तो क्या है? पुराणों में उपर्युक्त बातों की संगति नहीं बैठती।

पोपजी—ग्यारह सौ पुत्रों से अभिप्राय इन्द्रियों की वासनाएँ हैं और पुत्रियों से तात्पर्य बुद्धि की वृत्तियों से है।

तोपजी—ठीक है, बनावट इसे कहते हैं, परन्तु पुस्तक में तो राजा ने पुत्र और पुत्रियों का विवाह भी कर दिया है और उनसे सन्तानें भी उत्पन्न हुईं। तनिक पुस्तक को पढ़ें—

"इसके पश्चात् इस पञ्जाब के राजा पुरञ्जन ने पिता के वंश को चलानेवाले अपने पुत्रों का योग्य कन्याओं के साथ और पुत्रियों का योग्य वरों के साथ विवाह कर दिया। उन पुत्रों से भी प्रत्येक के सौ-सौ पुत्र हुए, जिससे राजा पुरञ्जन का वंश सम्पूर्ण पञ्जाब में फैल गया।"

भला! इस लेख को साथ जोड़कर तनिक अपने अलङ्कार का रूपक तो बनाकर दिखलाएँ कि वासनाओं और वृत्तियों का विवाह होकर उनकी सन्तान पाञ्चाल (पञ्जाब) देश की राजा कैसे बनेगी?

पोपजी—कुमारी कन्या मृत्यु है, जिसने राजा को चोटी से पकड़ा था।

तोपजी—आपको झूठ बोलने का कितना अभ्यास है? भला! पुस्तक में कहीं चोटी से पकड़ने का नाम भी है? यदि नहीं है तो यूँ ही घर से घड़ लेने का क्या अर्थ है? यही न कि अलङ्कार बन जाए, चाहे सौ गप्प मारने पड़ें।

पोपजी—और पुरञ्जन की नगरी को आग लगा दी, अर्थात् मृत्यु के पश्चात् शरीररूपी नगरी को जला दिया जाता है।

तोपजी—पुस्तक में नगरी के जलाने का कहीं भी वर्णन नहीं है, पता नहीं आपको कहाँ से आकाशवाणी हो गयी?

पोपजी—अब तनिक बताएँ कि कथा सच्ची है या नहीं?

तोपजी—देख लीजिए, आपके बिछाये हुए पोप-जाल का तार-तार बिखेर दिया है या नहीं? रहा कथा का प्रश्न! जैसे अन्य पुराण में असम्भव कथाएँ भरी पड़ी हैं, वैसे ही यह भी है, परन्तु यह अलङ्कार कदापि नहीं है।

पोपजी—अस्तु! इस प्रकार के वर्णन को समाधिभाषा अर्थात् आध्यात्मिक भाषा कहते हैं।

तोपजी—आप कृपा करके तनिक इस कथा को भी शरीर पर घटाते जाएँ। ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय ७१ में एक कथा आती है—

"श्रीकृष्ण की एक स्त्री थी, जिसका नाम जाम्बवती था। उसके उदर से कृष्ण के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम साम्ब था। वह अत्यन्त सुन्दर था। नारदजी जब कभी द्वारका में आते थे तो सब राजकुमार नारदजी को प्रणाम करते थे, परन्तु अपने सौन्दर्य के अभिमान में चूर साम्ब प्रणाम न करता था। नारदजी अवसर की खोज में थे कि इसे दण्ड दिया जाए। एक बाार की बात है कि श्रीकृष्णजी जलक्रीड़ा करके उद्यान में अपनी स्त्रियों के साथ मद्यपान कर रहे थे। इस समय नारदजी ने साम्ब के पास जाकर कहा कि श्रीकृष्णजी तुम्हें उद्यान में बुला रहे हैं। नारद के कथन के अनुसार साम्ब वहाँ चला गया। साम्ब के पहुँचते ही कृष्ण की सब स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य के कारण उसपर लट्टू हो गयीं और साम्ब को देखकर उन सबका वीर्यपात हो गया। इतने में नारदजी भी वहाँ पहुँच गये। जब सब स्त्रियों ने खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया तो उनका वह वीर्य वस्त्रों में से छन-छनकर घास पर गिर पड़ा। यह देखकर कृष्णजी अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने साम्ब को शाप दिया—"तू कोढ़ी हो जा!" और स्त्रियों को शाप दिया कि "तुम डाकुओं से भगाई जाकर दुःख उठाओगी।"

कृपा करके तनिक इस सांसारिक इतिहास को भी समाधि भाषा के द्वारा शारीरक कथा में प्रस्तुत करें और यह भी बताने की कृपा करें कि व्यासजी ने इसमें वेद के कौन-से तत्त्व का दार्शनिक रूप में वर्णन करके हिन्दुओं को इस ओर प्रवृत्त किया है।

पोपजी—और जिसमें लौकिक रीति और लौकिक भावों की सहायता से विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को समझाने के लिए कई प्रकार के अलङ्कारों के साथ सरल भाषा में भाव बतलाये गये हैं, उसे लौकिक भाषा कहते हैं।

तोपजी—यह कल्पना सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि अलङ्कार बनाने से भाषा सरल नहीं बनती अपितु कठिन हो जाती है और भाव भी सरलता से समझ में नहीं आ सकते, अपितु साधारणजन अलङ्कारों के चक्कर में पड़कर अनेक ग़लत धारणाओं के कारण मार्ग-भ्रष्ट हो जाते हैं और अलङ्कारों को ही सच्ची घटना स्वीकार करके वास्तविकता से कोसों दूर रहते हैं।

पोपजी—दूसरी लौकिक भाषा को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हुए हम महाभारत की एक कथा प्रस्तुत करते हैं।

तोपजी—आपने महाभारत का नाम लिखकर ही कथा लिख दी। यह नहीं बतलाया कि

यह कथा कौन-से पर्व में, किस अध्याय की है। यदि आप इस कथा का पूरा पता लिख देते तो इस कथा की भी वही दुर्गति होती जो पुरञ्जनवाली कथा की हो चुकी है। यह कथा स्वीकार करने के योग्य नहीं है। प्रतीत होता है कि आपने महाभारत के नाम से झूठी कथा बनाकर अपने स्वार्थ के अनुसार कथानक घड़कर यहाँ लिख दी है। कथा में अलङ्कार नहीं अपितु अलङ्कार के अनुसार कथा की कल्पना की गयी है। दूसरी चालाकी आपने यह की है कि पुराणों को सत्य सिद्ध करते-करते कथा महाभारत की दे दी, तो क्या महाभारत भी पुराणों में सम्मिलित है? अस्तु। क्योंकि आपको पुराणों को निष्कलंक बनाने के लिए अलङ्कारों का भूत सवार हो रहा है, अतः हम एक ऐसी प्रसिद्ध कथा प्रस्तुत करते हैं जो महाभारत के आदिपर्व अध्याय १०४ में और भागवत के स्कन्ध नौ में राजा भरत की वंशावली में दी गयी है। कथा इस प्रकार है-

"उतथ्य नाम का एक ऋषि था। उसकी स्त्री का नाम ममता था। वह गर्भवती थी। उतथ्य ऋषि तप करने के लिए वन में चला गया। तब उतथ्य का छोटा भाई जिसका नाम बृहस्पति था और देवताओं का गुरु माना जाता था, उसकी ममता पर कुदृष्टि हो गयी और वह ममता के साथ मैथुन करने के लिए तैयार हो गया। यह देखकर ममता ने बृहस्पति से प्रार्थना की कि तेरे भाई का गर्भ मेरे उदर में वेद पढ़ता है और तेरा वीर्य भी अमोघ है और दो के लिए पेट में अवकाश नहीं है, इसलिए कृपा कर इस काम से दूर रहो; परन्तु बृहस्पति ने जब ममता की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया तो अन्दर से पुत्र बोला कि चाचाजी! कृपा करो। गर्भ में स्थान कम है और मैं पहले ही तंगी में हूँ; परन्तु बृहस्पति ने उसकी भी एक न सुनी और लगा सनातनधर्म करने। जब वीर्य का गर्भ में प्रविष्ट होने का समय आया तो लड़के ने अन्दर से पैरों की दोनों एड़ियाँ जोड़कर मार्ग बन्द कर लिया और वीर्य अन्दर जाने की बजाय पृथिवी पर गिर पड़ा। जब बृहस्पति ने अपने वीर्य को नीचे गिरा हुआ देखा तो लड़के को शाप दिया कि तू अन्धा पैदा होगा, अतः दीर्घतमा ऋषि अन्धा पैदा हुआ और उससे राजा बलि ने अपनी स्त्री सुदेष्णा के द्वारा अपना वंश चलाया, और जो वीर्य नीचे गिर पड़ा था उससे ऋषि भरद्वाज उत्पन्न हुए जोकि आपके दादा गुरु थे और जिनसे आप-जैसे अनेक लोगों के वंश चले।"

अब कृपा करके अपनी कल्पित लौकिक भाषा के द्वारा बतलाएँ कि इस कथा में वेद के कौन-से तत्त्व को सरल भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है और कथा को तिलाञ्जलि देकर किस परिणाम को ग्रहण करने का उद्देश्य यहाँ निहित है?

पोपजी-तीसरी भाषा परकीय है, जिससे पुराणों के इतिहास के द्वारा धर्म की वास्तविकता समझाई गयी है। उदाहरणार्थ-सच बोलो, धर्म का पालन करो। यदि ऐसे उपदेशों को उदाहरणों के द्वारा समझाया जाए तो लोगों पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। जैसाकि विद्यार्थियों को पाठ कण्ठस्थ कराने के लिए उदाहरण पाठ की आत्मा होते हैं। इस भाषा के ज्ञान के लिए हम एक कथा प्रस्तुत करते हैं- "एक त्रिपुरसुर राक्षस था" आदि-आदि।

तोपजी-आपने इस कथा का कोई पता नहीं लिखा कि यह कथा कौन-से पुराण में कहाँ है? पहली पुरञ्जनवाली कथा में भागवत का चौथा स्कन्ध लिखकर अध्याय आदि हड़प कर गये। दूसरी ब्राह्मणवाली कथा में केवल महाभारत का नाम लिखकर पर्व, अध्याय कुछ भी नहीं दिया, अब तीसरी कथा में पुस्तक का नाम भी लुप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि यह कथा सर्वथा बनावटी है। क्या सनातनधर्म का सारा काम इसी प्रकार

की सट्टेबाजियों से चलता है? इस प्रकार काम कब तक चलेगा? पुराणों के नाम से अपने स्वार्थ के अनुसार कथाएँ घड़कर और उनमें अलङ्कार दिखाकर आप जनता को कब तक धोखा दे सकेंगे?

गर हमीं मक़तब अस्त वो हमीं मुल्ला। कारे-तिफलाँ तमाम ख्वाहिद शुद॥[१]

यह काठ की हाँडी चूल्हे पर कब तक सुरक्षित रहेगी? यदि कथा के नक़लीपन को भी दृष्टि से ओझल कर दिया जाए, तो भी यह कथा आपके दावे का समर्थन नहीं करती। इसमें दावा गन्दुम (गेहूँ) है तो उदाहरण चीना (वे अन्न जिन्हें पक्षी खाते है) है। आप दावा तो यह करते हैं कि परकीय भाषा में पुराणों के इतिहास के द्वारा धर्म की वास्तविकता समझाई जाती है, जैसे विद्यार्थियों को उदाहरण देकर पाठ-समझाया जाता है, परन्तु आप त्रिपुरासुर की कथा देकर उसका अलङ्कार घड़ रहे हैं, जो आपके दावे के सर्वथा विरुद्ध है। आपको चाहिए तो यह था कि आप 'सच बोलो, धर्म का आचरण करो' की शिक्षाओं को अपने दावे के अनुसार किसी सच्चे धर्मात्मा का इतिहास पुराणों में से उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करके समझाते और लोगों पर प्रभाव डालते, परन्तु लग पड़े बनावटी कथा देकर अलङ्कार छाँटने, परन्तु इसमें आपका भी क्या अपराध है! आपके बस की बात नहीं। पुराणों को निष्कलंक सिद्ध करने की धुन में आपने अपनी बुद्धि और हृदय को भी पौराणिक गढ़े में गिराकर चकनाचूर कर दिया है।

आपने कई प्रकार की भाषाओं की कल्पना की और कई कथाओं को तोड़-मरोड़कर और जाली घड़कर प्रस्तुत किया, परन्तु रहे कोल्हू के बैल की भाँति वहीं-के-वहीं और अभी तक भी **'हुनूज़ दिल्ली दूरअस्त'**[२] वाली बात यथापूर्व आपके समक्ष है। पुराणों को निष्कलंक सिद्ध करने में आप बुरी तरह असफल हुए हैं। मैंने पहले ही कहा था कि यह बेल सिरे चढ़ती दिखाई नहीं देती। वही हुआ। बेल मँढे नहीं चढ़ी। अब कोई और चाल चलिए।

पोपजी—पुराणों में यथार्थ, रोचक, भयानक, आलङ्कारिक और ऐतिहासिक—इन पाँच रूपों से भाषाओं का वर्णन हुआ है।

तोपजी—आपकी कल्पित तीन भाषाएँ तो परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो चुकी हैं, अब इन भाषाओं के पाँच रूपों की भी परीक्षा हो जाती है। तनिक धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करें।

पोपजी—यथार्थ शब्द से पता चलता है कि जो बात जैसी हो उसका वैसा ही वर्णन यथार्थ रूप कहलाता है, जैसाकि पुराणों में राजवंशों और महापुरुषों का वर्णन किया गया है।

तोपजी—इस बात से स्पष्ट हो गया कि यथार्थ के अतिरिक्त रोचक और भयानक आदि में जो बात जैसी है उसका वैसा ही वर्णन नहीं किया गया है, अपितु लोगों को पुचकारने और धमकाने के लिए सर्वथा झूठे और व्यर्थ के कथानक घड़े गये हैं, जिनमें लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक झूठ-जैसा महापाप पुराणों के द्वारा लोगों के गले में बाँध दिया गया है तथा लोगों को पुचकारने और डराने के लिए एक-दूसरे से बढ़कर गप्प मारी गयी हैं, जिनके कारण लोग वास्तविकता से अनभिज्ञ रहते हुए गप्पों को

---

१. यदि यही विद्यालय है और यही अध्यापक हैं तो बच्चों का काम तो समाप्त ही समझो। —**जगदीश्वरानन्द**

—**जगदीश्वरानन्द**

२. अभी दिल्ली दूर है।

ठीक जानकर दु:ख उठा रहे हैं। अच्छा, अब आपने पाँच भागों में से चार को तो स्वयं ही गप्प स्वीकार कर लिया। अब केवल पुराणों का एक भाग शेष रह गया, जिसे आप यथार्थ कहते हैं। इसके लिए आपकी प्रतिज्ञा है कि इस भाग में वैसा लिखा है गया है जो वास्तव में सत्य है, और इसमें आपने राजवंशों और महापुरुषों के वर्णन को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। यदि पुराणों का अध्ययन किया जाए तो आपका उपर्युक्त दावा भी सर्वथा झूठ सिद्ध होता है।

सबसे पूर्व राजवंशों को ले-लीजिए, क्या आपके विचार में यह यथार्थ है कि चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा को बलात् पकड़कर उससे सम्भोग किया और उससे बुध नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ? क्या बुद्ध ने इला नाम की स्त्री, जोकि एक मास पुरुष और एक मास स्त्री रहती थी, से भोग करके सन्तान उत्पन्न की, जिससे चन्द्रवंश चला? क्या आपके विचार में यह यथार्थ है कि सूर्य ने अपनी सगी भतीजी संगीता के साथ विवाह करके सूर्यवंश की नींव डाली? और क्या यह यथार्थ है कि बृहस्पति ने अपने भाई उतथ्य की गर्भवती स्त्री ममता से बलात् मैथुन किया और जो वीर्य पृथिवी पर गिरा उससे भरद्वाज ऋषि उत्पन्न हुआ, भरत के कोई सन्तान न होने से उसने भरद्वाज को गोद लिया, जिससे राजा भरत का वंश चला?

यह तो रही वंशों की संक्षिप्त कथा, अब महापुरुषों की कथा भी सुन लीजिए। क्या यह यथार्थ है कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री से, विष्णु ने अपनी माँ और महादेव ने अपनी बहिन से विवाह किया? क्या यह यथार्थ है कि ब्रह्मा, विष्णु और महादेव तीनों सर्वथा नंगे, लिंग हाथ में लेकर मैथुन करने के लिए अनसूया पर टूट पड़े? क्या यह यथार्थ है कि राजा दशरथ के यज्ञ में तीन सौ पशु और घोड़े मारे गये और कौसल्या का घोड़े से समागम कराया गया और घोड़े की चर्बी से ब्राह्मणों ने हवन किया? क्या यह यथार्थ है कि राम ने हिरनों को मारकर उनके मांस से यज्ञ किया? क्या यह यथार्थ है कि योगिराज श्रीकृष्णजी ने अपनी मामी राधा से विवाह किया, गोपियों से सम्भोग किया और कुब्जा के साथ रातभर इतना मैथुन किया कि प्रात:काल तक वह मर ही गयी? क्यों हिन्दूधर्म और हिन्दूजाति की जड़ों पर आप लोग अपने स्वार्थ में पड़कर कुल्हाड़ा चला रहे हैं और मद्यपान, मांस-भक्षण, दुराचार, चोरी, झूठ, जुआ आदि महापापों की शिक्षा देनेवाले उपर्युक्त दोषों से ऋषि-मुनियों और देवताओं को कलङ्कित करनेवाले इन पुराणों की वकालत कर रहे हैं?

पोपजी—रोचक वह रूप है, जिससे मनुष्य का ध्यान आकर्षित किया जाए। पुराणों में रोचक रूप का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। स्थान-स्थान पर अनेक मनोहर कथाओं के द्वारा उपदेश किया गया है, जिससे मनुष्य का ध्यान बरबस उस ओर जाकर उत्कृष्ट चाल-चलन की शिक्षा मिलती है।

तोपजी—किसी धर्म के सिद्धान्तों को रोचक बनाकर वर्णित करना और इसमें रोचक दृष्टान्त देकर जनसाधारण को उपदेश करना तो उचित ही है, परन्तु वे दृष्टान्त और उदाहरण असम्भव और चरित्रहीनता की शिक्षा देनेवाले न हों। दु:ख से कहना पड़ता है कि पुराणों में इस शैली का प्रयोग नहीं किया गया। पुराणों में इस प्रकार की कथाएँ वर्णित की गयी हैं कि उनसे उत्तम चाल-चलन की शिक्षा तो क्या धूल मिलनी थी, उलटी दुराचार की शिक्षा मिलती है। उदाहरण के रूप में शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अध्याय १९

में एक कथा आती है–

"ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम दक्ष था। उसके एक पुत्री थी, जिसका नाम सती था। उस सती का विवाह महादेवजी के साथ निश्चित हुआ। जब विवाह का समय आया तो दक्ष ने अपने पिता ब्रह्मा से प्रार्थना की कि महाराज! विवाह-संस्कार आप ही कराएँ। अन्ततः ब्रह्माजी अपनी पोती सती का विवाह-संस्कार महादेवजी के साथ कराने लगे। जिस समय परिक्रमा होने लगी तो सती के दोनों पैर नंगे हो गये। ब्रह्माजी इनको देखकर काम में मस्त हो गये और इसके शरीर के अन्य अङ्गों को देखने की अभिलाषा करने लगे। ज्यूँ-ज्यूँ ब्रह्माजी सती के अङ्गों को देखते जाते थे त्यूँ-त्यूँ उनका कामदेव बढ़ता जाता था। अन्ततः ब्रह्माजी ने काम से विवश होकर सती का मुख देखना चाहा। इसके लिए उपाय यह किया कि हवनकुण्ड में गीली लकड़ियाँ डाल दीं और घी थोड़ा डाला, जिससे सारी वेदी में धुआँ-ही-धुआँ हो गया। धुँए के कारण जिस समय महादेवजी आँखें मलने लगे तो झट कपड़ा उठाकर ब्रह्माजी ने सती का मुख देख लिया। जब ब्रह्माजी बार-बार सती का मुख देखने लगे तो उनका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार नहीं रहा और ब्रह्माजी का वीर्य धोती में निकल गया और इससे वृष्टि करनेवाले चार प्रकार के बादल उत्पन्न हुए।"

इसमें सन्देह नहीं कि कथा में आपके सिद्धान्त के अनुसार बादलों की उत्पत्ति को पौराणिक दार्शनिकता के साथ रोचक बनाकर वर्णित किया गया है, परन्तु आप बतलाएँ कि क्या इस कथा से उत्तम चाल-चलन की शिक्षा मिलती है? वस्तुतः पुराण सदाचार की शिक्षा देनेवाले ग्रन्थ नहीं है।

पोपजी–किसी उपदेश को डरावना बनाकर वर्णित करना भयानक रूप होता है। जैसाकि पुराणों को पढ़ने से प्रतीत होता है कि किन कथाओं व शिक्षाओं में डरावने दृश्य दिखाकर दण्डों का वर्णन किया गया है, वह भयानक रूप है।

तोपजी–किसी उपदेश को डरावना बनाकर और दृष्टान्त देकर सुनाया जा सकता है, परन्तु वे दृष्टान्त असम्भव और ऋषि-मुनियों को कलङ्कित करनेवाले न हों और धर्मशास्त्र तथा वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध न हों। जब वेद और शास्त्र यह वर्णन करते हैं कि मरने के पश्चात् कर्मानुसार दूसरा जन्म मिलता है तो फिर बलात्कार करनेवाले स्त्री वा पुरुष का गर्म सलाइयों से मारा जाना और गर्म खम्भों के साथ लगाना वेद और शास्त्र के विरुद्ध दृष्टान्त है और लड़की के रुपये लेनेवाले का सूई के नाके से निकाला जाना सर्वथा असम्भव दृष्टान्त है। मानव धर्मशास्त्र में लिखा है कि दुराचारी पुरुष को लोहे के पलङ्ग पर लिटाकर नीचे आग जलाकर मारना चाहिए और दुराचारिणी स्त्री को भूमि में गड़वाकर कुत्तों से नुचवाकर मरवा डालना चाहिए। धर्मशास्त्र में वर्णित इन दण्डों के सम्बन्ध में इस प्रकार के भयानक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, जिनमें इस प्रकार के स्त्री-पुरुषों को दण्ड दिया गया हो।

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि पुराणों ने इस शैली पर भयानक रूप में उपदेश नहीं किया, अपितु जहाँ लोगों को बुरे कार्यों से भय दिलाया है वहाँ दूसरी ओर ऋषियों को बदनाम कर छोड़ा है। उदाहरण के रूप में वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ४८ में कथा आती है–

"गौतम मुनि अपने आश्रम में अपनी पत्नी अहल्यासहित तप करते थे। एक दिन वे नदी पर स्नान करने गये तो आश्रम को खाली देखकर और अवसर पाकर इन्द्र गौतम का

रूप धारण करके उसकी पत्नी अहल्या के पास गया और बोला कि–हे प्रिय! प्रेमी ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते। हे पतली कमरवाली! मैं तेरे साथ समागम करना चाहता हूँ।" अहल्या ने समझ लिया कि यह इन्द्र ही गौतम का रूप धारण करके आया है, अत: उसने इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए उसकी इच्छानुसार कार्य कर दिया और बोली 'हे इन्द्र! मैं तो कृतार्थ हो गयी, परन्तु तू शीघ्र चलता बन और गौतम से अपनी और मेरी रक्षा कर।' इन्द्र प्रसन्न होकर बोला–'हे प्रिये! तूने मुझे प्रसन्न कर दिया। अब मैं जिधर से आया हूँ उधर जाता हूँ।" यह कहकर इन्द्र कुटि से निकला ही था कि आगे से गौतम मिल गया। उसे देखकर इन्द्र के मुखमण्डल का रंग उड़ गया। ऐसी अवस्था में गौतम ने उसे शाप दिया 'क्योंकि तून मेरा रूप धारण करके यह पाप किया है, अत: तू आज से निष्फल हो जाएगा।' गौतम के क्रुद्ध होकर यह कहते ही इन्द्र के दोनों अण्डकोश उसी समय पृथिवी पर गिर पड़े और अहल्या को शाप दिया कि तू सहस्र वर्ष तक भूखी-प्यासी राख पर लोटती हुई सब प्राणियों से छिपकर रहेगी। जब इन्द्र ने देवताओं के समक्ष दुहाई दी तो देवताओं ने एक मेंढे के अण्डकोश काटकर इन्द्र को लगा दिये और अहल्या का राम ने उद्धार किया तो उसे गौतम ने फिर से ग्रहण किया।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह कथा दुराचारियों को शिक्षा देनेवाली और भयानक है, परन्तु इसमें अहल्या, गौतम और इन्द्र को कलङ्क लगाकर यह दृष्टान्त बनाया गया है, अत: पुराणों से सदाचार की शिक्षा मिलना असम्भव कार्य है।

पोपजी–इसी प्रकार एक ही तत्त्व को कहीं आध्यात्मिक भाव में और किसी पुराण में आधिदैविक भाव में और किसी में आधिभौतिक भाव में वर्णित किया हुआ है।

तोपजी–तीन भाषाओं की कल्पना तो आपकी पुराणों को निष्कलङ्क सिद्ध करने में असफल रही, और पाँच रूपों ने भी आपका साथ नहीं दिया। अब रह गये तीन भाव, उनका भी पता लग जाता यदि आप उनका लक्षण लिख देते और कोई उदाहरण भी पुराणों से दे देते, परन्तु रेत की दीवार खड़ी करके कभी क़िला (दुर्ग) बन सकता है?

पोपजी–पुराणों का एक बहुत बड़ा भाग ऐतिहासिक है। इतिहास में प्रत्येक प्रकार के मनुष्यों का वर्णन होता है। जो व्यक्ति चरित्रवान् था तो पुराणों में उसका सुचरित्र ही लिखा गया और दुराचारी का दुराचार लिखकर ही सत्य को प्रकट किया गया है।

तोपजी–पूर्वजों का इतिहास लिखने का तात्पर्य यह होता है कि हमारी आगे आनेवाली सन्तति हमारे पूर्वजों के धार्मिक और वीरता के कार्यों को पढ़कर धार्मिक और वीर बनें, परन्तु पुराणों को ऐतिहासिक लेख इसलिए नहीं माना जा सकता, क्योंकि इनमें हमारे पूर्वजों, ऋषियों, वीरों, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, राम, कृष्ण, नारद, अत्रि आदि पर मद्यपान, मांसभक्षण, दुराचार, चोरी, असत्य-भाषण आदि अनेक लाञ्छन लगाये गये हैं, जिनसे हमारे बच्चों को बजाय शिष्टाचार के दुराचार की शिक्षा मिलती है। पुराणों में बुद्धि और ज्ञान से शून्य अनेक असम्भव बातें लिखी गयी हैं।

पोपजी–पुराणों के लेखक का उद्देश्य यह कदापि नहीं था कि पुराणों में जो कुछ भी इतिहास अंश भला या बुरा लिखा गया है, उस सबको ही धर्म समझा जाए, अपितु उत्तम इतिहास को ग्रहण करके पालन करना और बुरे चरित्र से बचने का प्रयत्न करना उचित है।

तोपजी–परमात्मा आपका भला करे! बड़ी भागा-दौड़ी और झूठी कल्पनाओं के

पश्चात् अन्ततोगत्वा आप सन्मार्ग पर आ ही गये, परन्तु यह तो बतलाइए कि धर्म और अधर्म की कसौटी सिवाय वेद के और क्या हो सकती है? अतः वेद को कसौटी मानकर पुराणों में वर्णन किये गये इतिहासों की परख की जाए तो पुराणों के इतिहासों का वेदानुकूल धार्मिक सिद्ध होना असम्भव है।

पोपजी—शिक्षा के ग्रहण और त्याग के लिए दो उपाय लिखे गये हैं, एक तो यह कि पुराण-लेखक ने अच्छे और बुरे चरित्रों का फल भी साथ-साथ लिखा है।

तोपजी—प्रथम तो आपने दो उपायों में से एक लिखा है, दूसरे को हड़प ही गये। दूसरे, जो लिखा है वह भी पुराणों पर लागू नहीं होता, क्योंकि पुराणों में इस प्रकार के इतिहास भी आते हैं, जिनमें १. पापकर्म करनेवाले को उत्तम फल, २. उत्तम कर्म करनेवाले को बुरा फल, ३. निरपराध को दण्ड और ४. अपराधी को छोड़ देना, लिखा है।

१. पापकर्म करनेवालों को अच्छा फल मिलने में आप भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व ३, खण्ड ४, अध्याय १७ की कथा को ले-लीजिए। इसमें लिखा है कि—

"किसी समय भगवान् अत्रि अपनी पत्नी अनसूयासहित गंगा-किनारे तप करते हुए परमात्मा के ध्यान में मग्न थे। तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसके पास आकर कहने लगे—वर माँगो। जब अत्रि न बोला तो तीनों देवता उसकी पत्नी के पास गये। महादेव हाथ में लिंग पकड़े हुए, विष्णु इसके रस को बढ़ाते हुए और ब्रह्मा वेद का ज्ञान लोप करते हुए बोले—"हे मस्त आँखोंवाली! हमें यौवन का दान दे, अन्यथा हम मर जाएँगे।" पतिव्रता अनसूया क्रोध से काँपती हुई कुछ न बोली। तब इन तीनों ने अनसूया को मैथुन करने के लिए बलात् पकड़ लिया। तब उस मुनि-पत्नी अनसूया ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि "तुम तीनों मेरे पुत्र बनोगे और संसार के लोग महादेव के लिङ्ग की, ब्रह्मा के सिर की और विष्णु के चरणों की पूजा किया करेंगे।"

अब देखिए, इस कथा में महादेव, विष्णु और ब्रह्मा का अनसूया के पास नंगे जाने और उसे बलात् समागम के लिए पकड़ने के अपराध में दण्डनीय थे, परन्तु उन्हें दण्ड की बजाय यह उत्तम फल मिला कि इनके लिंग, सिर और चरणों की पूजा आरम्भ कर दी गयी। बताइए, क्या यह न्याय है? और पढ़नेवालों को इससे क्या शिक्षा मिल सकती है?

२. उत्तम=पुण्य कार्य करनेवाले को बुरा फल मिलने में आप ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण-जन्मखण्ड, अध्याय ३१, श्लोक ५९, से अध्याय ३३, श्लोक ५८ तक की कथा को ले-लीजिए। इसमें लिखा है कि—

"ब्रह्माजी वन में तप कर रहे थे कि मोहिनी नाम की वेश्या ने ब्रह्मा को मोहित करने के लिए उसके समक्ष नृत्य किया, राग गाया और उससे प्रार्थना की कि आप मेरे साथ सम्भोग करें। ब्रह्मा ने कहा—तू मेरी माता के समान है। मैं यह कार्य करने को तैयार नहीं। अन्ततोगत्वा मोहिनी ने ब्रह्मा को बलात् पकड़ लिया। अस्तु, ब्रह्मा ने किसी-न-किसी प्रकार अपने को बचाया और सम्भोग करने से सर्वथा मना कर दिया। इसपर मोहिनी ने उसे शाप दिया कि 'चूँकि तुमने मेरा अपमान किया है, अतः दीर्घकाल तक संसार में तुम्हारी पूजा नहीं होगी।' जब ब्रह्माजी ने नारायण के पास आकर शिकायत की तो नारायण ने भी मोहिनी का समर्थन किया कि सचमुच तुम अपराधी हो।"

यहाँ पर-स्त्री त्याग के कारण ब्रह्माजी को अच्छा फल मिलना चाहिए था, परन्तु उसे दण्ड मिला कि संसार में दीर्घकाल तक तुम्हारी पूजा नहीं होगी। इस कथा को पढ़कर

किसी को इससे कोई उत्तम उपदेश मिल सकता है?

३. **निरपराधी को दण्ड**—जब साम्ब को देखकर श्रीकृष्ण की स्त्रियों का वीर्यपात हो गया तो बताओ इसमें साम्ब का क्या अपराध था? परन्तु फिर भी श्रीकृष्ण ने उसे शाप दिया कि तू कोढ़ी हो जाएगा और वह कोढ़ी हो गया। इस कथा से कोई क्या शिक्षा ग्रहण कर सकता है?

४. **अपराधी को छोड़ देना**—जब बृहस्पति ने उतथ्य की गर्भवती स्त्री से बलात् मैथुन किया और लड़के ने अन्दर से पैर अड़ा दिये तथा बृहस्पति का वीर्य पृथिवी पर गिर पड़ा तो लड़के को तो बृहस्पति ने शाप दे दिया कि तू अन्धा पैदा होगा, परन्तु बृहस्पति को बलात्कार के अपराध में कोई दण्ड नहीं मिला, अपितु वह वैसे-के-वैसे ही देवताओं के गुरु बने हुए दनदनाते रहे।

इस प्रकार पुराणों के इतिहास मिथ्या हैं। वे इतिहास कहलाने योग्य नहीं हैं और न ही इस प्रकार की कथाओं को पढ़कर कोई व्यक्ति दुराचार को छोड़कर सदाचारी बन सकता है।

पोपजी—कुछ समय पूर्व आर्यसमाजी वायुयानों, वरुणास्त्र और वायव्यास्त्र आदि के वर्णन को असम्भव कहकर कटु आलोचना किया करते थे।

तोपजी—क्यों आप झूठ बोलने पर उधार खाये बैठे हैं? वैज्ञानिकों ने वायुयान को लगभग जर्मन के युद्ध के दिनों में ही आविष्कृत कर प्रसिद्ध किया है और आपके कथनानुसार ही वरुणास्त्र आदि का आविष्कार भी जर्मनी के युद्ध में ही हुआ है, परन्तु आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्दजी ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में वेदमन्त्रों के साथ आज से पचास वर्ष पूर्व लिखा था कि विमान आदि विद्याओं का मूल वेदों में विद्यमान है और सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के आरम्भ में ही ऋषिजी ने आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, नाग-पाश, मोहनास्त्र, पाशुपतास्त्र, शतघ्नी (तोप), भुषुण्डी (बन्दूक) आदि सभी अस्त्र-शस्त्रों का भारतवर्ष में होना स्वीकार किया है। फिर भला! आर्यसमाजी इनकी आलोचना क्यों करता? आर्यसमाज तो पुराणों की असम्भव गप्पों का ही खण्डन करता है।

पोपजी—और चन्द्रलोक, मङ्गललोक आदि के वर्णन को बड़ी गप्प समझते थे।

तोपजी—सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध आदि के सम्बन्ध में जो गणितज्योतिष से सिद्ध भूगोलविद्या है, आर्यसमाज ने कभी इन्कार नहीं किया, और जो इन ग्रहों के साथ कर्मों के फल का सम्बन्ध बतानेवाला फलितज्योतिष है उसका आर्यसमाज सदा से खण्डन करता है तथा सूर्य का घोड़ी से सम्भोग, चन्द्रमा का बृहस्पति की स्त्री तारा से बलात्कार और उससे बुध की उत्पत्ति आदि पौराणिक कथाओं को मिथ्या मानता है।

पोपजी—और दो या चार सिर या टाँगवाली हस्तियों की कथाओं को प्रकृति-नियम के विरुद्ध कहकर चिल्लाया करते थे।

तोपजी—वैद्यक शास्त्र के अनुसार इस प्रकार की सन्तानें विकृत होती हैं। प्रथम तो वे जीवित ही नहीं रहती और यदि रहती भी हैं तो आपके लेखानुसार नुमाइशों की ही शोभा बनने के योग्य होती हैं, सांसारिक कार्यकलाप के योग्य नहीं होतीं, अतः चार मुख का ब्रह्मा, पूँछवाला हनुमान् या सूँडवाला गणेश सिद्ध नहीं हो सकता।

पोपजी—वर्त्तमान युग में एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार हुआ है जिससे विभिन्न स्थानों पर आत्माओं को बुलाकर उनसे वार्त्तालाप किया जाता है। इससे सिद्ध हो गया है कि पितरों

अर्थात् मृतक पूर्वजों की आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराना और दान-पुण्य करना उचित है।

तोपजी—यदि यन्त्र के आविष्कार पर ही मृतकश्राद्ध का होना निर्भर है तो फिर मृतकश्राद्ध का प्रभु ही रक्षक है। यदि वह आज भारत से विदा न हुआ तो कल अवश्य हो जाएगा, क्योंकि आत्माएँ न बुलाई जा सकती हैं और न ही वे आकर बातचीत कर सकती हैं। यदि आत्माओं का आना और वार्त्तालाप करना सम्भव होता तो सरकार साण्डर्स की हत्या की छान-बीन में लगभग दो लाख रुपया क्यों व्यय करती? साण्डर्स की आत्मा को उस यन्त्र के द्वारा न्यायालय में बुला लिया जाता और पूछ लिया जाता कि तुम्हारी हत्या किसने की थी? बस, उसी को फाँसी दे दी जाती। पोपजी महाराज! पराई छाछ पर मूँछें न मुँडवाइए। पुनर्जन्म हो जाने के कारण आत्माओं का आना असम्भव है। वे केवल बुलानेवाले के मानसिक भाव ही होते हैं जो इस यन्त्र के द्वारा प्रकट होते हैं। इससे मृतकश्राद्ध सिद्ध करना मूर्खता है।

पोपजी—सबसे बड़ा आक्षेप पुराणों पर यह किया जाता है कि पुराणों में शिष्टाचार, सभ्यता और सदाचार से गिरी हुई बातें पायी जाती हैं।

तोपजी—इसमें क्या सन्देह है? श्रीकृष्ण पर मद्यपान, राम पर मांसभक्षण, ब्रह्मा, विष्णु और शिव पर पुत्री, माँ और बहिन से सम्भोग, शिव, ब्रह्मा और विष्णु का अनसूया को बलात् मैथुन के लिए पकड़ना, कृष्ण की स्त्रियों का अपने पुत्र को देखकर वीर्यपात होना, ब्रह्मा का पोती को देखकर वीर्यपात, कृष्ण का मैथुन से कुब्जा को मार देना, वेश्याओं का बिना फीस रविवार के दिन ब्राह्मणों के लिए द्वार खुले रखना आदि बातों का वर्णन करना क्या सदाचार, सभ्यता और शिष्टाचार में सम्मिलित किया जा सकता है?

पोपजी—पाठकगण! जो बात एक जाति में सभ्यता समझी जाती है, वही दूसरी जाति में असभ्यता समझी जाती है। एक समय में जिसको शिष्टता समझा जाता है, दूसरे युग में वही अशिष्टता समझी जाती हैं

तोपजी—आपके कथन से ही सिद्ध हो गया कि शिष्टता और सभ्यता काल्पनिक है। वह क्षण-प्रतिक्षण, देश-प्रतिदेश और युग-युग में बदलनेवाली है। इसलिए सभ्यता और शिष्टता को धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए कसौटी नहीं माना जा सकता, क्योंकि धर्म अपरिवर्तनशील है, अत: धर्म और अधर्म के निर्णय में कसौटी ईश्वरीय ज्ञान वेद ही हो सकती है, क्योंकि इसकी आज्ञा, जिसका नाम धर्म है, परिवर्तनरहित है और सब कार्यों, सब जातियों और सब देशों के लिए समान है।

पोपजी—जैसाकि नियोग की आज्ञा, जिसके अनुसार आर्यसमाजी जीवित पति की विद्यमानता में स्त्री को दूसरे व्यक्ति के पास जाकर सन्तानोत्पत्ति को वैध मानते हैं।

तोपजी—वेद भगवान् की आज्ञा है कि नपुंसक मनुष्य की स्त्री आपत्काल में वंश चलाने के लिए अथवा अपनी प्राकृतिक कामवासना की इच्छा को वश में रखने के योग्य न होने पर पति की और जातिवालों की आज्ञा के अनुसार दूसरे व्यक्ति से नियोग करके सन्तान प्राप्त कर सकती है। मनुजी महाराज इस प्रकार के पुत्र को क्षेत्रज पुत्र कहते हैं और वह सम्पत्ति का अधिकारी होने से वैध सन्तान स्वीकार किया गया है। इस नियम के अनुसार ही अञ्जना ने अपने पति केसरी के जीवित रहते हुए ही पवन से क्षेत्रज पुत्र हनुमान् को प्राप्त किया, इसी नियमानुसार पाण्डु के जीते हुए कुन्ती और माद्री ने धर्म से

नियोग करके युधिष्ठिर, वायु से भीम, इन्द्र से अर्जुन और अश्विनीकुमारों से नकुल और सहदेव को प्राप्त किया। नियोग की आज्ञा वेद के अनुसार होने से वैध और धर्म है, इसलिए आर्यसमाजी इसे मानते हैं।

पोपजी—परन्तु यही बात सनातन धर्मवालों के लिए असभ्यता है।

तोपजी—हाँ जी! वेद-स्मृति के अनुकूल और सनातनधर्म के अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी की प्रयुक्त नियोग की आज्ञा तो असभ्यता है, परन्तु दुराचार करना, गर्भ गिरवाना, वेश्या बनकर बाजारों में पेशा करना, ईसाई और मुसलमानों के घरों को बसाकर गोघातक सन्तान उत्पन्न करना और गुपचुप साधु-महन्तों और क़ब्रों के सेवादारों से सन्तान पैदा करना, यह सनातनधर्म में सभ्यता में सम्मिलित है। बलिहारी जाएँ ऐसी सभ्यता के!

पोपजी—छोटा बच्चा स्त्रियों में नग्न रह सकता है, परन्तु नवयुवकों के लिए यह लज्जा की बात है।

तोपजी—इसीलिए तो हम कहते है कि महादेव, विष्णु और ब्रह्मा का बिल्कुल नग्न होकर और लिंग हाथ में पकड़कर अनसूया के पास जाना और महादेव का सर्वथा नग्न होकर लिंग हाथ में लेकर दारु वन में ऋषि-पत्नियों में जाना आपके निश्चित किये हुए सिद्धान्त के अनुसार ही लज्जा की बात थी और इसका पुराणों में वर्णन करना भी असभ्यता, अशिष्टता और अनुचित था।

पोपजी—एक समय में एक पुरुष के लिए दो या अधिक स्त्रियों से विवाह करना जैसाकि राजाओं की रानियाँ होती हैं, असभ्यता नहीं मानी जाती।

तोपजी—सनातनधर्म में नहीं मानी जाती होगी, अन्यथा सारे सभ्य देशों और भारतवर्ष में यह कार्य असभ्य समझा जाता है, वेदविरुद्ध होने से पाप और दशरथ ने उसका दुष्परिणाम भी भोगा था।

पोपजी—परन्तु एक स्त्री का कई पुरुषों के साथ समागम करके सन्तान उत्पन्न करना असभ्यता समझा जाता हैं।

तोपजी—पति की मृत्यु आदि संकटों के समय एक के पश्चात् दूसरे कई पतियों से सन्तान उत्पन्न करना वेदानुकूल होने से असभ्यता नहीं है, परन्तु द्रौपदी का एक ही समय पर पाँच पतियों से, जटला का एक ही समय में सात पतियों से तथा वार्क्षी का एक ही समय में दस पतियों से सन्तान उत्पन्न करना निःसन्देह असभ्यता समझी जानी चाहिए।

पोपजी—आजकल भाई-बहिन और पिता-पुत्री का विवाह सभ्यता के विरुद्ध है, परन्तु अमैथुनी सृष्टि में इसे सभ्यता और सदाचार के अनुकूल समझा जाता था।

तोपजी—शाबाश सनातनधर्म के सपूतो, शाबाश! माँ और पुत्र के विवाह को क्यों छोड़ दिया? इससे तो बेचारे विष्णुजी पर संकट आ जाएगा। भला! यह तो बता दीजिए कि अमैथुनी सृष्टि में कोई किसी के माता-पिता, पुत्र-पुत्री और भाई-बहिन होते हैं? कदापि नहीं, क्योंकि अमैथुनी सृष्टि में कोई किसी के रज-वीर्य से उत्पन्न ही नहीं होता, अपितु सहस्रों पुरुष और स्त्रियाँ बिना किसी माता-पिता के यौवनावस्था में उत्पन्न होते हैं। उनमें से किसी का किसी के साथ वंशगत सम्बन्ध नहीं होता। इसलिए सृष्ट्यारम्भ में भाई-बहिन, पिता-पुत्री और माता एवं पुत्र के रिश्ते को सदाचार के अनुकूल बताना सनातनधर्म के दुराचार को सिद्ध करता है, क्योंकि वेद और शास्त्र इस प्रकार के विवाह का सर्वथा निषेध करके ऐसे रिश्तों को पाप बतलाते हैं।

पोपजी—और वस्तुतः इसमें (भाई-बहिन आदि के विवाह में) उस समय सदाचार से भ्रष्ट होने का विचार करना भी अनुचित था, क्योंकि अमैथुनी सृष्टि में स्त्री और पुरुष का वर्त्तमान युग-सा समागम भी सन्तानोपत्ति के लिए आवश्यक नहीं था, अपितु केवल विचार की तीव्र तरंग से ही बिना मैथुन के सन्तान उत्पन्न कर ली जाती थी।

तोपजी—अमैथुनी सृष्टि की आवश्यकता तभी पड़ती है, जब मानवीय वंश संसार में विद्यमान न हो और वह समय सर्गारम्भ ही होता है। सृष्ट्यारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति के पश्चात् फिर स्त्री और पुरुषों के परस्पर विवाह होने से मैथुनी सृष्टि चल पड़ती है। जब तक स्त्री-पुरुष का रज-वीर्य इकट्ठा न हो, तब तक पुरुष बिना स्त्री और स्त्री बिना पुरुष के सन्तानोपत्ति कर ही नहीं सकते। विचारों की तरंग से मनुष्यों ने न कभी सन्तान उत्पन्न की और न उत्पन्न हो सकती है। यह काम ईश्वर का है कि सर्गारम्भ में बिना माता-पिता के मनुष्यों को उत्पन्न करे, परन्तु मनुष्यों में पुरुष के बिना स्त्री के उदर से और स्त्री के बिना पुरुष का केवल अपने वीर्य से सन्तान उत्पन्न कर लेना सर्वथा असम्भव है। इस बात को यजुर्वेद अध्याय १९ मन्त्र ७६ में कहा है।[१] इसकी व्याख्या मनुस्मृति अध्याय ९, श्लोक ३३ तथा अध्याय १० श्लोक ७०-७१ में की गयी है[२] कि—

"स्त्री क्षेत्ररूप हैं और पुरुष बीजरूप है। खेत और बीज दोनों के मिलने से ही सब शरीरधारियों का उत्पन्न होना सम्भव है। अयोग्य क्षेत्र में डाला हुआ बीज वैसे ही नष्ट हो जाता है और बिना बीज के खेत भी कल्लर [ऊसर, बञ्जर] है।"

इस सिद्धान्त की विद्यमानता में आपका स्थिर किया हुआ बिना मैथुन के सन्तानोत्पत्ति का सिद्धान्त ग़लत और असम्भव है।

पोपजी—दूर क्यों जाते हो, मुसलमानों में निकट के रिश्तेदारों की लड़कियाँ ही ब्याही जाती हैं, परन्तु हिन्दुओं में ऐसा नहीं, अपितु इसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसी अवस्था में पुराणों की किसी कथा को अन्य स्थितियों को देखे बिना असभ्यता ठहराना अत्यन्त अनुचित और गलत है।

तोपजी—मुसलमानों की भी एक ही कही! क्या मुसलमानों की सभ्यता आपके धर्माधर्म का निर्णय करने में कसौटी मानी जा सकती है? मुसलमान तो गोमांस भी खाते हैं, तो क्या इससे पुराणों में वर्णित गोमांस-भक्षण उचित सिद्ध हो जाएगा? यदि नहीं तो फिर पुराणों में वर्णित माता, बहिन, पुत्री, भतीजी, मामी आदि से विवाह मुसलमानों का उदाहरण देकर उचित कैसे सिद्ध किये जा सकते हैं? और फिर सगी माँ, बहिन, बेटी से विवाह करना इस्लाम भी वैध नहीं मानता। अब अपने ब्रह्मा, विष्णु और महादेव की करतूत को कैसे उचित सिद्ध करोगे, जिन्होंने सगी पुत्री, माँ और बहिन से विवाह कर लिया? इसलिए इन कल्पनाओं और इधर-उधर भागने-दौड़ने से पुराणों की शिक्षा को आप धर्म और सभ्यता के अनुकूल सिद्ध नहीं कर सकते। धर्म और अधर्म का निर्णय करने के लिए, अन्तिम कसौटी वेद है जो इस प्रकार के निकट-सम्बन्धों को पाप बताता है, अतः निकट के रिश्ते प्रत्येक अवस्था में पाप हैं, चाहे पुराणों में उनका उल्लेख हो अथवा मुसलमानों

---

१. **रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम्। गर्भो जरायुनावृतऽ उल्बं जहाति जन्मना॥**

२. **बीजमेके प्रशंसन्ति क्षेत्रमन्ये मनीषिणः। बीजक्षेत्रे तथैवान्ये तत्रेयं तु व्यवस्थितः॥७०॥**
अक्षेत्रे बीजमुत्सृष्टमन्तरैव विनश्यति। अबीजकमपि क्षेत्रं केवलं स्थण्डिलं भवेत्॥७१॥ —सं०

में क्रियात्मक रूप में प्रचलित हो चुके हों। हिन्दू भी निकट-सम्बन्धों से इसलिए घृणा करते हैं कि निकट रिश्ते में विवाह वेद और शास्त्र-विरुद्ध होने से पाप हैं।

पोपजी—सृष्टि दो प्रकार ही होती है—एक अमैथुनी और दूसरी मैथुनी, अर्थात् एक मानसी और दूसरी स्त्री-पुरुष के मिलाप से।

तोपजी—अमैथुनी का मानसी अर्थ आपने कहाँ से निकाल लिया? अमैथुनी का सीधा अर्थ यह है कि जो स्त्री-पुरुष के मिलाप से उत्पन्न न हुई हो और मैथुनी जो स्त्री-पुरुष के मिलाप से उत्पन्न हुई हो।

पोपजी—ब्रह्मा की प्रथम देव और ऋषि-सृष्टि मानसी थी।

तोपजी—सर्गारम्भ में परमात्मा की ओर से मनुष्यों की उत्पत्ति होती है और चार ऋषियों के द्वारा वेदों का प्रकाश परमात्मा की ओर से होता है। जो लोग वेदों का ज्ञान प्राप्त करके उसपर आचरण करते हैं उन्हीं का नाम देव और ऋषि होता है। यदि ब्रह्मा से आपका तात्पर्य परमात्मा हो तो हमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु इस सृष्टि का नाम मानसी नहीं अपितु अमैथुनी होगा, क्योंकि परमात्मा के मन नहीं होता। यदि ब्रह्मा से आपका तात्पर्य किसी देहधारी मनुष्य से है तो वह बिना स्त्री से मैथुन किये सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकता।

पोपजी—सत्ययुग में सब ऋषि मानसिक शक्ति के धनी होने से मानस-सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति रखते थे।

तोपजी—यह बिल्कुल ग़लत है। सब ऋषियों की स्त्रियों का वर्णन पुराणों में आता है। पुराणों में तो ऋषि और देवताओं के सम्बन्ध में यह भी वर्णन आता है कि वे दूसरों की स्त्रियों से बलात् भोग कर लेते थे और बिना स्त्री से सम्भोग किये सन्तान उत्पन्न करना पौराणिक गप्प है।

पोपजी—परन्तु जब मानसिक शक्ति की कमी होती गयी, उस समय यज्ञादि करके दैवी शक्ति को अपने वश में करके घृत या चरु आदि से देवताओं की शक्ति से सन्तान उत्पन्न की जाती थी।

तोपजी—जिस प्रकार मानसिक सृष्टि पौराणिक गप्प है, उसी प्रकार देवसृष्टि भी पौराणिक गप्प ही है। हाँ, यह तो माना जा सकता है कि यदि किसी स्त्री के सन्तान न होती हो तो उसके इस रोग को दूर करने के लिए पुत्रेष्टियज्ञ अथवा अन्य किसी यज्ञविशेष का चरु खिलाया जाए, परन्तु गर्भधारण फिर भी पुरुष-सम्भोग से ही होता था जैसे दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टियज्ञ करके बची हुई खीर रानियों को खिलाई गयी। उनका रोग दूर हो गया तो दशरथ से रानियों में सन्तान उत्पन्न हुई। पुरुष-संयोग के बिना केवल घी या चरु खाने से किसी स्त्री के गर्भ ठहर जाना असम्भव और ग़लत है।

पोपजी—पश्चात् विद्या की कमी होने से जब यह शक्ति भी नष्ट हो गयी तब केवल मैथुनी सृष्टि पर ही सब-कुछ निर्भर हो गया।

तोपजी—सर्गारम्भ में परमात्मा के द्वारा मनुष्यों की उत्पत्ति के पश्चात् से आज तक बिना स्त्री-पुरुष के संयोग के न सन्तान हुई, न होती है और न होगी और न ही हो सकती है।

पोपजी—देवता और मनुष्य में बहुत भारी अन्तर है।

तोपजी—बस इतना ही अन्तर है कि साधारण व्यक्ति को मनुष्य कहते हैं और विद्वान्,

धर्मात्मा व्यक्ति को देव या देवता कहते है। रामायण में स्थान-स्थान पर सीता के लिए देवी और राम तथा दशरथ के लिए देव शब्द आता है। उदाहरण के रूप में एक श्लोक देना पर्याप्त होगा। जब दशरथ से कैकेयी ने वर माँगे तो राजा दशरथ ने राम को बुलाया उस समय पिता के पास जाते हुए राम ने सीता से कहा-

देवि देवश्च देवी च समागम्य मदन्तरे।
मन्त्रयेते ध्रुवं किञ्चिदभिषेचनसंहितम्॥ —वा० रा० अयो० १६।१५

अर्थ—हे देवि (सीता)! देव (दशरथ) और देवी (कैकेयी) इकट्ठे होकर निश्चय ही मेरे राज्यतिलक के सम्बन्ध में कुछ परामर्श कर रहे हैं।

इस श्लोक में देव शब्द स्पष्ट रूप से मनुष्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है। नाटकों में भी स्थान-स्थान पर मनुष्यों के लिए देव शब्द आया है। आपका यह कहना कि देवताओं को भूख-प्यास आदि नहीं सताती, सर्वथा ग़लत है। देखिए, शिवपुराण, रुद्रसंहिता, पार्वतीखण्ड अध्याय ५२ में लिखा है कि "महादेव के विवाह में सब ऋषि-देवता आदि गये और हिमाचल के यहाँ खूब भोजन किया।" यह तो आपकी और भी विचित्र बात है कि देवता का जन्म उसके पुत्र से भी हो सकता है। कोई उदाहरण तो दे दिया होता ताकि आपकी योग्यता का पता लग जाता! निष्कर्ष यह कि देवताओं के सम्बन्ध में कल्पित बातें बनाना व्यर्थ और गलत है। विद्वान् और धर्मात्मा मनुष्यों को ही देव और ऋषि कहते हैं।

पोपजी—देवताओं की योनि भोगयोनि है।

तोपजी—भोगयोनि तो पशु-पक्षी की होती है तो क्या देवता भी पशु ही होते हैं? क्या वे स्वतन्त्र कर्त्ता नहीं होते, केवल पशुओं की भाँति फल ही भोगते हैं? तनिक होश सँभालो और अपने स्वार्थ के लिए देवताओं को पशु मत बनाओ।

पोपजी—देवयोनि से किये हुए किसी प्रकार के भी कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ता। सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, बृहस्पति, अग्नि, वायु आदि देवताओं ने जो भी कर्म किये, उन्हें किसी कर्म का फल नहीं मिल सकता।

तोपजी—पुराणों के अध्ययन से पता लगता है कि सब पौराणिक देवताओं को कर्मों का फल मिलता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय ७९ में लिखा है—

"जमदग्नि अपनी स्त्री रेणुका के साथ भोग कर रहा था कि सूर्य ने विघ्न डाल दिया। इसपर जमदग्नि ने कहा—'क्योंकि तून आज मेरे रस में भंग डाल दिया, अतः तू मेरे शाप से पापी और राहू से ग्रसा हुआ होगा।' उस शाप के कारण ही आज तक सूर्य को ग्रहण लगता है।"

ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय ८० में लिखा है—

"जब चन्द्रमा ने बृहस्पति की स्त्री तारा को बलात् पकड़कर भोग लिया तब तारा ने चन्द्रमा को शाप दिय कि तू पापी, कलंकी और राहू[1] से ग्रसा हुआ होगा। इससे चन्द्रमा को ग्रहण लगने लगा।"

ब्रह्मा अपनी पुत्री शारदा के पीछे भागा तो उसके शाप से ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर नष्ट

१. राहु सूर्य को ग्रसता है, परन्तु यहाँ चन्द्रमा को भी राहू से ग्रसा जाना कहा है। अन्य पुराणों में राहू और केतू क्रमशः सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसते हैं। इस प्रकार पुराणों में वदतोव्याघात-दोष बहुत है।
—जगदीश्वरानन्द

हो गया। विष्णु ने जालन्धर की स्त्री से भोग किया तो उसके शाप से पत्थर बन गया।

शिवपुराण में जब सब देवता दुःखी होकर महादेव के पास गये तब वे पार्वती से भोग कर रहे थे। देवताओं के कहने से जब वे भोग करना छोड़कर खड़े हुए तो पार्वती ने देवताओं को शाप दिया– 'हे देवता लोगो! क्योंकि तुमने मेरे भोग में विघ्न डालकर मुझे वन्ध्या कर दिया, अतः आज से तुम्हारी सब स्त्रियाँ वन्ध्या हो जाएँगी।'

एक और सुनो! इन्द्र ने अहल्या से भोग किया तो गौतम के शाप से इन्द्र के अण्डकोश गिर गये। तात्पर्य यह कि पुराण इस बात से भरे पड़े हैं कि देवताओं को भी उनके कर्मों का फल मिलता है, अतः पोपजी का दावा उनके अपने ही पुराणों के विरुद्ध है।

पोपजी–मनुष्ययोनि में शरीर स्थूल होते हैं, देवयोनि में शरीर केवल मानसिक और आत्मिक।

तोपजी–परमात्मा ऐसी दुर्दशा किसी की न करे जैसीकि आजकल सनातनधर्म के पण्डितों की हो रही है। बेचारे पुराणों के झूठ को सच सिद्ध करने की धुन में सैकड़ों झूठ बोलकर भी सफल नहीं होते। कभी कहते हैं कि देवताओं को भूख–प्यास नहीं लगती तो कभी कहते हैं कि ये भोग–योनियाँ हैं, सब प्रकार के भोग भोगते हैं। भला! जब भूख–प्यास आदि इच्छाएँ होती ही नहीं तो सब प्रकार के कौन–से भोग भोगते हैं? कभी कहते हैं कि देवों को कर्मों का फल नहीं मिलता, कभी कहते हैं कि इनका शरीर आत्मिक होता है। भला! जब शरीर आत्मिक ही है तो शारीरिक कर्म कैसे करते हैं? तात्पर्य यह कि जो मुँह और जी में आता है कहते हैं, आगे–पीछे का पता ही नहीं रहता। परमात्मा इनको बुद्धि प्रदान करें कि वे पुराणों की गप्पों को सत्य सिद्ध करने के व्यर्थ प्रयत्नों को छोड़कर वेदों के स्वाध्याय में लगें और उनके अनुसार चलकर अपने जीवन को सफल बनाएँ।

पोपजी–वे नियम जो स्थूल शरीर पर घटित हों, स्वभावतः उन नियमों से भिन्न होने चाहिएँ, जो आत्मा या मन पर लागू हो सकें।

तोपजी–परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को उत्पन्न करने के पश्चात् उन्हें धर्म और अधर्म का उपदेश करने के लिए चारों वेदों का प्रकाश किया। यह विधान सब मनुष्यों पर लागू है। देवयोनि कोई पृथक् योनि नहीं जैसीकि आप कल्पना कर रहे हैं, अपितु मनुष्यों में ही जो विद्वान्, धर्मात्मा और योगी लोग होते हैं, उन्हें देव कहते हैं। प्रमाण के लिए यजुर्वेद अध्याय ३१, मन्त्र १६ में देव शब्द का अर्थ योगी ही हो सकता है। महीधर ने भी यही अर्थ किया है–**एवं योगिनोऽपि दीपनाद्देवाः।** इस प्रकार योगी भी प्रकाशमान होने से देव हैं, अतः सब मनुष्यों के लिए चाहे वे देव अर्थात् विद्वान् योगी हों और चाहे वे पितर अर्थात् ज्ञान–बल से हमारी रक्षा करनेवाले हों, परमात्मा ने एक ही विधान बनाया है, जो सबपर लागू है।

जब आप भी अपनी मिथ्या कल्पना में यह स्वीकार करते हैं कि देव अपनी इच्छानुसार कई शरीर और रूप धारण कर सकते हैं, तो आपके सिद्धान्त के अनुसार भी वे जब–जब मनुष्य का शरीर धारण करके संसार में कोई भी काम करेंगे तो निश्चय ही उनपर भी वही विधान लागू होगा, क्योंकि वे मानस या आत्मिक शरीरों से तो संसार में कोई स्थूल कर्म कर ही नहीं सकते, अतः प्रत्येक अवस्था में देवों और मनुष्यों के लिए

एक ही विधान, एक-जैसे नियम लागू हैं।

पोपजी—मनुष्यों का अपनी बहिन आदि से विवाह करना धर्म के विरुद्ध है, परन्तु सर्गारम्भ के स्वामी दयानन्द के भी जवान-जवान जोड़ों ने आपस में विवाह करके सन्तान पैदा की थी।

तोपजी—जब तक कोई किसी के शरीर के अंश से उत्पन्न न हो तब तक किसी का किसी के साथ माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बहिन-भाई आदि का रिश्ता माना ही नहीं जा सकता, क्योंकि सर्गारम्भ में सहस्रों स्त्री-पुरुषों में से कोई किसी के अंश से आपस में पैदा ही नहीं हुए थे, अतः उनके परस्पर माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बहिन-भाई के सम्बन्ध थे ही नहीं, फिर इस दृष्टान्त से बहिन-भाई आदि का विवाह सिद्ध नहीं हो सकता।

पोपजी—मानना पड़ेगा कि हमारा और सृष्टि के ऋषियों का मुक़ाबला कभी भी नहीं हो सकता।

तोपजी—हम सिद्ध कर आये हैं कि मानसी कोई सृष्टि होती ही नहीं, यह केवल पोपजी की कल्पना हैं; परन्तु इसकी परीक्षा भी कर लें। हाँ तो पोपजी! यह बतलाने की कृपा करें कि जिसे आप अपनी मिथ्या कल्पना के अनुसार मानसी सृष्टि कहते हैं, इसमें ऋषि या देवता लोग अपने शरीर का कोई अंश सम्मिलित करते हैं या नहीं? और जिन स्त्रियों से मानस सृष्टि उत्पन्न करते हैं उन स्त्रियों के शरीर का अंश इस मानस सृष्टि में सम्मिलित होता है या नहीं? यदि यह मानो कि इस मानस सृष्टि में ऋषि, देवता और स्त्रियों के शरीर का किसी प्रकार का कोई अंश सम्मिलित नहीं होता तो फिर इस प्रकार तो इस मानसी सृष्टि में कोई माता-पिता, पुत्र-पुत्री और बहिन-भाई होता ही नहीं; और यदि यह कहो कि मानसी सृष्टि में भी दोनों पक्षों में से दोनों का या एक का शारीरिक अंश अवश्य सम्मिलित होता है तो फिर इनमें माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बहिन-भाई का रिश्ता पक्का हो गया और वह सृष्टि भी मानसी नहीं रही, क्योंकि उसमें शारीरिक अंश सम्मिलित हो गया, इसलिए आपके कथानुसार भी ऐसा विवाह करनेवालों को पाप अवश्य लगेगा, अतः आपकी कल्पना से भी बहिन-भाई आदि का विवाह वैध सिद्ध नहीं होता।

पोपजी—देवसृष्टि अथवा ऋषिसृष्टि के सम्बन्ध में जो टीका-टिप्पणी की जाती है, वह अज्ञानता है।

तोपजी—हम सिद्ध कर चुके हैं कि सृष्टि के आरम्भ में जो अमैथुनी सृष्टि परमात्मा की ओर से उत्पन्न होती है, उसके सिवाय कोई भी मनुष्य, देवता और ऋषि बिना स्त्री से मैथुन के सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता, तथा मनुष्यों में से ही जो वेदों के विद्वान्, धर्मात्मा और योगी बन जाते हैं उन्हीं का नाम देवता और ऋषि होता है। इनका अस्तित्व मनुष्यों की अपेक्षा भिन्न प्रकार का नहीं होता, अतः परमेश्वर का विधान वेद सबपर एक-सा लागू होता है, अतः पुराणों के ऋषि और देवताओं के आचरण पर हमारा टीका-टिप्पणी करना सर्वथा सत्य और उचित है।

पोपजी—इस पुस्तक में पहला भाग शास्त्रार्थ का होगा जिसमें केवल दोनों पक्षों के उपदेशकों के कथन को ही रक्खा जाएगा। अपनी ओर से हम इसमें एक शब्द भी नहीं रक्खेंगे।

तोपजी—इस प्रतिज्ञा का आपने पालन नहीं किया, क्योंकि पण्डित श्रीकृष्ण शास्त्री ने अपने प्रश्नों के साथ एक भी वेदमन्त्र देकर अपने दावे को सिद्ध नहीं किया था, परन्तु

आपने प्रश्नों के साथ वेदमन्त्र अपनी ओर से जोड़ दिये हैं और स्थान-स्थान पर श्रीकृष्ण के मुख से कहला दिया कि "मैंने अपने प्रश्नों को वेदमन्त्रों के साथ स्थापित कर दिया है, आप उनका उत्तर क्यों नहीं देते?" वस्तुत: ऐसा श्रीकृष्ण ने कहा ही नहीं था। कई घटनाओं को आप छोड़ ही गये हैं, अत: आपने यह झूठी प्रतिज्ञा लिखकर जनता को धोखा दिया है, जिसकी हम अच्छी प्रकार से पोल खोलकर जनता के समक्ष रक्खेंगे।

शास्त्रार्थ पर समालोचना

पोपजी—शास्त्रार्थ का विषय यह था—'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं', परन्तु आर्यसमाजियों ने 'या अष्टादश पुराण' का दुमछल्ला अपनी ओर से जोड़कर अपने मन की भड़ास निकालने और अपनी दुर्बलताओं को छुपाने के लिए एक आड़ बना ली।

तोपजी—अष्टादश पुराण का दुमछल्ला जोड़ा नहीं गया अपितु आरम्भिक पत्र-व्यवहार में निर्णीत विषय यही था, जैसाकि प्रधानजी ने अवसर पड़ने पर जनता के समक्ष पत्र-व्यवहार सुनाकर निर्णय दिया और सनातनियों ने भी सचाई के समक्ष सिर झुका दिया।

पोपजी—शास्त्रार्थ के प्रश्नों को सम्पूर्ण रूप से लिखने की बजाय अपने स्वार्थ के लिए उन्हें संक्षिप्त बनाकर लिखा जिससे पं० श्रीकृष्ण शास्त्री के विचारों की वास्तविक शान और सत्यता में निर्बलता प्रकट हो।

तोपजी—श्रीकृष्ण शास्त्री के प्रश्न स्वभावत: निर्बल थे, क्योंकि वे अपने दावे को सिद्ध करने के लिए वेदमन्त्र प्रस्तुत नहीं कर सके। आपने अपनी ओर से कुछ प्रश्नों में वेदमन्त्र लगा दिये, शेष में मन्त्र लगाने से आप भी विवश रहे, परन्तु आपकी इस वृद्धि से जनता की दृष्टि में श्रीकृष्ण के प्रश्नों में कोई प्रबलता नहीं आई, अपितु निर्बलता का प्रमाण प्रकट हो गया।

पोपजी—और उधर अपनी ओर के पण्डित लोकनाथजी के उत्तरों की बढ़ोत्तरी करके आर्यसमाज की प्रथम शानदार पराजय प्राप्त की।

तोपजी—तनिक निकालकर बताया तो होता कि कौन-सी वृद्धि की है? हाँ, आपने दोनों ओर के भाषणों में कतरब्योंत करके सनातनधर्म का मुँह काला किया है। वह कलई खोलकर हमने जनता के समक्ष रख दी है।

पोपजी—सिवाय इधर-उधर की टालमटोल और व्यर्थ बातों के आर्यसमाजी पण्डित लोकनाथजी ने एक प्रश्न का भी उत्तर नहीं दिया कि जो बुद्धिमानों की दृष्टि में उत्तर कहा जा सके।

तोपजी—सभी न्यायालयों का यह साधारण नियम है कि वादी जिस दावे का प्रमाण न्यायलय में प्रस्तुत न करे वह प्रतिवादी के उत्तर के बिना ही समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार से पं० श्रीकृष्णजी ने जिस प्रश्न को न्याय के अनुसार वेदमन्त्र देकर स्थापित किया उसका मुँहतोड़ उत्तर दिया गया और बाकी प्रश्नों को प्रमाण न होने के कारण बिना उत्तर दिये रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया और यही उचित भी था।

पोपजी—समाजियों के धुरन्धर विद्वानों की वीरता तो हम तब मानते जब वे विशाल हृदय से घोषणा करते कि लो भाई! सनातनधर्मी वेदप्रमाणों से अपने पक्ष को स्थापित तो नहीं कर सके, परन्तु हम उत्तर दे ही देते हैं।

तोपजी—जादू वह जो सिर चढ़कर बोले! सचाई अन्तत: सात पर्दे फाड़कर बाहर

निकल आती है। अन्ततः आपने मान ही लिया कि सनातनधर्मी पण्डित ने वेदमन्त्र देकर अपना पक्ष स्थापित नहीं किया। जब वादी अपने दावे को सिद्ध ही नहीं कर सका तो फिर आर्यसमाजी पण्डित उत्तर देने का नियम-विरुद्ध कार्य करके सुशिक्षित जनता की दृष्टि में अपने-आपको हास्य का पात्र क्यों बनाता?

पोपजी—जब प्रश्न पूछा जाए कि **'ओं सानुगायेन्द्राय नमः'** वाला मन्त्र जो आपके स्वामी दयानन्दजी वेद के नाम से सत्यार्थप्रकाश में लिखकर संसार को धोखा दे गये हैं, किस वेद में है? तो उत्तर मिलेगा कि पहले तुम वेदमन्त्र बताओ, फिर हम बताएँगे।

तोपजी—जब स्वामीजी ने इस मन्त्र को वेद के नाम से सत्यार्थप्रकाश में लिखा ही नहीं तो फिर आपका यह प्रश्न करना कि 'वेद में से दिखाओ' दुराग्रह, अज्ञानता, स्वार्थ और धोखा देना नहीं तो क्या है? रहा आपका यह प्रश्न करना कि यह वेद के विरुद्ध है, इसके लिए आपको वेद का मन्त्र देकर उसके साथ इस मन्त्र का विरोध दिखलाना पड़ेगा, अन्यथा आपका प्रश्न बिना प्रमाण का दावा होने से बिना उत्तर दिये ही रद्द करने के योग्य है।

पोपजी—वाह! शुद्ध चाँदी का बोर्ड तुम अपनी दुकान पर लगाओ और खरीदनेवाले का दायित्व लगाओ कि वह सिद्ध करे कि हमारी दुकान की चाँदी शुद्ध नहीं, क्या बुद्धि से कोरा उत्तर है?

तोपजी—बुद्धि से कोरा उत्तर नहीं है अपितु उत्तर सुननेवाला बुद्धि और मस्तिष्क से कोरा है। जब हमने अपनी दुकान पर कसौटी के अनुसार परीक्षा करके शुद्ध चाँदी रक्खी हुई है और खरीदनेवाला व्यर्थ आकर कहे कि तुम्हारी चाँदी खोटी है तो हमें कहना पड़ेगा कि यह कसौटी पड़ी है और यह चाँदी पड़ी है। इसे कसौटी पर घिसकर यह सिद्ध करो कि हमारी चाँदी खोटी है, अन्यथा हमने तो पहले ही परखकर रक्खी हुई है। प्रमाण का दायित्व खरी चाँदी को खोटी कहनेवाले पर ही होता है।

पोपजी—जब समाज और उसके संस्थापक का दावा है कि आर्यसमाज वेदानुकूल है तो फिर वेद के नाम से लिखी गयी बात को भी वेद से सिद्ध न करना कितना बड़ा धोखा देना है।

तोपजी—जिस व्यक्ति की बुद्धि इतनी मोटी हो कि वह वेद और वेदानुकूल में भी विवेक न कर सकता हो, वह आर्यसमाज के सम्मुख आने का साहस करे यह सचमुच वीरता नहीं तो क्या है? अजी पोपजी! वेद होना और बात है और वेद के अनुकूल होना और बात है। यदि कोई मूर्ख ख़रीदार सर्राफ़ की दुकान पर जाकर कहे कि क्योंकि आपकी दुकान पर लिखा हुआ है कि "हमारी चाँदी कसौटी के अनुसार होने से खरी है," इसलिए वह डली जोकि सामने पेटी में पड़ी है, उसे सिद्ध करो कि वह कसौटी का टुकड़ा है, तो आप विचार कर सकते हैं कि सर्राफ उस खरीदार के साथ क्या व्यवहार करेगा? यही न कि उसे धक्के देकर दुकान के चबूतरे से नीचे उतार देगा और कहेगा कि "तू कैसा पागल है! हमने अपनी दुकान पर यह लिखा है कि हमारी चाँदी कसौटी के अनुसार खरी है, न कि यह लिखा है कि हमारी चाँदी कसौटी है। और खरीदार चिल्लाने लगे कि देखो कसौटी के भी टुकड़े होते हैं और चाँदी का भी टुकड़ा है, अतः टुकड़ा शब्द की समानता से चाँदी कसौटी का टुकड़ा ही होना चाहिए। जैसे उपर्युक्त ख़रीदार की बातों में सिवाय मूर्खता के और कुछ नहीं, वैसे ही आपकी बातों में कोरी मूर्खता ही भरी पड़ी है। यदि

आर्यसमाज की पुस्तकों पर लिखा हुआ है कि ये वेदानुकूल हैं तो इसका यह अर्थ कहाँ निकल आया कि इनमें जो कुछ लिखा है, वे वेद के मन्त्र ही हैं? सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकों में शतपथ आदि ब्राह्मणग्रन्थों और उपनिषदों के मन्त्र, गृह्यसूत्रों और दर्शनों के सूत्र तथा मनुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि के श्लोक भी दिये हुए हैं। इसी प्रकार से **'सानुगायेन्द्राय नमः'** आदि मन्त्र भी स्वामीजी ने मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक ८५ से ९० तक के अनुसार लिखे हैं और इन्हें मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक १२१ में मन्त्र भी स्वीकार किया है। इन्हें स्वामीजी ने कहीं भी वेदमन्त्र नहीं लिखा। मन्त्र संस्कृत की एक प्रकार की शैली का नाम है। यह विचार ग़लत है कि मन्त्र सिवाय वेदों के और होते ही नहीं और जिसे मन्त्र कहा जाए उसका वेद में होना आवश्यक समझा जाए, क्योंकि ब्राह्मण, उपनिषद् और गृह्यसूत्रों में भी मन्त्र विद्यमान हैं और पुराणों में सैकड़ों संस्कृत के पाठ मन्त्र के नाम से विद्यमान हैं, परन्तु उनका वेदों में चिह्न तक भी नहीं है। उदाहरण के रूप में हम दो मन्त्र पुराणों में से देते हैं—

ओं श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः। —ब्रह्म० खं० ४ अ० २७ श्लो० ८

ओं सर्वेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा। —ब्रह्म० ४।७८।३७

निष्कर्ष यह कि केवल मन्त्र शब्द की समानता से प्रत्येक मन्त्र को वेदों में से दिखाओ, यह कहना और लिखना उपर्युक्त खरीदार का-सा ही पागलपन है, अतः जिस प्रकार सत्यार्थप्रकाश में वेदों के अतिरिक्त और पुस्तकों के प्रमाण भी विद्यमान हैं और वे वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं, उसी प्रकार **'सानुगाय'** आदि मन्त्र भी मनुस्मृति के आदेश के अनुसार सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं और वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं। जिस प्रकार यदि कोई शतपथ आदि ब्राह्मण, उपनिषद् या सूत्र अथवा मनुस्मृति, रामायण, महाभारत का प्रमाण सत्यार्थप्रकाश से पढ़कर कहे कि इसे वेद में दिखलाओ, जैसे उसकी चेष्टा को बेहूदा स्वीकार किया जाएगा, वैसे ही जो व्यक्ति **'सानुगायेन्द्राय नमः'** को पढ़कर कहता है कि वेद में से दिखलाओ, उसकी चेष्टा को भी बेहूदा, पागलपन और जनता को धोखा देना ही कहा जाएगा।

पोपजी—शास्त्रार्थ में महाशय लोकनाथजी की बारी में एक स्थान पर समाजी मित्रों ने शब्दों को रंगत दी है कि महाशयजी के चीरलीलावाली तस्वीर दिखाने पर जनता में हाहाकार मच गया। समाजियों की इस वीरता पर हम कोई सम्मति स्थिर नहीं करते, क्योंकि यह लीला भगवान् ने केवल चार वर्ष की अवस्था में की थी।

तोपजी—इस लेख में शब्दों को रंगत नहीं दी गयी है, वस्तुतः ही जनता में हाहाकार मच गया था। आर्यसमाजियों की इस वीरता पर आप सम्मति स्थिर कर भी कैसे सकते हैं, जबकि इस तस्वीर को दिखाते ही सम्पूर्ण सनातनधर्मी जनता लज्जा के कारण पानी-पानी हो गयी थी और लज्जा के कारण मुँह छिपाने को स्थान नहीं मिला था। रहा आपका यह कहना कि भगवान् ने यह लीला चार वर्ष की अवस्था में की थी, यह सर्वथा असत्य और सनातनधर्मी जनता को धोखा देना है। प्रथम तो कोई बुद्धिमान् व्यक्ति यह स्वीकार नहीं कर सकता कि इतनी गोपियों के कपड़ों को उठकार कोई चार वर्ष का बच्चा वृक्ष पर चढ़ सकता है। दूसरे, आप अपने इस लेख को स्वयं झुठलाते हुए इसी पुस्तक के पृष्ठ १८२ पर लिखते हैं कि—"चीरहरण करने के समय भगवान् श्रीकृष्ण की अवस्था छह वर्ष की थी।" इससे पता लगता है कि आप बैठे हुए झूठी थ्यूरियाँ घड़ते रहते हैं और

'दरोगगो रा हाफ्ज़ा न बाशद'[१] के अनुसार अपनी पिछली बातों को आगे चलकर भूल जाते हैं, अन्यथा पुराणों में श्रीकृष्ण की जो कामक्रीड़ा लिखी है, वह उनकी छोटी अवस्था को सिद्ध नहीं करती और फिर आप तो यह मानते हैं कि श्रीकृष्णजी आवश्यकता और इच्छा के अनुसार शरीर धारण कर सकते थे, अतः चीरहरणलीला से भी बहुत पूर्व ब्रह्मवैवर्तपुराण खण्ड ४ अध्याय १५ में आता है—

"एक दिन नन्द कृष्ण को गोद में लेकर गौएँ चराने गया। सहसा आकाश बादलों से **आच्छादित हो गया** और तीव्र वृष्टि होने लगी। इतने में राधा आयी और कृष्ण को लेकर चली गयी। थोड़ी देर में राधा ने देखा कि एक अत्यन्त सुन्दर मण्डप बना हुआ है और इसमें युवावस्थावाले कृष्णजी लेटे हुए हैं। राधा ने कृष्ण से भोग करना चाहा तो कृष्ण ने कहा—"तनिक ठहरो।" इतने में ही ब्रह्माजी आ अये और उन्होंने राधाकृष्ण का विवाह करवा दिया। इसके पश्चात् दोनों ने जी भरकर एक-दूसरे के वस्त्र उतारकर भोग किया और भोग से निवृत्त होकर जब राधा कृष्ण का शृङ्गार करने लगी तो तुरन्त कृष्णजी फिर बालक बन गये और भूख से रोने लगे, तब राधा कृष्ण को उठाकर यशोदा को दे आई।"

होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात। जब चीरहरणलीला से बहुत पूर्व कृष्णजी की यह अवस्था थी कि उन्होंने जवान बनकर राधा से विवाह करके जी भरकर भोग भी कर लिया था तो फिर चीरहरण के समय उन्हें छोटी अवस्था का सिद्ध करने से आपका क्या स्वार्थ सिद्ध होगा, अतः इस दार्शनिकता को लपेटकर रख दीजिए। भला! यदि छोटी अवस्था के कारण कृष्ण में विषय-वासना की योग्यता न थी तो फिर छोटी अवस्था में गोपियों को नंगा होकर नहाने से पाप लगने का उपदेश देने की योग्यता कैसे सिद्ध हो सकती है?

पोपजी—हाँ, न्यायालय के उस निर्णय की नक़ल पाठकों के मनोरञ्जन के लिए यहाँ लिखते हैं, जो चीरहरणलील के सम्बन्ध में दिया गया था।

तोपजी—आप इस प्रकार के न्यायालय के निर्णय दिखाकर सम्भव है मूर्ख सनातनधर्मी लोगों की आँखों में धूल झोंक सकें, परन्तु बुद्धिमान् लोगों की दृष्टि में ये निर्णय क्या मूल्य रखते है? क्योंकि सारी शिक्षित जनता जानती है कि अंग्रेज सरकार की यह प्रसिद्ध घोषणा है कि वह किसी के धार्मिक विषय में हस्तक्षेप नहीं करेगी। यद्यपि सरकार का यह कानून है कि वह जनता में अश्लील तस्वीरों और अश्लील लेखों का प्रचार करनेवालों को दुराचार को रोकने के कानून के अन्तर्गत दण्ड देती है, परन्तु जिन चित्रों और लेखों का धर्म के साथ सम्बन्ध है, उन चित्रों और लेखों के अश्लील, दुराचार को बढ़ावा देनेवाले होने पर भी दृष्टि से ओझल कर देती है। इसका प्रकट प्रमाण यह है कि सरकार ने आज तक भी जगन्नाथपुरी के मन्दिर की दीवारों पर खुदी हुई सर्वथा नग्न और मनुष्य के माप की स्त्री और पुरुषों की भोग-विलास करती हुई तस्वीरों को कि "जिनको देखकर लाला जमनालाल बजाज लज्जा के कारण पानी-पानी हो गये और इस विचार से कि कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर इन चित्रों की विद्यमानता में हम लोगों को क्या मुँह दिखाएँगे, उनको दूर करने के लिए सत्याग्रह के लिए तैयार हो गये थे" आज तक भी सरकार ने अवैध बताकर उनपर रोक नहीं लगाई और शिवलिङ्ग की पार्वती की योनि में गाड़ी हुई दुराचार को बढ़ावा देनेवाली तस्वीर पर जो सभी शिवालयों में अपनी विद्यमानता से स्त्रियों

—सं०

१. झूठ बोलनेवाले की स्मरणशक्ति नहीं होती।

में व्यभिचार का प्रचार कर रही है, आज तक रोक नहीं लगायी। कृष्णजी से सम्बन्धित गोपियों से रासक्रीड़ा करते हुए अनेक प्रकार के चित्रों को भी बन्द नहीं किया। सबसे अधिक दुराचार की शिक्षा देनेवाले अठारह पुराणों के लेख को भी सरकार ने रोक लगाने योग्य नहीं समझा। इन सब बातों का कारण यही है कि इन सबका धर्म के साथ सम्बन्ध है और सरकार धर्म के विषय में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती। यदि सरकार के एक अभिज्ञ प्रतिनिधि ने चीरहरण के चित्र को अश्लील और दुराचार को बढ़ानेवाला समझकर इसके मुद्रण और विक्रय करनेवाले को दण्ड दे दिया और सनातनधर्म की ओर से कोलाहल होने पर सैशनजज के यहाँ अपील करके वकील के यह सिद्ध करने पर कि "इस चित्र का पुराणों के पवित्र लेख के साथ सम्बन्ध है और यह धार्मिक चित्र है" सैशनजज ने अपील स्वीकार करके दण्ड का निषेध कर दिया, तो क्या इससे यह सिद्ध हो गया कि सरकार इसे अश्लील और दुराचार को बढ़ानेवाला नहीं समझती और नग्न स्त्रियों का वह चित्र जनता के लिए दुराचार की शिक्षा देने की बजाय सभ्यता की शिक्षा देनेवाला बन गया, कदापि नहीं। जज के निर्णय में ये शब्द विशेषरूप से ध्यान देने योग्य हैं कि "इसका प्रभाव देखनेवालों के हृदयों पर बुरा या अशिष्टतापूर्ण नहीं है, विशेषकर उसका सम्बोधन हिन्दुओं से हैं।"

ये शब्द स्पष्ट प्रकट कर रहे हैं कि जज महोदय इस बात को अनुभव कर रहे हैं कि इस चित्र का हिन्दुओं को छोड़कर शेष सब सम्प्रदाय के लोगों पर बुरा या असभ्यतापूर्ण प्रभाव अवश्य पड़ता है, तभी तो उन्होंने कह दिया कि 'विशेषरूप से इससे पहले वाक्य का सम्बोधन हिन्दुओं से है' और फिर देखिए दण्ड से मुक्त करने में कारण क्या देते हैं "और हिन्दू पुराणों से एक दृश्य को प्रकट करता है जिसके साथ ऐसे विचारों का सम्बन्ध है।" ये वाक्य स्पष्ट सिद्ध करते हैं कि यद्यपि जज महोदय इस चित्र को अश्लील और असभ्यतापूर्ण समझते थे, परन्तु "क्योंकि हिन्दू उसे बुरा और अशिष्टतापूर्ण नहीं समझते और इस चित्र का हिन्दुओं की धार्मिक पुस्तक पुराणों के एक दृश्य से सम्बन्ध था," इसलिए न्यायालय ने इसे एक धार्मिक विषय समझकर अपील स्वीकार कर ली। इस निर्णय से इस तस्वीर को सभ्यतापूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न करना मूर्ख सनातनधर्मियों को उल्लू बनाने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

हमारी भूमिका पर पोपजी की बौखलाहट

पोपजी—लाला मनसारामजी ने अपनी भूमिका में पं० लोकनाथजी की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि वे एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थों के महारथी हैं और न्याय के धुरन्धर विद्वान् हैं।

तोपजी—इसमें क्या सन्देह है! पं० लोकनाथजी संस्कृत और न्याय के अद्वितीय पण्डित हैं। इस कोटि के पण्डित सनातनधर्म में बहुत कम हैं। आपके कविरत्न, युक्तिविशारद और व्याख्यानवाचस्पति तो पण्डितजी के पैरों की धूलि के बराबर भी अस्तित्व नहीं रखते और पण्डितजी उन्हें वर्षों पढ़ा सकते हैं, तथा शास्त्रार्थों में तो पं० लोकनाथजी ने उन्हें सैकड़ों बार नाकों चने चबवाये हैं और वे जहाँ पर पं० लोकनाथजी का नाम सुन पाते हैं, वहाँ आपके कविरत्न, युक्तिविशारद और व्याख्यानवाचस्पति गीदड़ों की भाँति छुपने के लिए बिल ढूँढते फिरते हैं। यह तो आपके गुरुओं की अवस्था है, रही आप-जैसों की अवस्था, वह तो आपको ज्ञात ही है कि जबसे आपने उनकी शान में

कुवाच्य बोलकर गिड़गिड़ाकर न्यायालय में लिखित क्षमा माँगी हैं, तब से डेरागाजीखाँ की ओर मुँह करके सोने से कदाचित् स्वप्न में भी पं० लोकनाथजी को देखकर चौंक पड़ते होंगे और आपके कलियुग के सनातनधर्म के उद्धारक योगिराजजी पं० लोकनाथजी के भगाये हुए आज अपनी स्त्री की दासता में हल जोड़कर निर्वाह कर रहे हैं तथा पं० लोकनाथजी के विरुद्ध झूठे समाचार छापनेवाले समाचार-पत्रों के कार्यालयों की कुर्सियाँ नीलाम हो रही हैं। इतनी पराजयों के पश्चात् फिर भी निर्लज्जों की भाँति उनकी हार बताने में आपकी ढिठाई प्रशंसनीय है।

पोपजी—लालाजी को इस मुलम्मा करने की क्या आवश्यकता थी?

तोपजी—यह मुलम्मा नहीं, अपितु सोने पर सुहागा है कि पं० लोकनाथजी-जैसे न्याय के विद्वान् की शान के यह योग्य ही न था कि वे इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देकर हास्य के पात्र बनते कि जिन प्रश्नों का न्याय के अनुकूल स्थापन ही नहीं किया गया था, अतः उन्होंने जो कुछ किया न्यायशास्त्र के अनुसार ठीक ही किया।

पोपजी—पं० श्रीकृष्णजी ने प्रथम पारी में दस प्रश्न किये थे, उनमें से प्रथम चार प्रश्नों के पक्ष को वेदमन्त्रों से स्थापित करते हुए स्पष्ट सिद्ध किया था कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदों के अमुक-अमुक मन्त्रों के विरुद्ध होने से वेदों के विरुद्ध हैं।

तोपजी—जैसे नौ प्रश्नों को दस बताना आपका धोखा देना है वैसे ही चार प्रश्नों के साथ वेदमन्त्र लगा देना भी आपकी चालाकी है, अन्यथा जनता में यह बात सभी को स्पष्ट विदित है कि पण्डितजी ने एक भी वेदमन्त्र देकर उसके साथ दयानन्दकृत ग्रन्थों का विरोध नहीं दिखाया। एक मन्त्र चोटी कटाने के विरुद्ध तीसरी पारी में प्रस्तुत किया था, दुर्भाग्य से वह भी चोटी कटाने के पक्ष में निकल पड़ा और पं० श्रीकृष्णजी अपना-सा मुँह लेकर रह गये।

पोपजी—और शेष प्रश्नों को उचित ढंग से स्वामीजी के ग्रन्थों में से प्रश्नों के रूप में प्रस्तुत किया था कि आर्यसमाज यह बतलाये कि यह किन वेदमन्त्रों के आधार पर स्वामीजी ने लिखा है?

तोपजी—जब पं० श्रीकृष्णजी का दावा यह था कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं तो उनका यह कर्त्तव्य था कि वे वेदमन्त्र प्रस्तुत करके यह सिद्ध करते कि स्वामीजी का अमुक लेख अमुक वेदमन्त्र के विरुद्ध है। अपने दावे को प्रमाणित किये बिना उनका एक प्रश्न भी करना अवैध था। उन्होंने एक प्रश्न के साथ भी वेदमन्त्र देकर अपने दावे को सिद्ध नहीं किया। हाँ, चार प्रश्नों के साथ वेदमन्त्र आपने लगा दिये, शेष प्रश्नों के साथ वेदमन्त्र लगाने में आप भी असफल रहे।

पोपजी—इस शास्त्रार्थ में दावा प्रस्तुत करने के दो ही प्रकार हो सकते थे—एक, वेदमन्त्र देकर; दूसरे, स्वामीजी के लेख को प्रस्तुत करके उनके प्रमाणों के लिए आर्यसमाज से वेदमन्त्र माँगना।

तोपजी—इस शास्त्रार्थ में जब दावा यह था कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं तो ऐसी स्थिति में इस दावे को एक ही प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता था कि वेदमन्त्र देकर यह सिद्ध किया जाए कि स्वामीजी का अमुक लेख अमुक वेदमन्त्र के विरुद्ध है, अतः स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं। दूसरा प्रकार तब प्रयोग में लाया जा सकता है जब विषय यह निर्धारित हो कि 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं'। यह

विषय निश्चित होने की स्थिति में चूँकि वादी आर्यसमाज हुआ, अतः पहली पारी भी आर्यसमाज की ओर से ही होती, तब आर्यसभाज स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए वेदमन्त्र प्रस्तुत करके अपने दावे को सिद्ध करता। विरोधी पक्ष का दूसरे प्रकार का प्रयोग करना न्याय के विरुद्ध और अवैध था, इसलिए उसे स्वीकार करना न्यायदर्शन का अपमान था।

पोपजी—जब स्वयं स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में इस बात को स्वीकार करते हैं कि 'आर्यवर्त्तियों के विषय में जो कुछ लिखा गया है, वह वेदानुकूल है और सर्वथा वेदोक्त होने के कारण मुझे मान्य है', हमें समझ में नहीं आता कि फिर इसपर प्रश्न करना कौन-सी बुराई है? आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि सब बातों को वेद से दिखाए, अन्यथा यह दावा करना छोड़ दे कि हमारा मत वेदानुकूल है।

तोपजी—स्वामजी दयानन्दजी ने जो कुछ भूमिका में लिखा है, वह सर्वथा सत्य है और ऋषि दयानन्दकृत ग्रन्थ सर्वथा वेदानुकूल हैं; परन्तु वेदानुकूल शब्द को समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता है, परन्तु इसके पीछे आप-जैसे सनातनधर्मी लोग लट्ठ लेकर पड़े हुए हैं, अन्यथा तो लेख को वेदानुकूल जानने का वही प्रकार है जिसे हमने मनुस्मृति के अनुसार अपनी चार कसौटियों में वर्णित किया है। प्रश्न करने को कौन बुरा बताता है? परन्तु प्रश्न करने के प्रकार से भिज्ञ होना बहुत आवश्यक है। यदि दावा यह हो कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं तो प्रश्न करने का प्रकार यह है कि प्रत्येक प्रश्न के साथ वेदमन्त्र देकर यह सिद्ध किया जाए कि स्वामी दयानन्द का लेख इस वेदमन्त्र के विरुद्ध है, अन्यथा आर्यसमाज का डंके को चोट यह दावा है कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ मनुस्मृति में वर्णित शैली के अनुसार सर्वथा वेदानुकूल हैं और इसीलिए वे आर्यसमाज को मान्य हैं। यदि आपमें दम-खम हो तो मैदान में आकर उन्हें वेदों के विरुद्ध सिद्ध करके दिखाएँ।

पोपजी—लालाजी लिखते हैं कि अब सनातनधर्मी पण्डित मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, वर्ण-व्यवस्था, नियोग और विधवा-विवाह पर शास्त्रार्थ नहीं करते, अपितु 'स्वामीजी के ग्रन्थ वेदों के विरुद्ध हैं' इसी विषय पर शास्त्रार्थ करने का प्रयत्न करते हैं।

तोपजी—यह बात शत-प्रतिशत सत्य है कि सनातनधर्म के पण्डित आजकल मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, वर्ण-व्यवस्था, नियोग, विधवा-विवाह आदि विषयों पर शास्त्रार्थ करने से प्रत्येक स्थान पर मना कर देते हैं। इसका कारण यह है कि विषय निश्चित होने पर प्रथम तो दोनों पक्षों को तैयारी करने का समय मिल जाता है। दूसरे, निर्धारित किये हुए एक ही विषय पर शास्त्रार्थ होने से दो घण्टे में परिणाम स्पष्ट रूप से जनता के समक्ष आ जाता है और सनातनधर्म के पण्डितों को व्यर्थ कोलाहल करके, सनातनधर्म की जय बुलाकर भागने का अवसर नहीं मिल सकता, परन्तु 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं' इसमें प्रथम तो आर्यसमाज के पण्डितों को तैयारी का अवसर ही नहीं मिल सकता, क्योंकि इन्हें पता ही नहीं होता कि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों में किन-किन विषयों पर शास्त्रार्थ होगा। दूसरे, दो घण्टे में स्पष्ट परिणाम जनता के समक्ष नहीं आ सकता, क्योंकि सनातनधर्म के पण्डित दस मिनट में झटाझट दस प्रश्न कर डालते हैं और उत्तर देनेवाला इतने प्रश्नों का उत्तर दस मिनट में नहीं दे सकता, तब सनातनी कोलाहल करते हैं कि हमारे प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया गया और कोलाहल मचाकर जनता को धोखा देने के लिए सनातनधर्म की

जय बुलाते हुए भाग खड़े होते हैं। उपर्युक्त कारणों से सनातनधर्म के पण्डित प्रत्येक स्थान पर यही माँग करते हैं कि हम तो इस विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे कि 'स्वामीजी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं।' आर्यसामज डंके की चोट पर यह बात बतला रहा है कि यह हमारा कोई शास्त्रार्थ का विषय नहीं है, क्योंकि आर्यसमाज जैसे मनु से लेकर व्यास तक ऋषियों के बनाये हुए ग्रन्थों को परत:प्रमाण मानता है, वैसे ही ऋषि दयानन्दकृत ग्रन्थों को भी परत:प्रमाण मानता है, परन्तु सनातनधर्म के पण्डित एक नहीं सुनते और अपने दुराग्रह पर अड़े रहते हैं।

पोपजी—लालाजी! कदाचित आपको सन् १९२९ के डलहौजीवाले दो शास्त्रार्थ की बात भूल गयी होगी, वहाँ तो मूर्त्तिपूजा और गृहस्थधर्म पर आपसे शास्त्रार्थ हुए थे।

तोपजी—भूल क्यों जाती, अच्छी प्रकार स्मरण है, क्योंकि डलहौजी के दोनों शास्त्रार्थ में विषय निर्धारित थे, अत: इन दोनों में ही आपके माधवाचार्य की वह गत बनी थी कि फिर कभी उन्होंने निर्धारित विषय पर शास्त्रार्थ करने का साहस ही नहीं किया। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ भी सनातनधर्म के पण्डितों ने निश्चित किये हुए विषयों पर शास्त्रार्थ किये हैं, वहाँ-वहाँ पर ही इन्हें मुँह की खानी पड़ी है। अन्तत: इन लोगों ने शास्त्रार्थ के मैदान से दूर रहने के लिए अथवा यदि शास्त्रार्थ करना भी पड़े तो इसमें कोलाहल करके भाग जाने के लिए यह बहाना ढूँढा है कि वे निर्धारित विषय पर शास्त्रार्थ करने से स्पष्ट मना कर देते हैं और इसी दुराग्रह पर अड़े रहते हैं कि हम तो इसी विषय पर शास्त्रार्थ करेंगे कि 'दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं।' हमें इस बात का सैकड़ों स्थानों का अनुभव है कि कहाँ-कहाँ पर सनातनधर्म के पण्डितों ने इस प्रकार का दुराग्रह करके शास्त्रार्थ से अपनी जान बचाई। उदाहरण के रूप में आपने डेरागाजीखाँ में इसी दुराग्रह में एक मास बिता दिया, परन्तु निर्धारित विषय पर शास्त्रार्थ करने का नाम तक भी नहीं लिया। अभी-अभी ८ मई सन् १९३२ को तिलागंग में सनातनधर्म के उत्सव पर आपके पण्डित भीमसेनजी, पं० यदुकुलभूषणजी आदि पण्डितों ने स्थानीय तहसीलदार के समक्ष निर्धारित विषय पर शास्त्रार्थ करने से इन्कार करके सनातनधर्म की हार को क्रियात्मक रूप से अपने आचरण से सिद्ध कर दिया और तहसीलदार महोदय को विवश होकर ये शब्द कहने पड़े कि "यद्यपि मैं सनातनधर्मी हूँ, परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हमारे पण्डित आर्यसमाज के पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार नहीं हैं और इधर-उधर की बातों में समय नष्ट कर रहे हैं।"

पोपजी—श्राद्ध, वर्णव्यवस्था आदि विषयों पर कई लिखित शास्त्रार्थ हो चुके हैं और दूसरे लोगों द्वारा आर्यसमाज के विरुद्ध निर्णय दिये जा चुके हैं, जिनके कुछ नमूने अन्त में दिये जाएँगे।

तोपजी—हमें आपके उन लिखित शास्त्रार्थों और उनके निर्णयों की वास्तविकता भी अच्छी प्रकार ज्ञात है। हम भी इनकी वास्तविकता पुस्तक के अन्त में प्रकट करके आपकी सारी मुलम्मा चढ़ाने की पोल खोलकर दिखा देंगे।

पोपजी—समय मिलने पर आप अपनी इच्छानुसार विषय निर्धारित करके भाग्य की पुन: परीक्षा कर सकते हैं। सनातनधर्मी तो सदा, प्रत्येक विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हैं।

तोपजी—सनातनधर्म के पण्डित निर्धारित विषयों पर शास्त्रार्थ करके पराजित होकर

युद्धभूमि, से भाग चुके हैं और आवश्यकता से अधिक पिट चुके हैं। अब वे 'स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थ वेदविरुद्ध हैं' की आड़ का बहाना लेकर शास्त्रार्थ से जान छुपाते फिरते हैं। अब उनका यह साहस ही नहीं होता कि वे निर्धारित विषय पर शास्त्रार्थ करके पुन: अपने भाग्य की परीक्षा कर सकें, अन्यथा आर्यसमाज तो सदा, प्रत्येक विषय पर शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत है।

पोपजी—धन्य है कि लालाजी को भी सचाई की आवश्यकता पड़ी।

तोपजी—आर्यसमाज का तो यह सिद्धान्त है कि 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए', अत: इस नियमानुसार हम सदा सचाई की खोज में रहते हैं। सचाई पर पर्दा डालकर जनता को धर्म से दूर रखना आप लोगों का काम है। परमात्मा आपको सुबुद्धि प्रदान करें कि आप भी स्वार्थ को छोड़कर सचाई को स्वीकार करें।

पोपजी—लालाजी की बताई हुई धर्म और अधर्म को परखने की चार कसौटियों पर भी दृष्टि दौड़ा लें।

तोपजी—अजी पोपजी! ये कसौटियाँ मेरी निर्धारित की हुई नहीं हैं, अपितु ये तो मनुजी महाराज की बताई हुई हैं, परन्तु आप तो इनकी समालोचना में सनातनधर्म को ही भूल गये और आपके होश ऐसे उड़ गये कि समालोचना करते हुए सुध-बुध ही भूल गयी और जो कुछ ऊटपटाँग चाहा बिना सोचे-समझे लिख मारा और इस बौखलाहट की अवस्था में चौथी कसौटी के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिख सके। प्रमाण के लिए देखिए मनु महाराज क्या कहते हैं—

वेद: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:।
एतच्चतुर्विधं प्राहु: साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ —मनु० २।१२

अर्थ—वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय लगना—यह चार प्रकार का साक्षात् धर्म का लक्षण कहा जाता है।

पोपजी—पहली कसौटी में यह स्वीकार किया गया कि "वेद बीजरूप है, जिसमें इसकी व्याख्या भी विद्यमान होती है, जैसे बीज के अन्दर ही वृक्ष का होना, परन्तु इस व्याख्या को केवल ऋषि लोग ही समाधि द्वार जान सकते हैं।"

तोपजी—सर्वथा सत्य है। वेद में यह तो मिल जाएगा कि मनुष्यों को अन्न खाना चाहिए, परन्तु यह न मिलेगा कि गेहूँ को इस प्रकार पीसकर, आटा गूँधकर रोटी यूँ तवे पर बनाई जाती है और दाल में नमक कितना डालना चाहिए आदि-आदि, अत: किसी आधारभूत सिद्धान्त की व्याख्या को वेद के अन्दर से दिखाने का प्रश्न करना केवल मूर्खता ही है।

पोपजी—इसे सनातनधर्मी भी मानते हैं, परन्तु खेद है कि त्रिकालदर्शी महर्षि वेदव्यासजी समाधि और योग द्वारा वेदों के बीजरूप की व्याख्या पुराणों के रूप में लिखें तो वह वेद-विरुद्ध और इनके स्वामी दयानन्द बिना योग के ही जो कुछ मनघड़न्त ही लिख दें वह वेदानुकूल! क्यों न हो, कलियुग के ऋषि जो हुए।

तोपजी—धन्यवाद है। आपने इस सिद्धान्त को तो स्वीकार कर लिया कि वेदों में आधारभूत सिद्धान्त बीज-रूप में विद्यमान हैं, परन्तु उनकी व्याख्या वेदों में नहीं होती, अपितु उनकी व्याख्या, वेदों के जाननेवाले ऋषि अपने ग्रन्थों में करते हैं। रह गया पुराणों

का वेदों के बीजरूप की व्याख्या होना, यह इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि पुराणों की मद्यपान, मांसभक्षण, व्यभिचार आदि की शिक्षा स्पष्टरूप से वेदों के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है और ऋषि दयानन्द की शिक्षा वेदों के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं, अतः पुराणों की शिक्षा वेदों के विरुद्ध और ऋषि दयानन्द के लेख वेदों के अनुकूल हैं। रह गया कलियुगी ऋषि होने का ताना, वह स्वामी दयानन्दजी का इन सत्ययुगी पौराणिक ऋषियों की अपेक्षा कलियुगी होना ही उत्तम है कि जिन पौराणिक ऋषियों ने पुराणों के लेख के अनुसार पुत्री, माँ, बहिन और भतीजी से विवाह करके अपने ऋषिपन को कलंकित कर लिया हो।

पोपजी—आप दूसरी कसौटी में लिखते हैं कि "जिस नियम और सिद्धान्त के सम्बन्ध में वेद में चाहे कोई आज्ञा न हो, परन्तु उसके विरुद्ध भी कोई प्रमाण न हो, तो वे वेद के अनुसार ही स्वीकार किये जाते हैं।"

तोपजी—आपने धोखा देने के लिए दूसरी कसौटी में स्मृति का नाम तक नहीं लिखा। यदि आप अपने उपर्युक्त लेख के आरम्भ में हमारी पुस्तक का यह लेख भी लिख देते कि "यदि कोई भी नियम या सिद्धान्त स्मृति में वेद के आधारभूत सिद्धान्त के विरुद्ध हो तो यह स्वीकार नहीं किया जा सकता", तो पुस्तक पढ़नेवाला यह समझ जाता कि ऋषि और मुनियों की बनाई हुई स्मृतियों में लिखित जिस नियम और सिद्धान्त के सम्बन्ध में वेद में चाहे कोई आज्ञा स्पष्ट न हो, परन्तु उसके विरुद्ध भी कोई प्रमाण न हो, तो वे वेद के अनुसार ही स्वीकार किये जाते हैं।" निष्कर्ष यह कि स्मृतियों के जो लेख वेद के विरुद्ध न हों वे वेदानुकूल ही माने जाएँगे।

पोपजी—वाह! लालाजी ने वेद की अनुकूलता खूब कही! लालाजी! इस अवस्था में तो आर्यसमाजी मित्रों को रोज़ा रखना, नमाज़ पढ़ना आदि भी वेद के अनुकूल ही हो गया, क्योंकि इनके विरुद्ध वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं है।

तोपजी—वाहजी पोपजी! बलिहारी जाएँ आपकी बुद्धि पर! हमारी दूसरी कसौटी को आपने खूब समझा! क्या इसी बुद्धि के स्वामी बनकर हमारी पुस्तक का उत्तर लिखने बैठे थे? कृपा करके यह तो लिख दिया होता कि कौन-से ऋषि और मुनि की स्मृति में रोज़ा रखने और नमाज़ पढ़ने का नियम और सिद्धान्त वर्णित है, जिसके विरुद्ध वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा न होने के कारण वे हमारे लिए आचरण करने योग्य हैं। इस बौखलाहट को छोड़िए और सन्मार्ग पर आइए। मुसलमानों का अनुकरण करना और उनके सन्देशवाहकों को अवतार मानना पुराणों का ही कार्य है, ऋषिकृत वेदानुकूल स्मृतियों का नहीं।

पोपजी—अब तीसरी कसौटी में सदाचार के लक्षणों का वर्णन करते हैं।

तोपजी—बिलकुल ठीक है। ऋषि और महर्षियों का वह चाल-चलन जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हो वह भी धर्म और अधर्म का निर्णय करने में तीसरी कसौटी माना जाता है।

पोपजी—लालाजी के कथन का सार यह है कि यदि किसी ऋषि ने किसी अवसर पर किसी विधवा स्त्री से विवाह किया अथवा अन्य वर्ण की स्त्री से विवाह किया तो वह सदाचार-सिद्ध धर्म माना जाएगा।

तोपजी—न जाने आप भंग पीकर हमारी पुस्तक का उत्तर लिखने बैठे हैं अथवा पुराणों के पक्षपात ने आपको इतना अन्धा बना दिया कि आपको सरल और स्पष्ट लिखी हुई बातें

भी दिखाई नहीं देतीं। आपको हमारी तृतीय कसौटी के ये वाक्य तो पढ़ लेने थे कि "ऋषि-मुनियों का चाल-चलन उसी सीमा तक प्रमाण हो सकता है कि जिस सीमा तक वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हो, परन्तु जहाँ वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध हो, वहाँ वह कदापि प्रमाण न होगा।" अब विचार करें कि यदि किसी ऋषि ने किसी अवसर पर किसी विधवा स्त्री से विवाह किया हो अथवा अन्य वर्ण की स्त्री से विवाह किया हो तो उसका यह काम यदि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार होगा तो वह सदाचारसिद्ध धर्म माना जाएगा, और यदि उसका उपर्युक्त कार्य वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध होगा तो वह कदापि सदाचारसिद्ध धर्म नहीं माना जाएगा।

पोपजी—लालाजी द्वारा लिखित लक्षण मनुजी के लक्षण से सर्वथा विरुद्ध है। देखिए, मनुजी इसकी व्याख्या करते हुए क्या कहते हैं—"इस देश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों और वर्णसंकरों का परम्परा से क्रमबद्ध जो आचार चला आता है, वह सदाचार कहलाता है।"

—मनु० २।१८

तोपजी—हमारा लक्षण मनु के तात्पर्य के विरुद्ध नहीं है। आपका उपर्युक्त श्लोक भी हमारे किये हुए लक्षण का खण्डन नहीं करता, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों और वर्णसंकरो का परम्परा से क्रमबद्ध चला आया हुआ आचार भी उसी समय सदाचार कहलाएगा जब वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार होगा। यदि वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध होगा तो वह क्रमबद्ध आया हुआ आचार भी सदाचार न कहा सकेगा, क्योंकि सदाचार शब्द का अर्थ ही 'सच्चा आचार' है और सच उसे कहते हैं जो वेदानुकूल हो, अतः प्रत्येक अवस्था में सदाचार वही कहा जा सकता है जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हो। देखिए, मनु (२।१) में भी स्पष्ट लिखा है कि धर्म उसे कहते हैं कि जो वेद के जाननेवाले विद्वानों का सदाचार हो। अब यहाँ भी वेद की अनुकूलता ही प्रमाण है; और आपने भी यहाँ तो हमारे लक्षण से इन्कार कर दिया, परन्तु अपनी इसी पुस्तक के पृष्ठ ७९, पंक्ति ७ में इस हमारे श्लोक को ही सदाचार में प्रमाण मानकर अक्षमाला और शारङ्गी—नीच कुल की स्त्रियों के विवाह को ब्राह्मणों के साथ सदाचारसिद्ध धर्म मान लिया। वहाँ पर आपने परम्परा को छोड़ दिया?

पोपजी—लालाजी ने परम्परा शब्द को बिल्कुल उड़ा दिया और अपनी ओर से एक मनघड़न्त लक्षण जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए लिख मारा।

तोपजी—हमारा काम लोगों की आँखों में धूल डालना नहीं है। यह कार्य तो आप लोगों का है जो परम्परा को लेकर आकाश में चढ़ रहे हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि एक व्यक्ति मांस खाता है, उसका पिता भी मांसभक्षण करता था, उसका नाना भी मांस खाता था और लकड़नाना भी मांसभक्षण करता था और उस व्यक्ति के लकड़नाना का ससुर भी मांस खाता था। इसी प्रकार आगे को बढ़ते-बढ़ते सृष्टि-रचना पर पहुँच जाएँगे। सृष्टिरचना से लेकर इस व्यक्ति तक यदि मांसभक्षण करते चले आये हों तो क्या मांसभक्षण-परम्परा सदाचारसिद्ध धर्म माना जा सकता है? कदापि नहीं, क्योंकि मांस-भक्षण वेद-विरुद्ध है, अतः परम्परा से चला आया हुआ आचार भी तब तक सदाचार नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार न हो। वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध परम्परा से चला आया हुआ आचार भी धर्म का लक्षण नहीं माना जा सकता।

भला! यह तो बताइए कि पृष्ठ ७९ पर आपने अक्षमाला और शारङ्गी के वसिष्ठ और मन्दपाल के सथ जात-पात-तोड़क विवाह को इस कसौटी पर क्यों नहीं परखा? क्या इनकी माँ, नानी, लकड़नानी और लकड़नानी की सास ने ऐसा विवाह किया था? यदि नहीं तो इन विवाहों को सदाचार धर्म क्यों मान लिया?

पोपजी—इतिहास में किसी मनुष्य का किया हुआ आचरण धर्म नहीं हो जाता। किसी भी धर्मशास्त्र ने धर्म की यह कसौटी नहीं बताई है कि पूर्वकाल के मनुष्य जो बुरा-भला कर बैठें, वह आगे के मनुष्यों के लिए धर्म बन जाए।

तोपजी—आपकी बुद्धि भी विचित्र ही है! यह किसने कहा है कि इतिहास में किसी मनुष्य का किया हुआ आचरण धर्म हो जाता है? हमने तो यह लिखा है कि जिस कार्य के सम्बन्ध में वेद कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं देता और वेदज्ञ ऋषियों ने भी इस कार्य के सम्बन्ध में स्मृतियों में कोई स्पष्ट विधि-विधान नहीं लिखा, ऐसी स्थिति में वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषियों का इस कार्य के सम्बन्ध में क्या आचरण है। वह आचरण धर्म और अधर्म के निर्णय में कसौटी बन सकता है, यदि वह आचरण वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हो। हम यह बता चुके हैं कि यह कसौटी मनु ने बताई है। अब हम इस विषय में आपको गीता का प्रमाण देते हैं। देखिए, योगिराज कृष्णजी क्या कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ —गीता ३।२१

अर्थ—श्रेष्ठ अर्थात् वेदों के जाननेवाले लोग जिस-जिस काम का आचरण करते हैं, उसी-उसी काम का दूसरे मनुष्य आचरण करते हैं, वह श्रेष्ठ पुरुष जिस कार्य को प्रमाण मान ले, लोग उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

हाँ, यह ठीक है कि पूर्वकाल के मनुष्य का वही कार्य हमारे लिए धर्म-मार्ग में नेतृत्व कर सकता है जो वेदानुकूल हो; वेद के विरुद्ध कार्य नहीं, क्योंकि धर्म-अधर्म के निर्णय में अन्तिम कसौटी वेद है।

पोपजी—इतिहास से धर्म के निर्णय करने का अभिप्राय नहीं रक्खा। जिस मनुष्य ने धर्माचरण किया उसका धर्माचरण लिखा, जिसने पापाचरण किया उसका पापाचरण लिखा। जिसने पाप-पुण्य-मिश्रित आचरण रक्खा, उसका मिश्रित चरित्र लिखा। इतिहास लिखने का प्रयोजन पूर्वपुरुषों के चरित्र का ज्ञान है।

तोपजी—इतिहास लिखने का इतना ही प्रयोजन नहीं होता कि पूर्वपुरुषों के चरित्रों का ज्ञान हो जाए, अपितु इतिहास लिखने का मुख्य प्रयोजन यह होता है कि भविष्य में आनेवाली सन्ततियाँ अपने प्राचीन पुरुषों के इतिहास को पढ़कर उससे शिक्षा ग्रहण करके श्रेष्ठ, धर्मात्मा, विद्वान् और वीर बनें और सारी जाति के पुरुष और स्त्रियों पर प्रभाव पड़कर हमारी सन्ततियाँ सुधर जाएँ। इसलिए वाल्मीकि रामायण के अन्त में लिखा है कि इस कथा को ऋतुमती नारियाँ विशेषरूप से सुनें और इसी प्रकार महाभारत के अन्त में लिखा है कि गर्भवती स्त्रियाँ इस कथा को अवश्य सुनें। इसी बात को आपने भी पुस्तक के पृष्ठ ३४ पंक्ति २ से ८ तक ऐसे ही स्वीकार किया है कि—"इतिहास के द्वारा धर्म की वास्तविकता समझाई गयी है जैसे सच बोलो, धर्म का पालन करो। इस प्रकार के शुष्क उपदेश से बहुत थोड़े ही लोग सच बोलनेवाले और धर्मात्मा होते हैं। यदि ऐसी शिक्षाओं

को उदाहरणों के द्वारा समझाया जाए तो मनुष्यों पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है, जैसेकि विद्यार्थियों को पाठ याद कराने के लिए उदाहरण पाठ की आत्मा होते हैं, अथवा जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति उदाहरण के द्वारा बताई हुई बातों को भली-भाँति समझ लेता है।'' इसलिए मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १७८ में इस प्रकार लिखा है-

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

अर्थ-जिस मार्ग से इसका पिता चला हो, जिस मार्ग से इसके दादा-परदादा चले हों, उस मार्ग से चलना चाहिए, क्योंकि उस मार्ग से चलता हुआ धर्म से पतित नहीं होता, शर्त यह है कि वह मार्ग सत्पुरुषों का हो, अर्थात् वेदानुकूल हो।

अब बताइए, आप स्वयं ही अपना खण्डन कर रहे हैं या नहीं? अतः इतिहास भी धर्म-अधर्म के निर्णय में किसी सीमा तक कसौटी है।

पोपजी-कल्पना करो द्वापर में बुद्धू नाई की अम्मा ने अपनी जवानी में ढाई सौ पति किये तो क्या इस आचरण से आजकल की प्रत्येक स्त्री का ढाई सौ पति कर लेना धर्म है? संसार का कोई भी मनुष्य मनुष्य-आचरण से धर्म-अधर्म का निर्णय नहीं कर सकता।

तोपजी-आपकी तो वह अवस्था है कि न्यायालय ने किसी अपराधी को दण्ड किया कि चाहे सौ प्याज़ खा ले चाहे सौ जूते। इसने पहले सौ प्याज़ खाना स्वीकार किया। जब दस प्याज़ खाये और वे कड़वे लगे तो कहा जूते मार लो। जब दस जूते लगे और सिर पिलपिलाने लगा तो कहा प्याज़ खाता हूँ। तात्पर्य यह कि बार-बार विचार बदलते-बदलते सौ प्याज़ भी खा लिये और सौ जूते भी खाने पड़े। ठीक वही अवस्था आपकी है। पहले तो पुराणों की सिद्धि में इतिहास को उपयोगी प्रमाणित करते हुए पुराणों के अश्लील कथारूप प्याज़ खाने में आकाश-पाताल एक कर दिया, परन्तु जब पुराणों के मद्यपान, मांस-भक्षण और व्यभिचार सिखानेवाले इतिहास कड़वे लगे तो अब इतिहास से सर्वथा इन्कार करके तड़ातड़ प्रमाणरूपी जूते खा रहे हैं। भले मनुष्य! संसार में किसी सिद्धान्त को माने बिना निर्वाह नहीं होता और वह सिद्धान्त यह है कि इतिहास वही प्रमाण हो सकता है जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हो। जो इतिहास वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध हो वह धर्म और अधर्म के निर्णय में कसौटी नहीं माना जा सकता। अब देखिए, सत्य सिद्धान्त को न मानने के कारण आपकी स्थिति कैसी विडम्बनामय हो रही है! यहाँ तो आप इतिहास से कोई धार्मिक परिणाम स्वीकार करने से इन्कार कर रहे हैं और इसी पुस्तक के पृष्ठ ४० पर आप इस प्रकार लिखते हैं कि-

"पुराणों में रोचक रूप का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है। स्थान-स्थान पर कई मनोहर कथाओं के द्वारा उपदेश दिया गया है, जिससे मनुष्यों का ध्यान बरबस इस ओर जाकर उत्तम चाल-चलन की शिक्षा मिलती है।" आगे जाकर फिर लिखते हैं-

"इस प्रकार की सब कथाएँ भयानक रूप में ही लिखी गयी हैं जिससे कोई भी स्त्री-पुरुष भूलकर भी दुष्कर्म न करे और विवाहिता स्त्री कभी भूलकर भी अपने घर की कोई वस्तु अपने पिता के घर न लाये। कैसी उत्तम शिक्षाएँ पुराणों से प्राप्त होती हैं।"

अब बताइए आपका पहला दावा ठीक है या अब का? आपको अपनी जिह्वा का भी कुछ ध्यान है? बुद्धू नाई की माँ का उदाहरण भी खूब दिया। क्या बुद्धू नाई की माँ का आचार वेद और वेदानुकूल स्मृतियों की कसौटी पर नहीं परखा जा सकता? ढाई सौ पति

करना वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार है तो धर्म है, और यदि उनके विरुद्ध है तो पाप है। ऋषि लोगों ने धर्म-अधर्म के निर्णय के लिए वेद और और वेदानुकूल स्मृतियों को जाननेवाले विद्वानों के आचरण को यदि वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हो, किसी सीमा तक कसौटी स्वीकार किया है। आपके न मानने में आपने कोई प्रमाण नहीं दिया। देखिए, मानव-धर्मशास्त्र के प्रमाणों को मैं पुनः दोहरा देता हूँ—

वेदः स्मृतिः सदाचारः। —मनु० २।१२, वेद स्मृति और सदाचार धर्म का लक्षण है।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिः। —मनु० २।१, वेदज्ञ विद्वानों का आचार ही धर्म है।

स्मृतिशीले च तद्विदाम्। —मनु० २।६, वेद और स्मृति जाननेवालों का आचार धर्म है।

येनास्य पितरो याताः। —मनु० २।१७८, जिस मार्ग से पूर्वज गये हों, वह धर्म है।

इसलिए ऋषि-मुनियों का आचरण भी यदि वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हो तो धर्म-अधर्म के निर्णय में कसौटी है।

पोपजी—दुर्योधन स्वार्थी था और युधिष्ठिर परोपकारी, तो स्वार्थ धर्म हुआ या परोपकार? राजा वेन व्यभिचारी था और उसका पुत्र पृथु एकपत्नीव्रत-धर्म का पालन करता था। अब निर्णय कीजिए कि व्यभिचार धर्म हुआ या एकपत्नीव्रत-धर्मपालन? उग्रसेन वेद, ब्राह्मण, गौ और ऋषियों का भक्त था। उसके पुत्र कंस ने आज्ञा दे दी कि ब्राह्मण, गौ और बालकों को मार डालो, वेदों को फूँक दो। इन भिन्न-भिन्न प्रकार के आचरणों में से कौन धर्म और कौन अधर्म है?

तोपजी—अक्ल बड़ी या भैंस[१]? प्रतीत होता है कि आप सौगन्ध ही खाकर बैठे हैं कि सत्य को मानना ही नहीं, अन्यथा उपर्युक्त बातों में से धर्म-अधर्म का निर्णय करना क्या कठिन है? क्योंकि परोपकार, एकपत्नीव्रत-धर्म; वेद, ब्राह्मण, गौ और ऋषियों की भक्ति आदि, युधिष्ठिर, पृथु और उग्रसेन के कर्म वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार हैं, अतः वे आचरण करने योग्य हैं तथा स्वार्थ, व्यभिचार, गौ, ब्राह्मण और बालकों का मारना, वेदों को जलाना, मद्यपान और दूसरे की स्त्री को हर ले-जाना आदि दुर्योधन, वेन, कंस, यादवों और रावण के कर्म वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध होने से आचरण के योग्य नहीं है। इस बात को इसी पुस्तक के पृष्ठ ४१, पंक्ति १५ में आपने स्वयं भी स्वीकार किया है कि "उत्तम इतिहास को ग्रहण करके धर्म का पालन करना और बुरे चरित्रों से बचने का प्रयत्न करना ही उचित है।" फिर पृष्ठ ४१ पर ही आपने बतलाया है कि पुराणों में बुरे कर्मों के फल दिखाये हैं, जैसे पर-स्त्री को चुराने का फल अपने कुटुम्ब की आहुति देकर रावण का दुर्गति से मरना आदि। इसका परिणाम आप इस प्रकार से निकालते हैं कि "महर्षि व्यासदेवजी इन कर्मों का त्यागना ही बतलाते हैं। मानना पड़ेगा कि इन फलों को दिखाने से हम दुराचार को छोड़ सकते हैं, परन्तु पुराणों में किसी के दुराचार की बात पढ़कर दुराचारी होना उचित नहीं।" अब आप ही निर्णय दें कि ये दो प्रकार की बातें क्या प्रकट कर रही है? हाँ, यह ठीक है कि अच्छे और बुरे इतिहास का निर्णय वेद और वेदानुकूल स्मृतियों को कसौटी माने बिना नहीं हो सकता। हमारी उपर्युक्त बात का समर्थन ऋषि भी कर रहे हैं—

---

१. यह लोकोक्ति पोपजी के दृष्टिकोण से लिखी गयी है। इस लोकोक्ति का शुद्ध रूप है—बुद्धि बड़ी या वयस् (अवस्था)? वयस् बिगड़कर भैंस बन गया। —जगदीश्वरानन्द

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।
यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।।

—तैत्तिरीयोप० ब्रह्मा० ११।२

अर्थ—हमारे जो पापरहित कर्म हैं, वे तुम्हें सेवन करने चाहिएँ, दूसरे नहीं और हमारे जो चरित्र शुभ हैं, अर्थात् वेदानुकूल हैं, उनका तुम्हें आचरण करना चाहिए, दूसरों का नहीं।

इस प्रमाण से यह पूर्णरूप से स्पष्ट हो गया कि इतिहास भी धर्म-अधर्म के निर्णय में किसी सीमा तक कसौटी है, शर्त यह है कि वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हो।

पोपजी—जहाँ-जहाँ इतिहास-लेखक अपनी लेखनी से धर्म का वर्णन करता है, उसी-उसी स्थान से धर्म का ग्रहण होता है।

तोपजी—यह वर्णन भी धर्म के ग्रहण में कसौटी हो, हमें कोई आपत्ति नहीं, परन्तु हम सिद्ध कर चुके हैं कि इतिहास भी धर्म के ग्रहण में कसौटी है, किन्तु उपर्युक्त दोनों बातें अर्थात् धर्म का वर्णन और इतिहास तभी कसौटी माने जा सकते हैं जबकि वे वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हों।

पोपजी—सदा स्मरण रक्खो कि ऋषियों आदि के उपदेश ही ग्रहण करने योग्य हैं, उनके कर्म नहीं।

तोपजी—बोलो सनातनधर्म की जय! बस, इसी परिणाम के लिए पुस्तक लिखने बैठे थे कि पुराणों की आवश्यकता से ही इन्कार कर दिया? भला, यह तो बताइए कि यदि ऋषियों के उपदेश ही ग्रहण करने योग्य होते हैं, उनके कर्म नहीं तो फिर इतिहास लिखने की आवश्यकता ही क्या है? उपदेश के लिए तो वेद, स्मृतियाँ, गृह्यसूत्र और उपनिषद् आदि सैकड़ों ग्रन्थ विद्यमान हैं ही। श्रीमन्! आप तो सनातनधर्म के सिद्धान्त से ही इन्कार कर बैठे। आर्यसमाज तो इतना ही मानता है कि ऋषियों के कर्म उस सीमा तक ही आचरण करने योग्य और धर्म-अधर्म में कसौटी माने जा सकते हैं जहाँ तक वे वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हों, परन्तु सनातनधर्म का तो यह सिद्धान्त है कि ऋषियों के कर्म ही धर्म-अधर्म के निर्णय में कसौटी हैं, देखिए—

तर्केऽप्रतिष्ठा श्रुतयो विभिन्ना नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।।

—गरुडपु० पू० आचार० १०९।५१

अर्थ—तर्क में कोई श्रद्धा नहीं हो सकती, वेद के मन्त्रों में विरोध है, कोई ऐसा ऋषि भी नहीं जिसका मत पृथक् न हो, धर्म का तत्त्व गुफ़ा में छिपा हुआ है, इसलिए महापुरुष जिस मार्ग से चले हों वही मार्ग ठीक है।

कहिए पोपजी! अब क्या कहते हैं? यह तो घर में से आपका खण्डन निकल आया। अब दोनों हाथ सिर पर रखकर इस प्रकार से अपने भाग्य को रोइए—

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से।
इस घर को आग लग गयी घर के चिराग़ से।

पोपजी—अस्तु, अब लालाजी के उत्तरों को सचाई की कसौटी पर परखा जाता है।

तोपजी—आपकी बौखलाहट की भी हद हो गयी! समालोचना करते-करते हमारी चौथी कसौटी को सर्वथा ही छोड़ गये। बस, इसी ज्ञान पर इतरा रहे थे कि चौथी कसौटी पर एक शब्द भी लिखने का साहस नहीं हुआ? हम संक्षेप में इसे दोहरा देते हैं कि—"चौथी कसौटी धर्म-अधर्म को पहचानने की आत्मा की अनुकूलता, बुद्धि और तर्क है, शर्त यह है कि वह आत्मा की अनुकूलता, बुद्धि और तर्क, वेद और वेदों के अनुकूल स्मृतियों की आज्ञा के तथा वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषि-मुनियों के आचरण के विरुद्ध न हो।" हमारी चारों कसौटियाँ पूर्ण दृढ़ता के साथ स्थिर हैं। हम मनुस्मृति से चारों कसौटियों के श्लोक उद्धृत कर देते हैं और इन्हीं के प्रकाश में आपके लेखों का उत्तर भी देंगे—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः। हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।।
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ।।
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते। धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।

—मनु० २।१, ६, १०, १२, १३

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते।।

—मनु० ४।१७८

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।।
आर्षं धर्मोपेदशं च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धते स धर्मं वेद नेतरः।।

—मनु० १२।९०, १०६

अर्थ—सदा राग और द्वेष से दूर रहनेवाले, वेदानुकूल आचरणवाले विद्वानों से सेवन किया हुआ अपनी आत्मा के अनुकूल जो काम है; उसे ही धर्म मानना चाहिए।

सब वेद धर्म का मूल हैं और धर्मशास्त्र का नाम स्मृति है। वे सब कार्यों में टीका-टिप्पणी से परे हैं, क्योंकि उनसे ही धर्म का वर्णन किया जाता है।

वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी आत्मा की अनुकूलता—यह चार प्रकार का ही साक्षात् धर्म का लक्षण माना जाता है।

जो लोग अर्थ और काम में फँसे हुए न हों उनके लिए धर्म का ज्ञान वर्णन किया जाता है। धर्म की जिज्ञासा करनेवालों के लिए वेद ही परम प्रमाण हैं।

जिस मार्ग से उसके पिता, दादा और परदादा गये हों, मनुष्य उसी मार्ग से चले, उस मार्ग से चलता हुआ मनुष्य पतित नहीं होता, शर्त यह है कि वह मार्ग सत्पुरुषों अर्थात् वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुसार आचरण रखनेवालों का हो।

जो स्मृतियाँ वेद के विरुद्ध हों और जो तर्क से रहित हों, वे सब-की-सब निष्फल हैं और इस लोक और परलोक में अज्ञान को प्राप्त करानेवाली हैं।

जो मनुष्य ऋषियों के धर्मोपदेश को तर्क से परखता है, वही धर्म को जानता है, दूसरा नहीं, शर्त यह है कि वह तर्क वेद और शास्त्र के विरुद्ध न हो।

इन श्लोकों को पढ़ने से आपको विश्वास हो जाएगा कि हमारी चारों कसौटियाँ शत-प्रतिशत ठीक हैं।

परिणाम—शास्त्रों ने किसी सिद्धान्त के ठीक या ग़लत होने की परीक्षा करने के लिए चार कसौटियाँ निश्चित की हैं, अर्थात् ये धर्म और अधर्म के परखने की चार कसौटियाँ हैं। इन चार कसौटियों से ही मनुष्य किसी बात के सम्बन्ध में यह निर्णय कर सकता है कि वह धर्म है या अधर्म। इन चारों को समझने के पश्चात् मनुष्य किसी बात के विषय में धोखे में नहीं रह सकता। ये कसौटियाँ इतनी दृढ़ हैं कि इनकी समालोचना में पोपजी के होश उड़ गये। पहली को स्वीकार कर लिया, चौथी को सर्वथा छोड़ दिया। दूसरी ओर तीसरी के सम्बन्ध में कुछ लिखा, परन्तु इतना निरर्थक कि जिसे कोई भी समझदार व्यक्ति समालोचना का नाम भी नहीं दे सकता, क्योंकि ये सारी कसौटियाँ पुस्तक की आत्मा हैं और इनके प्रकाश में ही सब प्रश्नों के उत्तर लिखे जाएँगे, अतः हम इन्हें विस्तार से यहाँ लिख देते हैं—

१. वेद—इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेद ईश्वर का ज्ञान हैं, अतः वे त्रुटि, दोष और अज्ञान से सर्वथा रहित हैं। ईश्वर का ज्ञान और दोषरहित होने से वे स्वतःप्रमाण हैं। इनके प्रमाण के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं। ईश्वर के सर्वज्ञ होने के कारण उसका ज्ञान—चारों वेद सब विद्याओं के भण्डार हैं; परन्तु वेद में प्रत्येक विद्या का बीज मिलता है, व्याख्या या विस्तार नहीं मिलता। जिस प्रकार बड़ का बीज इतना छोटा होता है कि उसे कीड़ी भी उठाकर चल देती है, परन्तु वृक्ष इतना बड़ा होता है कि उसे हाथी भी नहीं उखाड़ सकता। यह ठीक है कि वह वृक्ष इस बीज के अन्दर पहले से ही विद्यमान होता है, परन्तु वह इतना सूक्ष्म होता है कि उसे प्रत्येक मनुष्य देख और जान नहीं सकता। इसी प्रकार वेद में प्रत्येक विद्या का बीज विद्यमान है, उसका विस्तार नहीं। यद्यपि उसका विस्तार भी इस बीज के अन्दर ही होता है, परन्तु इसे प्रत्येक व्यक्ति नहीं जान सकता, ऋषि लोग ही समाधि द्वारा जान सकते हैं। वेद में वे आधारभूत सिद्धान्त हैं जो तीनों काल में स्थिर रहते हैं और कभी भी परिवर्तित नहीं होते। वेदों में जिस कार्य को करने की आज्ञा दी गयी है वह धर्म है और जिस कार्य का निषेध किया गया है वह अधर्म है। धर्म और अधर्म को जानने की यह प्रथम कसौटी है।

२. स्मृति—वेदज्ञ विद्वानों, ऋषि और मुनियों के बनाये हुए ग्रन्थों का नाम स्मृति है। वे जीवकृत होने के कारण परतःप्रमाण हैं, अर्थात् वे वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक वेद के अनुकूल हों। जहाँ वे वेद के विरुद्ध होंगी वहाँ वेद के मुक़ाबले में उनका प्रमाण न माना जाएगा। स्मृति में वेद के आधारभूत सिद्धान्तों को विस्तार के साथ व्याख्या करके लिखा जाता है और जिन बातों की वेदों में स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती उनके सम्बन्ध में समय और स्थान के अनुसार नियम बनाये जाते हैं, शर्त यही है कि वे नियम वेद के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। यदि स्मृति में कोई भी नियम वेद के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध हो तो उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। हाँ, जिन नियमों और सिद्धान्तों के विषय में वेद में चाहे कोई स्पष्ट आज्ञा न हो, परन्तु उनके विरुद्ध भी कोई वेद का प्रमाण न हो, वे वेद के अनुसार ही स्वीकार किये जाते हैं। इस प्रकार के नियम समय और स्थान की आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। जिन कार्यों के सम्बन्ध में वेदों में तो कोई स्पष्ट आज्ञा न मिले, परन्तु वेदज्ञ ऋषियों की बनाई हुई स्मृतियों में उनका वर्णन हो तो ऐसी अवस्था में वे स्मृतियाँ जिस कार्य की आज्ञा दें वह धर्म और जिसका निषेध करें वह अधर्म है। यह धर्म और अधर्म को पहचानने की दूसरी कसौटी है। स्वामी दयानन्द

चूँकि वेदों के विद्वान् और ऋषि थे, इसलिए उनके बनाये हुए ग्रन्थ स्मृति का स्थान रखते हैं। उनके ग्रन्थ भी वहीं तक प्रमाण हैं जहाँ तक वे वेद के अनुकूल हों; जहाँ पर वे वेद के विरुद्ध होंगे, वहाँ वेद के मुक़ाबले में उनका प्रमाण नहीं माना जाएगा। स्वामी दयानन्दजी के ग्रन्थों में वेद के आधारभूत सिद्धान्तों को विस्तार के साथ व्याख्या करके लिखा गया है। हाँ, स्वामीजी के ग्रन्थों में भी कई एक ऐसी बातों के सम्बन्ध में कि जिनके सम्बन्ध में वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा नहीं मिलती, समय और स्थानीय आवश्यकता के अनुसार नियम बनाये गये हैं। इन नियमों को भी वेद के अनुसार ही स्वीकार किया जाएगा, जब तक कि इनके विरुद्ध वेद का प्रमाण देकर यह सिद्ध न कर दिया जाए कि अमुक नियम वेद के अमुक मन्त्र के विरुद्ध होने से वेद के आधारभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है।

३. सदाचार–सदाचार का अर्थ वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले ऋषि–महर्षियों के चालचलन से है। यह धर्म और अधर्म को जानने की तीसरी कसौटी है। ऋषि और मुनियों का चालचलन भी उसी सीमा तक प्रमाण हो सकता है कि जहाँ तक वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के अनुकूल हो, परन्तु जहाँ वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध हो वहाँ वह कदापि प्रमाण न होगा। हाँ, जिन कार्यों के सम्बन्ध में न तो वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा मिले और न ही वेद के जाननेवाले ऋषियों और मुनियों ने अपनी स्मृतियों में इनके विषय में कोई नियम बनाया हो, ऐसी अवस्था में यह देखना चाहिए कि वेद और वेदों के अनुकूल स्मृतियों को जाननेवाले ऋषियों और मुनियों ने ऐसे अवसर पर क्या आचरण किया है। वह आचरण भी वेद के अनुसार ही स्वीकार किया जाएगा। ऐसी अवस्था में जो कार्य ऋषि–मुनियों के आचरण के अनुकूल होगा वह धर्म, और जो विरुद्ध होगा वह अधर्म स्वीकार किया जाएगा।

स्वामी दयानन्दजी महाराज चूँकि वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के जाननेवाले महर्षि थे, इसलिए उनका चालचलन भी उसी सीमा तक प्रमाण होगा, जहाँ तक वह वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न होगा। यदि स्वामी दयानन्द के चरित्र में भी कोई ऐसी घटना होगी जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध हो तो वह कदापि प्रमाण न मानी जाएगी। हाँ, जिस कार्य के सम्बन्ध में न तो वेद की कोई स्पष्ट आज्ञा मिलती हो और न ही वेद और वेदानुकूल स्मृतियों ने इस कार्य के सम्बन्ध में कोई विधि–विधान बनाया हो, ऐसे कार्य के सम्बन्ध में हमें यह देखना होगा कि ऋषि दयानन्दजी का इस सम्बन्ध में क्या आचरण है? वह आचरण भी वेद के अनुकूल ही माना जाएगा, जब तक कि उस आचरण के सम्बन्ध में वेद या वेदानुकूल स्मृतियों का प्रमाण देकर यह सिद्ध न कर दिया जाए कि स्वामी दयानन्दजी का अमुक आचरण अमुक वेद या वेदानुकूल स्मृति के विरुद्ध है।

४. अपनी आत्मा की अनुकूलता–धर्म और अधर्म को पहचानने की चौथी कसौटी आत्मा की अनुकूलता, बुद्धि और तर्क है। शर्त यह है कि वह आत्मा की अनुकूलता बुद्धि और तर्क, वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध न हो तथा वेद और वेदानुकूल स्मृतियों को जाननेवाले ऋषि और मुनियों के आचरण के विरुद्ध भी न हो। यदि आत्मा की अनुकुलता, बुद्धि और तर्क, वेद और वेदानुकूल स्मृतियों के विरुद्ध होगी तो वह कदापि प्रमाण न मानी जाएगी। हाँ, जिन कार्यों के सम्बन्ध में वेद में कोई स्पष्ट आज्ञा न मिलती

हो और वेदानुकूल स्मृतियों ने भी विधि-विधान न बनाया हो तथा वेद और वेदानुकूल स्मृतियों को जाननवाले ऋषि-मुनियों के आचरण से भी कोई पता न चले तो ऐसी अवस्था में इन कार्यों के सम्बन्ध में बुद्धि, तर्क और आत्मा की अनुकूलता से ही निर्णय करना चाहिए। वह भी वेद के अनुकूल ही माना जाएगा। ऐसी अवस्था में जो कार्य बुद्धि, तर्क और आत्मा के अनुकूल हो वह धर्म, तथा जो कार्य बुद्धि, तर्क और आत्मा के विरुद्ध हो, वह अधर्म माना जाएगा।

अब इन चारों कसौटियों को दृष्टि में रखते हुए हम आर्यसमाज पर किये गये प्रश्नों की पड़ताल करेंगे।

पाठकवृन्द! उपर्युक्त चारों कसौटियों को मस्तिष्क में रखकर हमारी ओर से दिये गये प्रश्नों के उत्तरों को ध्यानपूर्वक पढ़कर आनन्द लीजिए और सत्य तथा असत्य का निर्णय करके सत्य को स्वीकार कीजिए।

आर्यसमाज का बोलबाला

१. वर्ण-व्यवस्था

सिद्धान्त—[प्रश्न] क्या जिनके माता-पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी-ब्राह्मण होता है और जिसके माता-पिता अन्य वर्णस्थ हों उनका सन्तान भी ब्राह्मण हो सकता है?

[उत्तर] हाँ, बहुत-से हो गये, होते हैं और होंगे भी, जैसे छान्दोग्य-उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञात-कुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय-वर्ण और मतंग ऋषि चाण्डाल-कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या, स्वभाववाला है, वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास

[प्रश्न] जो किसी के एक ही पुत्र हो, वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाए तो उसके माँ-बाप की सेवा कौन करेगा और वंशछेदन भी हो जाएगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिए?

[उत्तर] न किसी की सेवा का भंग और न वंशछेदन होगा, क्योंकि उनको अपने लड़के-लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राज्यसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिए कुछ भी अव्यवस्था न होगी। यह गुण-कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुष की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए।

—सत्यार्थप्रकाश, चतुर्थसमुल्लास

वर्णाश्रम—गुण-कर्मों की योग्यता से मानता हूँ। —स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश, १६

वर्ण—जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है, वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है।

—आर्योद्देश्यरत्नमाला, ४३

*

पोपजी—सत्यार्थप्रकाश में स्वामीजी ने लिखा है कि वर्ण के परिवर्तन होने पर पुत्र और पुत्रियों का परिवर्तन किया जाए, यह ऋग्वेद के मण्डल ५ सूक्त २, मन्त्र[१] के विरुद्ध है।

तोपजी—ऋग्वेद में उपर्युक्त पते पर ऐसा कोई वेदमन्त्र नहीं है, जिसके विरुद्ध

---

१. ऋग्वेद ५।२।८ मन्त्र निम्न है, जिसका पुत्र-परिवर्तन से कोई सम्बन्ध नहीं है—
हृणीयमानो अप हि मदैयेः प्र मे देवानां व्रतपा उवाच।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम्॥

स्वामीजी का लेख हो। आपने बिना देख ऐसे ही लिख दिया है। स्वामीजी का लेख अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ३० मन्त्र ३[१] के अनुकूल है।

पोपजी—वास्तव में लाला मनसारामजी ने पण्डितजी के प्रश्न को ही नहीं समझा। पण्डितजी ने बतलाया कि लड़के-लड़कियों का परस्पर बदलना वेदविरुद्ध है।

तोपजी—पण्डितजी का प्रश्न ही क्या था जिसे समझने में कठिनाई होती! हमने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदों के अनुकूल है। हाँ, यह हो सकता है कि आपने और पण्डितजी ने हमारे उत्तर को ही न समझा हो।

पोपजी—जैसाकि ऋग्वेद मण्डल ५, सूक्त २, मन्त्र ८ का अर्थ निरुक्त में पं० राजाराम शास्त्री, प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज, लाहौर लिखते हैं कि—

"पराया लड़का कभी अपना पुत्र नहीं मानना चाहिए, वह बड़ा सुखदेनेवाला ही क्यों न हो। दूसरे की स्त्री के उदर से उत्पन्न हुआ-हुआ लड़का मन से भी अपना पुत्र नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह फिर भी अपने घर चला जाता है। अपनी स्त्री के उदर से उत्पन्न हुआ लड़का अपना पुत्र मानना चाहिए।"

तोपजी—प्रथम तो जिस मन्त्र का अर्थ आपने दिया है वह उपर्युक्त पते पर नहीं है, पता नहीं आपको अशुद्ध पता लिखने का स्थिर रोग क्यों हो गया? यह मन्त्र ऋग्वेद मण्डल ७, सूक्त ४ का आठवाँ मन्त्र है। दूसरे, निरुक्त का पता भी आपने नहीं लिखा, जैसेकि निरुक्त अध्याय ३, खण्ड ३ में यह मन्त्र है। तीसरे, यद्यपि पं० राजारामजी का अनुवाद हमारे लिए प्रमाण नहीं है, तो भी आपने वह ठीक रूप में नहीं लिखा। भला! ये शब्द पण्डितजी के अनुवाद में कहाँ हैं कि—"अपनी स्त्री के उदर से उत्पन्न हुआ लड़का अपना पुत्र मानना चाहिए।" अपितु वहाँ तो यह अनुवाद है "सो हमें भय देनेवाला, दबानेवाला, नया पैदा हुआ प्राप्त हो।" दूसरे के नाम से ग़लत अनुवाद देना प्रथम कोटि की बेईमानी और मक्कारी है। लीजिए, हम इस मन्त्र का ठीक-ठीक अनुवाद लिखते हैं—

हे मनुष्यो! जो प्रसन्न न करता हो, सुन्दर सुख से युक्त दूसरे के उदर से उत्पन्न हुआ हो, वह मन से भी ग्रहण करने के लिए मानने योग्य नहीं है। और भी, फिर वही घर को नहीं प्राप्त होता। इसके पश्चात् जो नया, उत्तम, सहनशील, विज्ञानवाला हमें प्राप्त हो।" मन्त्र के शब्द स्पष्ट हैं "जो हमें सुखी करके प्रसन्न न करता हो, स्वयं चाहे सुखी ही हो, ऐसा जो दूसरे के उदर से उत्पन्न हुआ पुत्र है, उसे मन से भी पुत्र नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह घर का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता। हाँ, जो नया अर्थात् नवयुवक, उत्तम, सहनशील और विज्ञानवाला हो वह हमें प्राप्त हो, अर्थात् वह पुत्र मानने के योग्य है।" इससे स्पष्ट प्रकट है कि जिसके गुण-कर्म-स्वभाव हमारे साथ न मिलते हों, ऐसा दूसरे से उत्पन्न हुआ लड़का हमारा पुत्र नहीं बन सकता, अपितु जिसके गुण-कर्म-स्वभाव हमसे मिलते हों, वही हमारा पुत्र बन सकता है और वही घर का उत्तराधिकारी हो सकता है।

अब बतलाइए, यह मन्त्र स्वामीजी के लेख का समर्थन करता है या खण्डन? आपके सिर पर पक्षपात का ऐसा भूत सवार हो रहा है कि आप स्वामीजी के लेख को पुष्ट करनेवाले मन्त्रों को भी खण्डन में प्रस्तुत करके अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।

---

१. **अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।**
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ —अथर्व० ४।३०।३

पक्षपात के चश्मे को आँखों से उतारकर देखें, स्वामीजी का लेख सर्वथा वेदानुकूल है।

पोपजी–लालाजी ने 'सवाल गन्दुम (गेहूँ) जवाब चीना' वाली बात की है। इसका वर्ण-व्यवस्था से क्या सम्बन्ध?

तोपजी–'बरी अक़लो दानिश बबायद ग्रीस्त'–आपकी इस समझ और बुद्धि पर रोना चाहिए जो आप यह कह रहे हैं कि इसका वर्ण-व्यवस्था से क्या सम्बन्ध? भला! जब प्रश्न में स्पष्ट लिखा है कि 'वर्ण का परिवर्तन होने पर लड़के-लड़कियों का परिवर्तन वेद के विरुद्ध है' तो आधारभूत सिद्धान्त तो वर्ण-व्यवस्था ही हुआ। हाँ, यदि आपको वर्ण-व्यवस्था पर विचार-विनिमय भयदायक प्रतीत होता है तो दूसरी बात है, अन्यथा हमने तो उत्तर ठीक ही लिखा है।

पोपजी–महाशयजी! कृपा करके किसी वेदमन्त्र का प्रमाण बतलाएँ, जिसमें लड़के-लड़कियों के परिवर्तन की आज्ञा हो।

तोपजी–हमने तो अपनी पुस्तक में युक्ति और तर्कों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि स्वामीजी के इस लेख को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए यजुर्वेद अध्याय ३१ का मन्त्र ११[१] ही पर्याप्त है, परन्तु आप उन सब युक्तियों का कोई उत्तर न देकर फिर भी और मन्त्र माँगते हैं, तो आपने जो मन्त्र हमारे विरोध में दिया है, वह हमारे ही सिद्धान्त की पुष्टि करता है। यदि फिर भी आप प्रमाण-प्रमाण की रट लगाये ही जाते हैं तो लीजिए हम आपके लिए एक और मन्त्र प्रस्तुत करते हैं। अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त ३० मन्त्र ३ में विद्यासभा स्पष्ट कहती है–"मैं स्वयं यह घोषणा करती हूँ कि देवों और मनुष्यों में से जिसे चाहूँ उसे क्षत्रिय बनाती हूँ और जिसे चाहूँ उसे ब्राह्मण और ऋषि-मुनि बनाती हूँ।"[२] कहिए, अब तो सन्तुष्टि हो गयी? इस मन्त्र में विद्यासभा ने स्पष्ट घोषणा कर दी है कि मैं जिसे चाहती हूँ उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि बनाती हूँ। बस, गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार मनुष्यों के वर्ण निश्चित करके विद्यासभा राज्यसभा की सहायता से जो लड़का-लड़की जिस-जिसके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल हो, उसे देकर वर्ण-व्यवस्था की मर्यादा को स्थिर रखती है।

पोपजी–ब्राह्मण से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ पुत्र ब्राह्मण बन सकता है, यह इनकी समझ की त्रुटि है। ब्राह्मण नहीं बनता अपितु उत्तम ब्राह्मण वही होता है।

तोपजी–आपके इस लेख के अनुसार व्यासजी और विश्वामित्र, वसिष्ठ, पराशर, ऋष्यशृङ्ग, कनाद, मन्दपाल आदि कोई भी उत्तम ब्राह्मण न थे, क्योंकि भविष्यपुराण, ब्राह्मखण्ड, अध्याय ४२ के अनुसार इनमें से किसी की भी माँ ब्राह्मणी नहीं थी। अपने स्वार्थ में पड़कर ऋषियों को बदनाम मत करो! गुण-कर्म से ही वर्ण-व्यवस्था मानने से आपका कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

पोपजी–विद्या आदि ब्राह्मण के उत्तम कर्म करने पर भी शूद्र शूद्रों में ही रहता है, दूसरे वर्ण में परिवर्तित नहीं हो सकता। सनातनधर्म का यह सिद्धान्त वेदादि शास्त्रों के अनुकूल है।

---

१. **ब्राह्मणो अस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।**
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो अजायत॥ –यजुः० ३१।११

२. मन्त्र देखिए पृ० १०० पर।

तोपजी–सनातनधर्म का यह सिद्धान्त कि 'शूद्र विद्या आदि ब्राह्मण के उत्तम कर्म करने पर भी शूद्र ही रहता है, ब्राह्मण नहीं बन सकता', वेदादि शास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि यजुर्वेद (३१।११) कर्मों के अनुसार वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन करता है। मनुस्मृति (१०।६५) में भी लिखा है कि उत्तम कर्म करने से शूद्र ब्राह्मण बन सकता है। इसके अतिरिक्त आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में लिखा है कि "धर्म का आचरण करने से नीच वर्ण अपने से ऊँचे-ऊँचे वर्ण को प्राप्त हो जाता है।" वेद-शास्त्रों के अतिरिक्त पुराण भी तो आपका साथ नहीं देते। देखिए, भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व, अध्याय ४० श्लोक ४७ में लिखा है–

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्धाद्वैश्यं तथैव च॥ –भवि० ब्राह्म० ४०।४७

अर्थ–शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है, क्षत्रिय ब्राह्मण बन जाता है और वैसे ही वैश्य को भी समझ लेना चाहिए।

अब कहिए महाराज! आपकी दुर्गति का कुछ ठिकाना है! वेद-शास्त्र तो दूर की बात है आपके घर के पुराण भी आपका समर्थन नहीं करते।

पोपजी–लालाजी ने आर्यसमाज का सिद्धान्त बतलाते हुए वर्ण-व्यवस्था में कर्म ही मुख्य माना है। वह वेदों के सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि वेदों में कहीं भी कर्म के अनुसार वर्ण या जाति का परिवर्तन होना नहीं लिखा।

तोपजी–कोई मन्त्र तो प्रस्तुत किया होता जिससे पता लग जाता कि कर्मों के अनुसार वर्ण-व्यवस्था अमुक वेदमन्त्र के विरुद्ध है। रही यह बात कि कर्मों से वर्ण-व्यवस्था किस वेदमन्त्र के अनुकूल है, वह हम कितनी बार लिख चुके हैं कि यजुर्वेद (३१।११) में प्रतिपादन किया गया है कि कर्मों के अनुसार वर्ण परिवर्तित हो जाता है और इसी मन्त्र से वर्ण परिवर्तित होने पर लड़के-लड़कियों का परिवर्तन भी सिद्ध है। हमने अथर्ववेद (४।३०।३) का मन्त्र भी पीछे प्रस्तुत कर दिया है, जिसमें विद्यासभा की घोषणा है कि "मैं जिस-जिसको भी चाहती हूँ ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि बनाती हूँ। इन वेदमन्त्रों से यह पता लगता है कि स्वामी दयानन्दजी महाराज का लेख शत-प्रतिशत वेदों के अनुकूल है और सनातनधर्म का सिद्धान्त वेदों के सर्वथा विरुद्ध है।

पोपजी–'विद्या आदि शुभ कर्म करने से शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और सेवा आदि कर्म करने से ब्राह्मण शूद्र बन जाता है' यह कहना सर्वथा ग़लत है, क्योंकि ऐसा मानने पर तो एक मनुष्य का वर्ण एक ही दिन में कई बार परिवर्तित हुआ करेगा।

तोपजी–आपकी यह कल्पना सर्वथा निर्मूल है। कर्म दो प्रकार के होते हैं–एक मुख्य और दूसरे गौण। मुख्य कर्म वे होते हैं जिनके आधार पर किसी की जीवन-यात्रा चलती है, अर्थात् जिनके द्वारा वह अपना जीवन-यापन करता है, आजीविका कमाता है। गौण धर्म वे कहाते हैं जिनपर किसी मनुष्य की आजीविका निर्भर नहीं होती, अपितु वह अपने जीवन को सुविधापूर्वक व्यतीत करने के लिए करता है। उदाहरण के लिए यदि मैं कपड़े धोता हूँ तो लोग मुझे धोबी नहीं कहेंगे, परन्तु यदि मैं आजीविका के लिए पारिश्रमिक लेकर लोगों के कपड़े धोने लगूँ तो लोग मुझे धोबी कहने लग जाएँगे। इसी प्रकार अन्य कार्यों के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए। इसलिए चाहे कोई महाशय अपने घर में पचासों कार्य भी करता हो, परन्तु उसका वर्ण उस कर्म के अनुसार माना जाएगा जिस कर्म से वह आजीविका कमाकर जीवन-यापन करता है, अतः हमारे सिद्धान्त के अनुसार कोई

वर्णसंकर नहीं हो सकता। हाँ, सनातनधर्म के सिद्धान्त के अनुसार इस समय वर्णसंकरता विद्यमान है, क्योंकि एक व्यक्ति जन्म से तो ब्राह्मण है, परन्तु वह गुड़-शक्कर की दुकान करता है। लोग कहते हैं—"लालाजी! दो पैसे का गुड़ दीजिए।" एक जन्म का ब्राह्मण स्टेशन पर कुली का काम करता है। लोग कहते हैं—"अबे कुली! बोझ उठा," आदि। इसका नाम वर्णसंकरता है, जो सारे सनातनधर्म में विद्यमान है।

पोपजी—इसके अतिरिक्त आर्यसमाज में अब भी बिना पढ़े-लिखे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि व्यक्ति हैं, क्या इनकी गणना आर्यसमाज ने शूद्रों में की है?

तोपजी—निःसन्देह! आर्यसमाज में जो बिना पढ़े-लिखे हैं, चाहे वे जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही क्यों न हों, यदि वे पैरो की भाँति केवल बोझ उठाने आदि सेवा का काम ही आजीविका के लिए करते हैं तो आर्यसमाज के सिद्धान्त के अनुसार शूद्र हैं।

पोपजी—भला, महाशयजी! यह तो बतलाएँ कि संस्कृतविद्या पढ़ने से शूद्र ब्राह्मण बनता है अथवा अंग्रेज़ी, फ़ारसी या और कोई विद्या पढ़ने से ब्राह्मण वर्ण मिलता है?

तोपजी—वेद के अनुसार आचार का पालन करना चारों वर्णों का धर्म है, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के लिए यह बात आवश्यक है कि वे मद्यपान, मांसभक्षण, दुराचार, झूठ, छल-कपट आदि सब दोषों से बचें। यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त दोषों में फँसा हुआ होगा तो वह चारों वर्णों से बहिष्कृत होकर रावण की भाँति राक्षस की पदवी को प्राप्त हो जाएगा। वेद के अनुसार गुण-कर्म और स्वभाव रखनेवाला व्यक्ति चाहे किसी भी भाषा का विद्वान् क्यों न हो, यदि वह मुख के समान दूसरों की अपेक्षा पाँचगुणा ज्ञानवाला है और जनता को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर चलाता है, विद्या पढ़ाने और उपदेश देने का काम करता है तो वह ब्राह्मण है। जो भुजा के समान अपने को संकट में डालकर भी जनता की रक्षा करता है तो वह क्षत्रिय है, और जो पेट के समान कच्चे माल को पक्का बनाकर उसकी आय से जनता को लाभ पहुँचाता है और जाँघों की भाँति देश-देशान्तरों में घूमकर व्यापार करता है वह वैश्य है। जो मूर्ख रहकर उपर्युक्त तीनों कामों में से किसी भी कार्य को करने के योग्य नहीं अपितु पैरों की भाँति बोझ उठाने आदि सेवा का कार्य करता है, वह शूद्र है। उपर्युक्त गुण-कर्म-स्वभाव में से जो व्यक्ति जिस वर्ण के अनुकूल कार्य करेगा, वह उस वर्ण में गिना जाएगा।

पोपजी—गुरुकुल के स्नातक लाला हरिश्चन्द्रजी व ला० इन्द्रजी आदि संस्कृत के विद्वान् होने पर भी किसी ब्राह्मण को नहीं दिये गये और न ही उनके पिता लाला मुंशीरामजी प्रसिद्ध स्वामी श्रद्धानन्दजी को किसी और के पुत्र परिवर्तित करके दिये गये।

तोपजी—क्योंकि महात्मा मुंशीरामजी स्वयं गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण थे और उनके दोनों पुत्र भी गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण ही बने, अतः परिवर्तन की आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु, अब तनिक जन्म से वर्णव्यवस्था माननेवाले सनातनधर्म की दुर्दशा का अवलोकन कीजिए—

एक ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ व्यक्ति मुसलमान बन जाता है, वह गोमांस की दुकान करता है और ऊँची आवाज में कहता है—'मुस्लिम गोश्त रोटी गर्मागर्म!' परन्तु सनातनधर्म से पूछने पर पता लगा कि वह ब्राह्मण है। एक व्यक्ति ईसाई होकर गिरजाघर में उपदेश करता है और पादरियों की क्लब में मद्यपान और मांसभक्षण में रत है, वेदों और राम-कृष्ण की निन्दा करता है, परन्तु पोपजी से पता लगा कि वह ब्राह्मण है। एक व्यक्ति आठ आने

(५० पैसे) प्रति घड़ा मासिक के हिसाब से पानी भरता है और दिन-भर उसी काम से आजीविका कमाता है, पता लगा वह ब्राह्मण है। एक व्यक्ति रेलगाड़ी के ठहरते ही 'कुली, कुली' की आवाज़ लगाता है और मनों (३७.५ किलो का एक मन) बोझ ढोकर एक आना (६ पैसे) पारिश्रमिक पाता है, पता लगा वह भी ब्राह्मण है। एक व्यक्ति एक मारवाड़ी के यहाँ नौकर है, पानी भरता है, रोटी बनाता है, धोती धोता है, लड़के खिलाता है, उनकी टट्टी साफ़ करता है, बर्तन साफ़ करता है, परन्तु पता लगा वह भी ब्राह्मण है। एक व्यक्ति जनाना वस्त्र पहनकर सोरठ का स्वांग भरता है और मुसलमान तथा डोम का लड़का जोकि बंजारा बना हुआ है, उसकी स्त्री बन जाता है और हाव-भाव से नृत्य और कटाक्ष करता है, पता लगा वह भी ब्राह्मण है। एक विधवा बाजार में बैठकर पेशा करती है, मुसलमान हो जाती है, दिन में सैकड़ों का ईमान बिगाड़ती है, सनातनधर्म से पता लगा कि वह भी ब्राह्मणी है। निष्कर्ष यह कि उपर्युक्त व्यक्ति चूँकि जन्म से ब्राह्मण हैं, इसलिए प्रत्येक अवैध काम करते हुए भी ब्राह्मण हैं।

कहिए पोपजी! यही बात है न? धिक्कार है ऐसे ब्राह्मणपन पर और जन्म की वर्ण-व्यवस्था पर! लज्जा तो नहीं आती? मुँह काला करके कुँए में डूब मरो! यही तो कारण है कि आज शिक्षित सज्जन अपने-आपको ब्राह्मण बताने से घबराते हैं और यह समझकर कि सनातनधर्म में सब वस्तुएँ टके सेर ही बिकती हैं, सनातनधर्मसभा को दूर से ही 'रामजी की जय' कहकर उससे पृथक् हो जाते हैं। इसलिए होश करो! ब्राह्मणपन को कलंकित मत करो। ब्राह्मण वही है जो गुण-कर्म-स्वभाव से ब्राह्मणपन के कार्य करता है। उपर्युक्त व्यक्ति ब्राह्मण नहीं हैं।

पोपजी--पाठको! वर्णव्यवस्था जन्म से है। गुण-कर्म-स्वभाव से कभी वर्ण या जाति परिवर्तित नहीं हो सकती, क्योंकि जिस वस्तु के जो स्वाभाविक गुण हैं, वे उस वस्तु के साथ सदा रहते हैं, परिवर्तित नहीं होते।

तोपजी--पाठक महाशय! उपर्युक्त लेख में पोपजी ने वर्ण और जाति शब्द को पर्यायवाची बताकर जनता को बड़ा भारी धोखा दिया है, क्योंकि वर्ण और जाति दोनों भिन्न-भिन्न हैं। जाति उसे कहते हैं जो रंग-रूप देखकर दूसरों की अपेक्षा पृथक् पहचानी जाए, जैसे--गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा, ऊँट, हाथी, मनुष्य। इनमें से प्रत्येक को उसकी आकृति देखकर दूसरों की अपेक्षा पृथक्-पृथक् पहचाना जा सकता है। इसलिए जैसे पशुओं में गाय-भैंस आदि की अपनी-अपनी जातियाँ हैं, इसी प्रकार सब मनुष्यों की एक ही जाति है, क्योंकि मनुष्य दूसरे प्राणियों में से मनुष्य के रूप में पहचाना जा सकता है, परन्तु वर्ण जाति नहीं है। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को एक-सी हजामत बनवाकर और एक-से वस्त्र पहनाकर खड़ा कर दिया जाए तो मनुष्य उनकी आकृति देखकर उन्हें पृथक्-पृथक् नहीं पहचान सकता, क्योंकि जन्म से उनकी आकृतियों में कोई अन्तर नहीं है। यदि परमात्मा को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को भी जन्म से जाति बनाना स्वीकार होता तो परमात्मा उनकी आकृतियों में जन्म से ही अन्तर रख देता। ब्राह्मणों के सींग लगा देता, क्षत्रियों के पूँछ लगा देता, वैश्यों के हाथी की भाँति सूँड लगा देता और शूद्रों को एक टाँगवाला बना देता, परन्तु परमात्मा ने ऐसा नहीं किया, इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये जातियाँ नहीं हैं, अपितु वर्ण हैं।

जाति का दूसरा लक्षण यह है कि जो नर और मादा मिलकर एक-जैसी सन्तान उत्पन्न

कर सकें वे दोनों एक ही जाति में होते हैं, जैसे गाय और बैल, भैंस और भैंसा, घोड़ा और घोड़ी, गधा और गधी आदि नर और मादा मिलकर अपने-जैसी ही सन्तान उत्पन्न कर लेते हैं, अतः उनमें से प्रत्येक नर और मादा दोनों एक ही जाति में गिने जाएँगे, परन्तु घोड़ी और गधा मिलकर अपने-जैसी सन्तान पैदा नहीं कर सकते, उनकी सन्तति खच्चर दोनों की अपेक्षा भिन्न होती है। इसलिए घोड़ा और गधा एक जाति में नहीं गिने जा सकते। अब आप इसी सिद्धान्त को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पर घटाएँ। यदि किसी ब्राह्मण की शूद्रा से या शूद्र का ब्राह्मणी से विवाह कर दिया जाए तो दोनों मिलकर जो सन्तान उत्पन्न करेंगे, वह स्त्री और पुरुष की अपेक्षा खच्चर की भाँति भिन्न नहीं होगी अपितु स्त्री और पुरुष के अपने अनुकूल ही होगी। इससे पता लगा कि ब्राह्मण और शूद्र दोनों एक ही जाति में है। यदि इनकी जाति भिन्न होती तो वे भी अपनी-जैसी सन्तान उत्पन्न न कर सकते, अपितु उनकी सन्तान उनसे भिन्न होती, अतः ब्राह्मण और शूद्र दोनों एक ही जाति हैं और वह मनुष्य-जाति है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियाँ नहीं हैं, अपितु वर्ण हैं और वर्ण नाम काम का है। प्रत्येक वर्ण का पृथक्-पृथक् कार्य निश्चित है। जो व्यक्ति जिस प्रकार का काम करेगा वह उसी वर्ण में गिना जाएगा, जैसाकि हम मनुष्य के शरीर का उदाहरण देकर पीछे लिख आये हैं। इस प्रकार वर्ण और जाति एक नहीं हैं, अपितु भिन्न-भिन्न हैं। इन दोनों को पर्यायवाची बताना जनता को धोखा देना है। जाति जन्म से मरणपर्यन्त परिवर्तित नहीं हो सकती, परन्तु वर्ण गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार बदलता रहता है। मनुष्यजाति जन्म से मरण तक स्थिर रहती है, परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण कर्मों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इससे पता लगा कि वर्ण जन्म से नहीं है, अपितु कर्म से है, अतः परिवर्तित होनेवाला है।

अब विचारणीय बात यह है कि क्या ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व और शूद्रत्व जल में शीतलता की भाँति किसी वस्तु का स्वाभाविक गुण है? यदि है तो क्या आत्मा का स्वाभाविक गुण है अथवा शरीर का? यदि कहो कि ब्राह्मणत्व आदि आत्मा का स्वाभाविक गुण है और वह आत्मा के साथ सदा विद्यमान रहता है तो पुनर्जन्म की अवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का आत्मा किसी कुत्ते, गधे, उल्लू और सूअर के जन्म में चला जाए तो उस कुत्ते, गधे, उल्लू और सूअर को भी क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मानना पड़ेगा। इसलिए ब्राह्मणत्व आदि आत्मा का तो स्वाभाविक गुण नहीं है। तो क्या ब्राह्मणत्व आदि शरीरों का स्वाभाविक गुण है? ऐसा मानना भी कठिन है, क्योंकि ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सबके शरीर पञ्चतत्त्वों से बने हुए हैं और उनमें परस्पर रंग, रूप, आकृति, बनावट, शैशव, यौवन और वार्धक्य, जन्म-मरण आदि में कोई अन्तर नहीं है, अतः यह सिद्ध है कि ब्राह्मणत्व आदि शरीरों का भी स्वाभाविक गुण नहीं है। तो फिर यह क्या वस्तु हैं, वह हम बतलाते हैं—ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व, वैश्यत्व, और शूद्रत्व जल में गर्मी की भाँति आत्मा के नैमित्तिक गुण हैं। आत्मा मनुष्य-शरीर धारण करके जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म और स्वभाव को ग्रहण कर लेता है, उसी-उसी वर्ण में वह गिना जाता है और जिस-जिस वर्ण के गुण-कर्म और स्वभाव को छोड़ देता है उस-उस वर्ण से वह बहिष्कृत समझा जाता है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों का किसी के साथ नित्य सम्बन्ध नहीं है, इसलिए एक ही जन्म में गुण-कर्म और स्वभाव के परिवर्तित हो जाने के कारण वर्ण भी परिवर्तित हो जाता है।